# लर्निंग कर्व

हिन्दी अंक 5 : जून, 2013

Azim Premji University

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का प्रकाशन

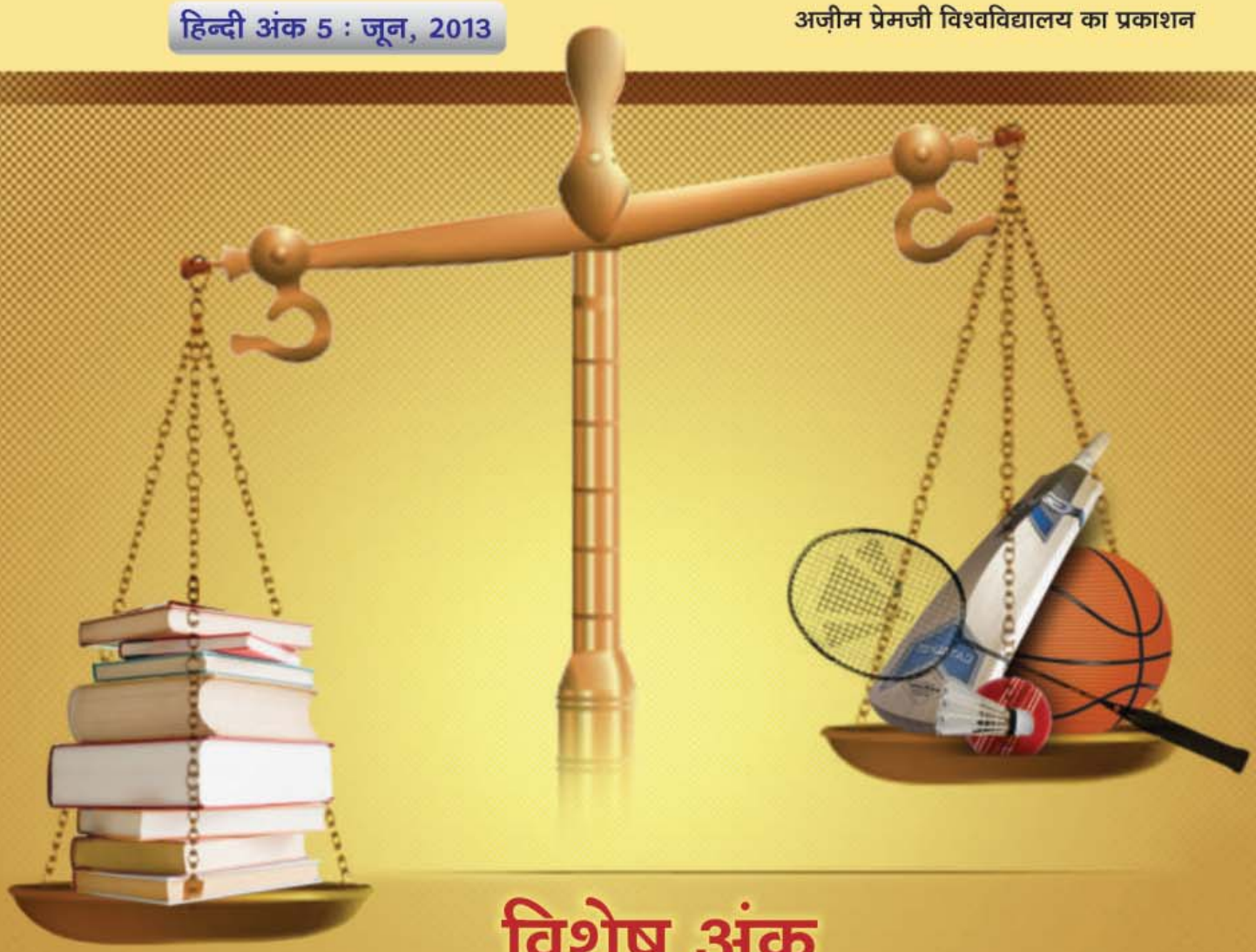

## विशेष अंक

# शिक्षा में खेल

अन्दर : व्यापक परिदृश्य, परिप्रेक्ष्य तथा खिलाड़ियों की गाथाएँ

**सम्पादकीय टीम**

अनन्दा एच. एन.
चन्द्रिका मुरलीधर
डी. डी. करोपाडी
नीरजा राघवन
निधि तिवारी
स्वाति चन्दा

**सम्पादकीय सहयोग**

माला कुमार
प्लेराइटः (www.playright.in)

**सलाहकार**

हृदय कान्त दीवान
एस. गिरिधर
रामगोपाल वल्लत

**हिन्दी अंक सम्पादन**

राजेश उत्साही
रमणीक मोहन

**हिन्दी अंक डिजायन**

सुरेन्द्र सिंह रावत
बिजेन्द्र बलोनी

**डिजायन**

एससीपीएल डिजायन
बंगलौर – 560 062
+ 91 80 2686 0585
+ 91 98450 42233
www.scpl.net

**टिप्पणी :**

इस अंक में प्रकाशित लेख मूलतः लर्निंग कर्व (अँग्रेजी) XVII, दिसम्बर 2011 के लेखों का हिन्दी अनुवाद है। अनुवाद Planet Read ने किया है।

लेखों में व्यक्त विचार और दृष्टिकोण लेखकों के अपने हैं, उनसे अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन या अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का सहमत होना आवश्यक नहीं है।

''लर्निंग कर्व अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का एक प्रकाशन है। इसका उद्देश्य शिक्षकों, शिक्षक–अध्यापकों, स्कूल प्रमुख, शिक्षा अधिकारियों, अभिभावकों और गैर–सरकारी संगठनों तक ऐसे प्रासंगिक और विषयगत मुद्दों में पहुँच बनाना है जो उनके रोजमर्रा के काम से सम्बन्धित हैं। लर्निंग कर्व शैक्षिक जगत के विभिन्न दृष्टिकोणों, अभिव्यक्तियों, परिप्रेक्ष्यों, नई जानकारियों और नवाचार की कहानियाँ प्रस्तुत करने के लिए एक मंच प्रदान करता है। इसका मूल विचार 'शैक्षणिक' और 'अभ्यासकर्ता' के मध्य सन्तुलन हेतु उन्मुख पत्रिका के रूप में स्थापित होना है।''

# सम्पादक की कलम से

भारतीय स्कूली व्यवस्था में प्राथमिक और माध्यमिक स्तर पर खेलों का होना अकसर 'अच्छा' समझा जाता है लेकिन वरिष्ठ–माध्यमिक स्कूली शिक्षा के वर्षों में इन्हें 'वहन कर पाना' सम्भव नहीं माना जाता। सरकार, स्कूल–प्रशासन और शिक्षकों तथा अभिभावकों की इस मनोवृत्ति के चलते खेलों में आगे बढ़ने का सपना देखने वाले विद्यार्थी खुद को अपेक्षाकृत बाधक व्यवस्था में उलझा हुआ पाते हैं। इसलिए अधिकतर मामलों में खेलों के अपने सपने को पूरा करने की इच्छा होना व्यवस्था को चुनौती देने जैसा हो जाता है। कुछ लोग तर्क देते हैं कि सच्ची खेल प्रतिभा लम्बे समय तक छुपी नहीं रह सकती, लेकिन इस धारणा पर भी बहस की जरूरत है। क्या खेलों में करियर का सपना पूरा करने के लिए 'सच्ची जन्मजात खेल प्रतिभा' या 'प्रतिभा की चमक' होना हमेशा ही जरूरी है? क्या खेलों की ओर उन्मुख, साधारण प्रतिभा वाले विद्यार्थियों को भी प्रशिक्षण देकर उनकी सम्भावना को साकार नहीं किया जा सकता? सारांश में, करियर के तौर पर खेलों का चुनाव करने के लिए किस हद तक 'अच्छा' होना जरूरी है?

यह माँग हम उन लोगों से ही क्यों करते हैं जो खेलों में कुछ करना चाहते हैं? उदाहरण के लिए, हमारा ध्यान गणित के प्रति उस व्यक्ति में रूझान की कमी की ओर क्यों नहीं जाता जिसे सामान्यतः जरूरी पहाड़े याद करने होते हैं? क्या खेलकूद मुख्य मेन्यू में बस वैकल्पिक मिठाई की तरह हैं? – उस मेन्यू में, जिसके तहत अकादमिक विषयों को ही सीखे जाने लायक समझा जाता है?

सम्पादकीय टीम ने जब पहले–पहल इस अंक के लिए विचार–मन्थन किया तो हमारा क्षेत्र व्यापक तो था ही, महत्वाकांक्षी भी था। हम बहुआयामी विचार और दृष्टिकोण शामिल करना चाहते थे ताकि शिक्षा में खेलों के महत्व और सार को समझ पाएँ। जल्द ही हमारा सामना पहले अवरोध से हुआ – लिखेगा कौन? हर सम्भावित लेखक ने पहली मुलाकात में हमें बताया कि वह लेखन कार्य में कितना हिचक रहा/रही है, क्योंकि 'खेलों से सम्बद्ध लोग लेखक नहीं हो सकते'। परन्तु सम्पादकीय टीम इस बात पर अटल थी कि किसी विचार को लर्निंग कर्व में स्थान मिलना लेखन–क्षमता या उसकी कमी से निर्धारित नहीं होगा। इसीलिए इस अंक में आपको अनेक लेख 'जैसा उन्होंने बताया' श्रेणी के मिलेंगे। खेल–क्षेत्र से जुड़े लोगों ने हमारे लिए यह सम्भव किया कि हम 'बने–बनाए खाँचे' से बाहर जाकर सोच पाएँ।

दूसरी सबसे बड़ी बाधा खेल–क्षेत्र से जुड़े लोगों तक पहुँचना थी। उनमें से अधिकतर अपने क्षेत्र के जाने–माने व्यक्ति थे और उन तक पहुँच बना पाना काफी श्रमसाध्य कार्य था। इसके लिए बंगलौर में स्थित खेल जनसम्पर्क फर्म 'प्लेराइट' के हमारे दोस्तों ने हमारा सहयोग किया – इस अंक को सम्भव बनाने के लिए हम उनके बहुत आभारी हैं।

खिलाड़ियों के व्यस्त कार्यक्रमों और अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिबद्धताओं के चलते हमें अपनी समय–सीमा को दरकिनार करना पड़ा। खेलों में मजा होता है, फिर चाहे वे देरी से ही क्यों न खेले जाएँ, और हम आशा करते हैं कि इस अंक में पेश की गई सामग्री इसके देरी से पहुँचने की कमी की भरपाई कर देगी!

हम उन खिलाड़ियों के बहुत आभारी हैं जिन्होंने खेल के साथ अपने जुड़ाव को रेखांकित करने के लिए स्टार बनने से पहले की अपनी खेल–यात्रा के बारे में हमें बताया। हम अपने लेखकों का धन्यवाद करते हैं कि उन्होंने इस अंक के विषयों की विविधता में अपना योगदान दिया। खेलों में परस्पर वैयक्तिक मेल–जोल का विद्यार्थियों पर प्रभाव, खेल–कूद द्वारा विकसित कौशल, लोगों द्वारा खेलों को करियर के रूप में न अपनाने के पीछे की कड़वी सच्चाई, खिलाड़ी–बच्चों के पालन–पोषण में अभिभावकों के सामने आने वाली चुनौतियाँ, खेलों में प्रतिस्पर्द्धा और प्रतियोगी भावना की धारणाओं पर सवाल खड़े करना, खेलों में भाग लेने वालों की मानसिक ताकत का विवरण, 'शिक्षा का अधिकार' के योगदान की पड़ताल, खेल–शिक्षा पर राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा के विचार – इस अंक में विभिन्न विषय उजागर हुए हैं, कुछ चुनौतियों पर विचार हुआ है और कुछ सुझाव भी पेश किए गए हैं।

यदि इस अंक को पढ़ने के बाद आपके मन में खेल–शिक्षा से सम्बद्ध कुछ सवाल कुलबुलाने लगते हैं तो हम समझेंगे कि हमारा उद्देश्य पूरा हुआ! और हम चाहेंगे कि अन्त में आप विचार करें–क्या शिक्षा में खेलों का कोई स्थान है, या खेल अपने आप में एक शिक्षा हैं? हम उम्मीद करते हैं कि यह अंक आपको पसन्द आएगा। हमेशा की तरह आपके फीडबैक, सुझावों, आलोचना और आपके योगदान का भी स्वागत है।

इस उम्मीद के साथ कि यह अंक आपको आनन्द से परिपूर्ण लेकिन गम्भीर विषयों पर विचारोत्तेजक अध्ययन की ओर ले जाएगा।

निधि तिवारी

सम्पादक, 'लर्निंग कर्व'

कहाँ क्या है...

## खण्ड अ


काम ही काम, नहीं खेल का नाम... 01
कल्याण अशोक

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा में स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा 05
डी.डी. करोपाडी

शिक्षा में खेलों का विश्वव्यापी परिप्रेक्ष्य 08
टेड मरे

शिक्षा में खेल : चाहिए नीतिगत फोकस और एक मिशनरी जोश 11
ऋषिकेश

खेल 18
हर्ष भोगले

खेल बनाम शिक्षा : दूरी समाप्त करने का समय 21
नन्दन कामथ


## खण्ड ब


शिक्षा में खेल : स्वस्थ शरीर में स्वस्थ दिमाग 26
अश्विनी नाच्चपा

खेल में साहस और श्रेष्ठता – क्रिकेट से गाथाएँ 28
एस. गिरिधर और वी. जे. रघुनाथ

शिक्षा में खेलकूद 32
बीडू

एक खिलाड़ी की माँ होने की खुशियाँ 34
देविका नाडिग

बच्चा और खेलकूद 37
श्यामल वल्लभजी

खेलने दो! 40
काजल अडवाणी

खेलों से समता – चुनौतियाँ और सम्भावना 44
इन्दुमति एस.

घिसे–पिटे, पारम्परिक विचारों का प्रतिरोध 48
डॉमिनिक विजय

आउटडोर शिक्षा : एक नए सैद्धान्तिक संरचनात्मक ढाँचे की खोज–पड़ताल 51
निधि तिवारी

## खण्ड स


खेलों में करियर : क्यों नहीं? 58
साईसुधा सुगवन्नम

मन के जीते जीत है, मन के हारे हार– खेल मनोविज्ञान की भूमिका 62
श्री अडवाणी

स्कूलों में खेल : प्रावधान और व्यवहार 66
रेखा बड़सिवाल

खेलो, प्यार से 70
उषा मुकुन्दा नी आयंगर

शिक्षा में खेलों का बदलता स्वरूप 74
हृदयकान्त दीवान और प्रीति मिश्रा

स्कूलों में बच्चे किस तरह खेलते हैं – एक पुनर्दृष्टि 80
सौमिल मजूमदार

मैं कृतिका नाडिग हूँ 84
कृतिका नाडिग

छड़ी वाला लड़का 87
चिक्करंगप्पा

बात केवल बैडमिण्टन की ही नहीं है! 90
अदिति मुटाटकर

मैं रोहन बोपन्ना 93
रोहन बोपन्ना

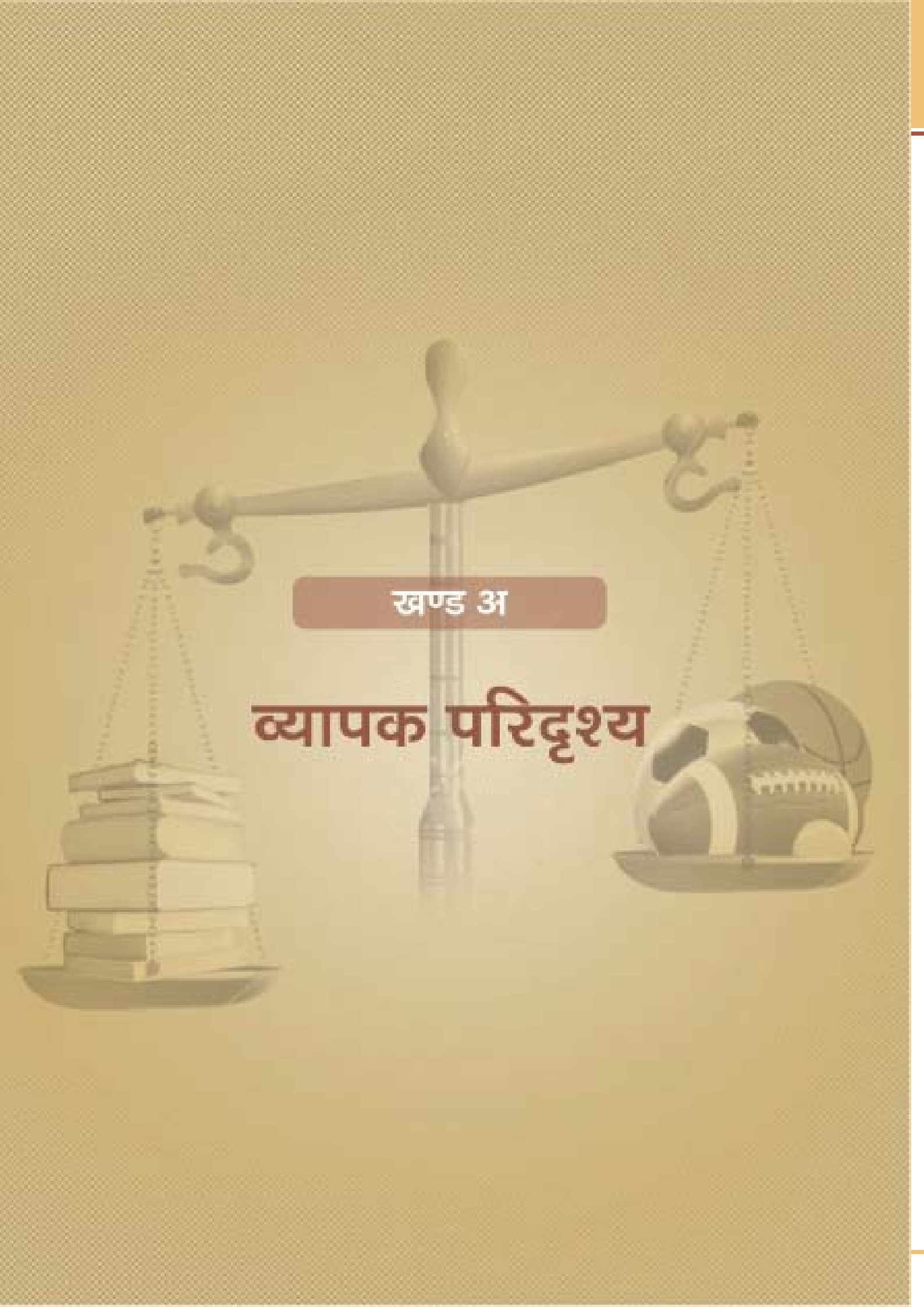

खण्ड अ

# व्यापक परिदृश्य

# 01 काम ही काम, नहीं खेल का नाम...

कल्याण अशोक

**खेल और क्रीड़ा बच्चे के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।**

खेलना किसी भी बच्चे की सहज प्रवृत्ति है। यह सार्वभौमिक है। दुनिया का हर बच्चा खेलने की इच्छा रखता है। बच्चे को खेलना क्यों चाहिए, इस विषय में अनेक रोचक सिद्धान्त हैं। इनमें से एक सिद्धान्त 'सहज, नैसर्गिक प्रवृत्ति' का सिद्धान्त है। खेलना पसन्द करना बच्चे की विशुद्ध रूप से नैसर्गिक प्रवृत्ति है, एक स्वाभाविक शारीरिक क्रिया है। एक और सिद्धान्त के मुताबिक बच्चे में अत्यधिक, अतिरिक्त ऊर्जा होती है और इसे उपयोग में लाने का एकमात्र माध्यम खेलकूद है।

फिर, 'अभिव्यक्ति' का सिद्धान्त है। बच्चे अपनी भावनाएँ प्रकट करना चाहते हैं। यह भी खेलकूद के माध्यम से होता है। खेल के दौरान बच्चे खुशी, उत्साह, गुस्सा, निराशा आदि विभिन्न भावनाएँ प्रकट करते हैं। खेल के माध्यम से वे अनेक नई बातें सीखते हैं। मैदान की कोई भी गतिविधि बच्चे में विभिन्न शारीरिक गुणों के विकास में सहायक होती है – जैसे बेहतर शारीरिक मुद्रा, अंग संचालन, हाथ और आँख में समन्वय आदि। बुनियादी तौर पर बच्चा कुछ भी करते हुए सीखता है। संयुक्त राज्य अमेरिका में इसे 'मूवमेन्ट शिक्षा' का नाम दिया गया है।

भारत में शिक्षा रट्टा या नकल की पद्धति पर आधारित रही है। बच्चे को अपने समकक्ष साथियों, शिक्षक या माता–पिता का अनुसरण करने की सीख दी जाती है। मगर बच्चे के लिए सीखने की प्रक्रिया का अनौपचारिक होना जरूरी है, और यह केवल खेलकूद के माध्यम से किया जा सकता है, जिसमें वह अपनी स्वाभाविक प्रवृत्तियों का अनुसरण करने के लिए आजाद होता है। अनौपचारिक पद्धति पर जोर इस कारण से है कि बच्चे सीमित अवधि के लिए ही ध्यान केन्द्रित रख पाते हैं। औपचारिक रूप से सीखने की प्रक्रिया में बहुत छोटी आयु के बच्चों का ध्यान आसानी से भंग हो सकता है, इसलिए उनकी शिक्षा में अनौपचारिकता बनाए रखना जरूरी है। यह केवल खेलकूद या क्रीड़ा के माध्यम से किया जा सकता है। औपचारिक शिक्षा के साथ इसे सही ढंग से एकीकृत कर लिया जाए तो यह ठोस शैक्षिक व्यवस्था के लिए मजबूत बुनियाद का काम करता है।

कक्षा में बच्चा औपचारिक तौर–तरीकों से सीखता है। अक्सर उसके लिए क्रिया तथा गति में रहने की वह आजादी नहीं रहती जिसे वह सच में स्वयं–रचित प्रक्रिया कह सकता हो। दूसरी ओर, खेल में चाहे वह कुछ विशेष नियमों से बंधा हुआ ही क्यों न हो, वह स्वयं क्रियाओं की शुरुआत कर सकता है।

खेल और क्रीड़ा बच्चे के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। बच्चा टीमवर्क की अच्छाइयों के बारे में सीखता है, खेलभावना को जज्ब करता है, उम्र बढ़ने के साथ–साथ कुछ नया सीखता है, मुश्किल परिस्थितियों का सामना हिम्मत से करना सीखता है; हाथ में लिए काम को एकाग्रता से करना सीखता है; बाँटने, देने और मदद करने के फल का आनन्द उठाना सीखता है। खेलकूद या क्रीड़ा बच्चे को सम्पूर्ण व्यक्तित्व के साथ उभरने में मददगार होते हैं।

प्रचलित धारणा के अनुसार एक व्यक्ति जीतने के लिए खेलता है। परन्तु बच्चों के मामले में यह बात सच्चाई से कहीं दूर है। उन्हें तो बस खेलना और गतिविधि में रहना अच्छा लगता है, वे जीत–हार के बारे में नहीं सोचते। लेकिन जैसे–जैसे वे बड़े होते हैं, प्रतिस्पर्द्धा की भावना उनमें भर दी जाती है। यह शिक्षाविदों को

तय करना होगा कि प्रतिस्पर्द्धा के तत्व पर कितना जोर दिया जाना है। शुरुआत के, व्यक्तित्व–निर्माण के वर्षों में, बच्चे को खेल का मजा लेने और मौज–मस्ती की आजादी होनी चाहिए – इस दौरान जीत या हार का कोई महत्व नहीं होना चाहिए।

कुछ लोगों का मानना है कि बच्चों को जीत–हार के बारे में कुछ तो पता होना ही चाहिए। इस सन्दर्भ में पूर्वी यूरोप, भूतपूर्व सोवियत संघ या चीन के उदाहरण भी दिए जाते हैं जहाँ छोटी आयु में ही बच्चों को स्पोर्टस्–स्कूलों में डाल दिया जाता है और खुराक–नियन्त्रण, अत्यधिक प्रशिक्षण और 'मारक प्रवृत्ति' पैदा करके उन्हें चैम्पियन बनने के लिए तैयार किया जाता है। ऐसे बच्चे किशोरावस्था या वयस्क की आयु तक पहुँचते–पहुँचते मेडल जीतने की मशीनों में तब्दील हो जाते हैं। परन्तु इस प्रक्रिया में वे अपना पूरा बचपन, जीवन का एक शानदार समय खो देते हैं। ऐसे देशों में शरीर पर प्रशिक्षण के अत्यधिक दबाव और बोझ के दुष्परिणामों तथा पूरक–आहार के दुष्प्रभावों की, और मनोचिकित्सकीय समस्याएँ उत्पन्न होने की ढेरों कहानियाँ मिलती हैं। इन समस्याओं से निपटने के लिए मनोवैज्ञानिक परामर्श भी उनका खोया हुआ बचपन वापस नहीं लौटा सकता। यह समझने की जरूरत है कि बच्चा अत्यधिक प्रशिक्षण की पीड़ा सहन करने की परिपक्वता किशोरावस्था या उससे कुछ पहले ही हासिल कर सकता है। भारत में स्थिति इससे बिल्कुल हटकर है। अभिभावकों और शिक्षा के दबावों के चलते बच्चे खेलों में अपनी सहज सम्भावनाओं को हासिल नहीं कर पाते। प्रत्येक अभिभावक सपना देखता है कि उसका बच्चा केवल इस कारण से कि वह टेनिस या क्रिकेट खेलता है और प्रसिद्ध कोचिंग क्लीनिक में जाता है, दूसरा लिएण्डर पेस या सचिन तेंदुलकर बन जाएगा। एक खेल–लेखक के रूप में मैंने अनेक जूनियर तैराकी, एथलेटिक्स और टेनिस आयोजनों को करीब से देखा है जहाँ अभिभावक अपने बच्चों को क्षमता से अधिक प्रदर्शन के लिए बुरी तरह उकसाते या दबाव बनाते हैं।

*"मैं कभी भी अपने कॉलेज में किसी खिलाड़ी को कक्षा में बँधे देखना नहीं चाहता। मैं उनसे हमेशा कहता हूँ कि जाओ, अभ्यास करो, हम आपके लिए विशेष कक्षाओं की व्यवस्था करेंगे!"*

बच्चों को प्रोत्साहित करने में कोई बुराई नहीं है परन्तु उनसे बहुत अधिक अपेक्षा नहीं की जानी चाहिए, और उन्हें खेल का आनन्द लेने देना चाहिए।

बच्चे के व्यक्तित्व–विकास और कल्याण में खेलकूद तथा क्रीड़ा के प्रभाव को भारत के शिक्षाशास्त्रियों ने कुछ हद तक नजरअन्दाज ही किया है। हैरानी नहीं कि पाठ्यक्रम में खेलों को एक विषय के रूप में शामिल नहीं किया जाता। अनेक स्कूलों में खेलों की उचित सुविधाएँ या खेलों का सही प्रशिक्षण देने के लिए शारीरिक–प्रशिक्षक नहीं हैं। खेलों में श्रेष्ठ बच्चे भी प्रोत्साहन की कमी के कारण खेलों को करियर के विकल्प के तौर पर अपनाने में असफल रहते हैं। खेल अपने सर्वोत्तम रूप में कॉलेज स्तर पर पेशेवर पाठ्यक्रमों में 'खेल कोटा' के अन्तर्गत दाखिला प्राप्त करने के अवसर मात्र के रूप में रह गए हैं।

अनेक प्रतिभावान युवा तैराकों, एथलीटों, बास्केटबाल और क्रिकेट के खिलाड़ियों ने पेशेवर पाठ्यक्रमों में दाखिला प्राप्त करने के बाद खेलों को अलविदा कह दिया। कुछ खिलाड़ी ही शिक्षा और खेल, दोनों के मध्य सफलतापूर्वक सन्तुलन बनाए रखे हुए हैं। ओलम्पिक तैराक बंगलौर की शिखा टण्डन, जो संयुक्त राज्य अमेरिका में बायोटेक्नॉलजी विषय में अपनी मास्टर्स डिग्री पूरा कर रही हैं, का कहना है: "दोनों के मध्य सन्तुलन बैठाना कठिन है लेकिन एक बार आप निश्चय कर लें तो यह कर सकते हैं। मैं छह घण्टे कक्षा और प्रयोगशाला में व्यतीत करती हूँ, तो मेरा इतना ही समय स्विमिंग पूल में गुजरता है, और मैं दोनों पर ही ध्यान केन्द्रित कर पाती हूँ।'' शिखा इस मामले में भाग्यशाली हैं कि उन्होंने श्री भगवान महावीर जैन कॉलेज में शिक्षा प्राप्त की है जिसके चेयरमैन चैनराज जैन खेलों के प्रति लालायित और उत्साही व्यक्ति हैं, और कॉलेज के खिलाड़ियों को प्रशिक्षण तथा खेल आयोजनों में भाग लेने के लिए समय दिया जाता है। श्री जैन का कहना है, "मैं कभी भी अपने कॉलेज में किसी खिलाड़ी को कक्षा में बँधे देखना नहीं चाहता। मैं उनसे हमेशा कहता हूँ कि जाओ, अभ्यास करो, हम आपके लिए विशेष कक्षाओं की व्यवस्था करेंगे!" बैंगलोर विश्वविद्यालय के शारीरिक–शिक्षा महाविद्यालय के पूर्व डीन श्री एल.आर. वैद्यनाथन का कहना है, "किसी खिलाड़ी द्वारा पेशेवर कोर्स में दाखिला लेने के बाद उससे खेलों में भाग लेने

की अपेक्षा रखना बेमानी होगा, क्योंकि वे डॉक्टर या इंजिनियर बनने के लिए अध्ययन कर रहे हैं न कि ऐसा फुलटाइम खिलाड़ी बनने के लिए, जो पार्टटाइम डॉक्टर बनना चाहता है।''

वैद्यनाथन के विचार में, "खेलों को किसी भी अन्य विषय की तरह जीवन के लिए प्रासंगिक बनाया जाना चाहिए।" उनकी बात बिल्कुल सही है क्योंकि कर्नाटक, पंजाब और केरल जैसे कुछ राज्यों को छोड़कर अधिकतर राज्यों में खेलों को स्कूल–पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया जाना अभी शेष है।

शिक्षा प्रणाली में खेलों को एकीकृत किया जाए तो बच्चे को एक बेहतर इन्सान बनने में और उसके समग्र विकास में मदद होगी। खेलकूद, मनोरंजन, क्रीड़ा–बच्चे के लिए इन सबका अर्थ एक–सा है। जैसे–जैसे बच्चा बड़ा होता है, और इनकी बारीकियों, विभिन्न छोटे–छोटे अन्तरों को समझने लगता है, ये शब्द उसके लिए विशेष अर्थ हासिल कर लेते हैं।

अधिकतर शिक्षा संस्थाएँ सरकार द्वारा संचालित हैं, इसलिए खेलों की समुचित हिस्सेदारी सहित स्तरीय शिक्षा उपलब्ध करवाने में राज्य की भूमिका को कमतर करके नहीं आँका जा सकता। कर्नाटक राज्य ने एक स्वागत योग्य पहल की है। यहाँ कक्षा 4 से 9 तक खेलकूद को एक विषय के रूप में पढ़ाया जाता है। 10वीं कक्षा में एस.एस.एल.सी. के लिए एक ब्रेक के बाद 11वीं और 12 वीं कक्षाओं में खेलकूद दोबारा एक अनिवार्य विषय हो जाता है। बच्चों को खेल एवं शिक्षा का अच्छा सुमेल प्रदान करने के विषय में शिक्षाशास्त्रियों की जागरूकता में वृद्धि हो रही है। एन.सी.ई.आर.टी. ने भी खेलों को शिक्षा का अभिन्न अंग बनाने के लिए सुझाव दिए हैं। बच्चों के खेल के अधिकार पर यूनेस्को की घोषणा पर भी काम हो रहा है।

विभिन्न सरकारी कमेटियों – जैसे एच.एन. कुंजरू कमेटी, कोठारी कमीशन और राधाकृष्णन कमीशन – ने खेलों और शारीरिक–शिक्षा को अकादमिक शिक्षा के साथ एकीकृत करने की सिफारिश की है। अनेक संस्थानों ने माण्टेसरी स्तर पर प्री–स्कूल खेलों की अवधारणा की शुरुआत की है और इसका एक दिलचस्प उदाहरण श्रीमती शर्ली माधवन कुट्टी द्वारा किया गया सर्वश्रेष्ठ कार्य है, जो दिल्ली में 'मैजिक इयर्स' नामक प्रसिद्ध माण्टेसरी स्कूल का संचालन कर रही हैं।

इन सब प्रयासों के बावजूद हमारे देश में खेल–शिक्षा प्राथमिकताओं की सूची में बहुत ऊँचे स्थान पर नहीं है। केन्द्रीय खेल–मन्त्रालय बच्चों को अच्छी शिक्षा उपलब्ध करवाने पर ध्यान देने की अपेक्षा चैम्पियनों का झुण्ड चाहता दिखाई देता है और यही धारणा समाज के दृष्किोण में दिखाई देती है। इस मनोवृत्ति को बदलने

की जरूरत है क्योंकि खेल के प्रति जागरूक बच्चा स्वस्थ और प्रसन्न ही नहीं रहता बल्कि एक महान खिलाड़ी नहीं बन पाए तो भी एक आदर्श नागरिक के रूप में अवश्य विकसित होता है।

***कल्याण अशोक*** *एक वरिष्ठ पत्रकार हैं। वे इण्डियन एक्सप्रेस, द डैक्कन हेराल्ड तथा द हिन्दू के साथ लम्बे समय तक काम करते रहे हैं। वे द हिन्दू के बंगलौर संस्करण में खेल ब्यूरो के प्रमुख रहे हैं। उन्होंने हिन्दू तथा उसके सहयोगी प्रकाशन स्पोर्टस स्टार के लिए क्रिकेट, टेनिस, बैडमिण्टन, एथलैटिक्स आदि के कई राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय आयोजनों को कवर किया है। खेलों के अलावा वे राजनीति, मनोरंजन तथा अन्य विषयों पर लिखते रहते हैं। आजकल वे स्वतंत्र लेखक की हैसियत से बंगलौर में रह रहे हैं। उनसे kalyanashok@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

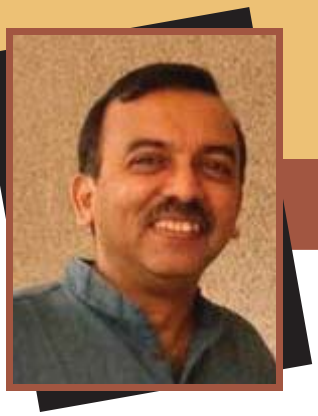

# 02 राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा में स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा

डी.डी. करोपाडी

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (एन.सी.एफ.) के फोकस समूह ने यह माना है कि विषयवस्तु और मूल्यांकन, दोनों के हिसाब से 'स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा' के लिए पाठ्यचर्या बनाना बड़ा चुनौतीपूर्ण काम है। इसलिए उचित ही है कि समूह ने इस विषय पर एक बड़ी व्यापक दृष्टि डाली है। सैद्धान्तिक पर्चे में, फोकस समूह ने स्वास्थ्य से सम्बद्ध सब सरोकारों को उनके सब आयामों में सम्बोधित करने की कोशिश की है। इसमें पोषाहार एवं अन्य सामाजिक कारक भी शामिल हैं जो प्राथमिक, माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्कूलों के बच्चों के 'सर्वांगीण विकास' में अपना योगदान देते हैं। अल्प–पोषाहार, अवरुद्ध विकास और संक्रामक रोगों से जुड़ी उन समस्याओं को लेकर इसमें एक बेबाक स्वीकृति है, जो न केवल स्कूली उम्र के दौरान, बल्कि जीवन–भर बच्चों को प्रभावित करती हैं।

फोकस समूह 1946 में गठित भोर समिति की रिपोर्ट में दर्ज इस विषय की व्यावहारिक परिभाषा का हवाला तो देता ही है, साथ ही उसे आज भी अपनाने का सुझाव देता है। इसके अनुसार, एक स्कूली स्वास्थ्य सेवा के कर्तव्य निम्नलिखित हैं–

1. कमियों और कमजोरियों की पहचान और उनका उपचार; तथा स्कूल में और उसके आस–पास स्वास्थ्यकर वातावरण बनाने और उसे बनाए रखने समेत रोगनिवारक एवं रोगनाशक उपाय करना।
2. गुणात्मक स्वास्थ्य के संवर्धन के लिए कदम उठाना जिनमें पोषण–स्तर में सुधार के लिए पूरक आहार का प्रावधान भी हो। इन उपायों में खेल–कूद, व्यायाम एवं क्रीड़ाओं आदि के माध्यम से शारीरिक स्वास्थ्य की संस्कृति का निर्माण भी शामिल हो।

कोई 65 साल बाद भी इन मार्गदर्शक सिद्धान्तों की प्रामाणिकता जस–की–तस बनी हुई है। यह बात व्यवस्थागत बदलाव हेतु इन उपायों को लागू करने में हमारी अक्षमता की पोल खोल देती है। सन् 1958 में सरकार ने एक स्कूल–स्वास्थ्य विभाग बनाया था और स्कूल पाठ्यचर्या में स्वास्थ्य–शिक्षा को जोड़ने के प्रयास भी किए थे। समूह को इस बात का दुख है कि यह समेकित दृष्टिकोण न तो सोच के स्तर पर कायम रहा और न ही व्यवहार में। इसका कारण शायद यह हो कि स्कूली–स्वास्थ्य कार्यक्रम प्रशासनिक हिसाब से स्वास्थ्य मन्त्रालय के अधीन आता था। समूह का सुझाव है कि इस कार्यक्रम के विभिन्न घटक 'स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा' की पाठ्यचर्या के अभिन्न अंग होने चाहिए। साथ ही, यह समूह, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण, खेल एवं युवा मामले, महिला एवं बाल कल्याण, गृह तथा बाल शिक्षा जैसे विभागों के बीच समन्वय की फौरी जरूरत की तरफ भी इशारा करता है। मध्याह्न भोजन (मिड–डे मील) कार्यक्रम के महत्व को समझते हुए समिति ने अनुशंसा की है कि मध्याह्न भोजन को पाठ्यचर्या का हिस्सा बनाया जाना चाहिए। बच्चों की तन्दुरुस्ती और स्वास्थ्य के लिए समिति ने एक घटक के बतौर योग को भी शारीरिक शिक्षा में शामिल किया है।

समूह ने सर्वसम्मति से यह अनुशंसा की है कि दसवीं कक्षा तक इसे अनिवार्य बनाते हुए, अन्य केन्द्रीय विषयों की तरह ही कुछ इस तरह बरता जाना चाहिए कि छात्र अपने पाँच प्रमुख विषयों में से एक विषय के तौर पर इसे चुन सकें। उद्देश्यों एवं पाठ्यक्रमों में निम्नलिखित चार प्रमुख बातें झलकनी चाहिए–

अ. व्यक्तिगत स्वास्थ्य, शारीरिक और मनो–सामाजिक विकास

ब. शरीर–क्रिया सम्बन्धी अवधारणाएँ तथा शरीर–संचालन कौशल

स. अन्य महत्वपूर्ण व्यक्तियों से सम्बन्ध

द. स्वस्थ समुदाय और वातावरण

इन केन्द्रीय बिन्दुओं को सम्बोधित करने के लिए समिति ने पाठ्यचर्या तथा पाठ्यक्रम नियोजन को मार्गदर्शित करने

की दृष्टि से निम्नलिखित विशिष्ट उद्देश्य तैयार किए हैं–

1. स्वास्थ्य के प्रति बच्चों को सजग करना और इस बाबत जानकारी हासिल करने में उनकी मदद करना। बच्चों में स्वास्थ्य के प्रति एक सकारात्मक रवैया विकसित करना।
2. स्कूलों के स्वास्थ्य और पोषण कार्यक्रमों के माध्यम से जरूरी सेवाएँ उपलब्ध करवाना।
3. बच्चों को उनकी आयु के विशिष्ट चरणों से सम्बद्ध स्वास्थ्य की आवश्यकताओं के प्रति सजग करना।
4. स्वस्थ जीवन के प्रति व्यक्तिगत और सामूहिक जिम्मेदारी का ज्ञान बच्चों को इस प्रकार देना कि वे इन जिम्मेदारियों को समझें और उन्हें निभाएँ।
5. पोषण सम्बन्धी जरूरतों, व्यक्तिगत और पर्यावरण सम्बन्धी स्वच्छता, साफ–सफाई, प्रदूषण, आम बीमारियों और उनकी रोकथाम तथा उनके इलाज के प्रति बच्चों को जानकार और जागरूक बनाना।
6. अपना स्वास्थ्य–स्तर जानने, अपनी स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएँ पहचानने और उचित उपचारी उपाय करने में बच्चों की मदद करना।
7. तमाम खतरनाक स्थितियों में सुरक्षा सम्बन्धी नियमों के प्रति जागरूकता पैदा करना ताकि दुर्घटनाओं और चोट तथा नुकसान से बचा जा सके।
8. बच्चों की उठने–बैठने आदि की मुद्राएँ, भंगिमाएँ सुधारना।
9. विभिन्न शारीरिक गतिविधियों में शामिल होने के लिए बच्चों को प्रेरित करना जिससे कि उनका तंत्रिका–मांसपेशीय समन्वय (न्यूरो–मस्क्युलर को–ऑर्डिनेशन) बेहतर हो।
10. किशोरावस्था के दौरान विकसित होने की प्रक्रिया, और एच.आइ.वी./एड्स को समझने में बच्चों की मदद करना।
11. स्कूल और घर के मनो–सामाजिक मुद्दों से निपटने के लिए बच्चों में आवश्यक कौशल विकसित करना।
12. खेलकूद और क्रीड़ाओं, एन.सी.सी. वगैरह के जरिए बच्चों में ऐसे सामाजिक और नैतिक मूल्य विकसित करना कि आगे चलकर वे जिम्मेदार नागरिक बन सकें।
13. योगासनों व ध्यान के प्रति बच्चों में रुचि पैदा करना।
14. अलग प्रकार से सक्षम, अपंग बच्चों की शारीरिक और मनो–सामाजिक समस्याएँ सुलझाना।

ये उद्देश्य हौसला पस्त करने वाले लग सकते हैं। समूह ने भी यह माना है। इस बात को स्वीकार किया गया है कि योग और शारीरिक शिक्षा के रास्ते में आने वाली बाधाओं का नाता ऐसे ही कई कारकों से है जिनका असर आम तौर पर स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता पर पड़ता है – जैसे, अपर्याप्त मूलभूत ढाँचा, अपर्याप्त हवा, पानी, रौशनी और परिवहन सुविधाएँ। पर्याप्त संख्या में प्रशिक्षित शिक्षकों का न होना भी एक गम्भीर समस्या है, जो दरअसल समस्त सेवा–पूर्व और सेवा–दौरान अध्यापक–प्रशिक्षणों में विषय को ठीक ढंग से न बरतने के चलते पैदा हुई है। इसके चलते, विषय को दूसरे महत्वपूर्ण विषयों के बराबर का दर्जा दिए जाने के बावजूद, व्यावहारिक स्तर पर इसे वह महत्व नहीं मिल पाता जिसके लायक यह है। इसलिए समूह की एक प्रमुख अनुशंसा यही है कि इस विषय को गम्भीरता से लेते हुए सामान्यतौर पर योग और शारीरिक शिक्षण हेतु तथा खासतौर पर अन्य विषयों के साथ इसके जुड़ाव हेतु अध्यापकों की तैयारी पर ध्यान दिया जाना चाहिए।

समूह द्वारा जिन अन्य दो महत्वपूर्ण विषयों पर ध्यान दिया गया है, वे हैं किशोरों एवं किशोरियों की स्वास्थ्य सम्बन्धी जरूरतें और एक व्यापक मानसिक–स्वास्थ्य कार्यक्रम। समिति ने किशोरावस्था के दौरान आत्मछवि के विकास से जुड़ी खास जरूरतों पर ध्यान देने की बात पर जोर दिया है। इसके लिए स्वतन्त्रता, आत्मीयता, यौनिक स्वास्थ्य, एच.आइ.वी./एड्स और नशीली दवाओं के दुरुपयोग जैसे मसलों को सावधानीपूर्वक और जिम्मेदार तरीके से निपटाना होगा। मानसिक–स्वास्थ्य के मसलों को लेकर समिति ने इस बात को रेखांकित किया है कि बच्चों को परिवेश

और परीक्षा सम्बन्धी तनावों से निपटने के काबिल बनाने की जरूरत है। आज जब अनेक प्रकार के तनावों के चलते विद्यार्थियों द्वारा नितान्त अनचाहा, और कभी–कभार अन्तिम, कदम उठा लेने के मामले दिन–ब–दिन बढ़ते जा रहे हैं, ऐसे में यह अनुशंसा और भी अधिक प्रासंगिक हो जाती है।

'मूल्यांकन' के मुद्दे से शायद ठीक ढंग से निपटा नहीं गया है। लिखित और प्रायोगिक परीक्षा की जरूरत की बात तो यह करता है, पर जोर अभी भी 'परम्परागत परीक्षा' पर है। ऐसे में तो यह किसी भी अन्य उबाऊ विषय की तरह बनकर रह जाएगा। यहाँ फोकस बच्चों को 'परखने' की बजाय 'मेडीकल और शारीरिक जाँच' पर हो सकता था। दो और खलनेवाली बातें हैं –

(क) खेलकूद की बात करते समय 'मस्ती और मजे' का जिक्र एक बार भी नहीं किया गया। किसी भी बच्चे से 'खेलकूद' के बारे में पूछें तो उसका तुरन्त जवाब होगा, 'कितना मजा आएगा न!' खेलों और शारीरिक–शिक्षा में मौज–मस्ती सुनिश्चित करने की बात सिरे से गायब है। इसका एक कारण तो यह हो सकता है कि 'खेलों' को बस स्वास्थ्य और शारीरिक–शिक्षा के एक हिस्से के तौर पर शामिल किया गया है, जिसे एक 'विषय' के रूप में लिया जाता है। सम्भवतः स्कूलों को अपने यहाँ एक अनिवार्य 'खेलकूद' पीरियड रखने को प्रेरित किए जाने की जरूरत है। एक ऐसा पीरियड जो अलग से रखा ही इसलिए गया हो कि अलग–अलग तरह के व्यक्तिगत और सामूहिक मैचों में भाग लेकर बच्चे मस्ती कर सकें और आनन्द ले सकें।

(ख) एक अच्छे शारीरिक शिक्षक की सोच को लेकर इसमें एक शब्द भी नहीं है। ऐसे में यह बात जरा भी आश्चर्यजनक नहीं लगती कि अधिकांश स्कूलों में शारीरिक शिक्षक ही बच्चों के लिए सबसे 'डरावना जीव' होता है क्योंकि उसका नाम लेते ही सजा, शारीरिक कष्ट और आतंक का साया बन जाता है। शारीरिक शिक्षक की तैयारी वाले हिस्से में इस पहलू पर बात की जानी चाहिए थी।

लेकिन कुल मिलाकर हम यह कह सकते हैं कि समूह ने विषय को अच्छे–खासे और समग्र ढंग से बरता–परखा है। कुछ महत्वपूर्ण अनुशंसाओं में ये भी शामिल हैं –

- दसवीं कक्षा तक विषय को अनिवार्य बनाते हुए इसे दूसरे प्रमुख विषयों के समकक्ष रखें।
- भोर समिति की रिपोर्ट में व्यक्त इस विषय की व्यापक परिभाषा को अपनाकर अमल में लाएँ।
- स्वास्थ्य सम्बन्धी देखभाल, स्कूल में स्वच्छ–स्वस्थ वातावरण, स्कूली मध्याह्न भोजन, पोषण, स्वास्थ्य, डॉक्टरी जाँच और शारीरिक शिक्षा के सभी आयामों को इस विषय के दायरे में शामिल करें।
- मध्याह्न भोजन को पाठ्यचर्या का हिस्सा बनाया जाना चाहिए।
- शिक्षा और स्वास्थ्य के विभागों द्वारा किए जा रहे प्रयासों के बीच तालमेल बनाएँ।
- योग और स्वास्थ्य शिक्षा में बाहरी गतिविधि न्यूनतम हो।
- विभिन्न विषयों की पाठ्यचर्या का एक दूसरे के साथ जुड़ाव और परस्पर नियोजन तथा विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, भाषा व अन्य प्रासंगिक विषयों के साथ स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा के एकीकरण की जरूरत।
- योग, स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा की अध्यापक–प्रशिक्षण पाठ्यचर्या की समीक्षा और अध्यापकों की तैयारी के कार्यक्रमों में इसे अनिवार्य रूप से शामिल करना।

समूचे सैद्धान्तिक पर्चे में बड़ी साफगोई और शिद्दत से यह भाव उभरकर आता है कि इस विषय को न तो वह अहमियत मिली है और न ही इसकी ओर वह ध्यान दिया गया है जिसका यह वाकई हकदार है। इस सन्दर्भ में, यह दिलचस्प बात है कि एन.सी.एफ. दस्तावेज में इस विषय को 'दो से भी कम पन्ने' दिए गए हैं। यह तथ्य शायद अपनी कहानी स्वयं बयान करता है।

***डी.डी. करोपाडी*** *अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन, बंगलौर में अनुसंधान और दस्तावेजीकरण टीम के साथ काम करते हैं। इससे पहले वे भारत की एक अग्रणी मार्केट रिसर्च कम्पनी में निदेशक रह चुके हैं। उनके पास पच्चीस वर्ष से भी अधिक का कॉरपोरेट अनुभव है। पिछले आठ वर्षों से वे विकास–क्षेत्र में सेवारत हैं। उनसे karopady@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

# 03 शिक्षा में खेलों का विश्वव्यापी परिप्रेक्ष्य

टेड मरे

सूची दुनिया के लगभग सभी देश शारीरिक शिक्षा और खेलों की आवश्यकता को लेकर सहमत हैं, लेकिन खेलों और शारीरिक शिक्षा कार्यक्रमों को स्कूलों में लागू करने के तौर–तरीकों की बात करें तो अलग–अलग देशों में भारी असमानता है। सौभाग्य से, मुझे अपने देश अमेरिका के साथ–साथ अन्य बहुत–से देशों में रहने का मौका मिला है। मैं कई देशों में शारीरिक शिक्षा के प्रति अपनाए गए दृष्टिकोण को लेकर अपने अनुभवों में से कुछ को साझा करना चाहूँगा।

खेलों के बारे में अलग–अलग देशों के नजरिए का प्रभावपूर्ण आकलन करने से पहले जरूरी है कि हम कुछ अन्तरों को जान लें। पहला अन्तर तो एक ओर स्कूली पाठ्यचर्या के हिस्से के तौर पर शारीरिक शिक्षा (जिसका ध्यान विभिन्न प्रकार की शारीरिक गतिविधियों में व्यापक भागीदारी पर केन्द्रित रहता है) तथा दूसरी ओर प्रतियोगी खेलों के बीच का है। दूसरा अन्तर कानूनों में कैद मानकों और जमीनी स्तर पर उनके पालन (तथा जबरन उन्हें लागू करने) के आड़े आने वाली वास्तविकताओं के बीच का है।

सबसे पहले अमेरिका को लें क्योंकि भारत में उसे ही सबसे ज्यादा अनुकरणीय माना जाता है। मुझे याद है, जब मैं बड़ा हुआ, हमें सप्ताह में कम से कम तीन दिन शारीरिक शिक्षा दी जाती थी। उसका एक ढाँचा तो था, फिर भी, इसमें ज्यादातर डौजबॉल और किकबॉल जैसे खेल ही शामिल रहते थे। कौशल विकसित करने पर कम ही जोर रहता था। इसके फलस्वरूप स्पष्ट हो ही जाता था कि कौन एथलीट है और कौन नहीं। जो एथलीट नहीं थे, जिनकी खेलने में रुचि नहीं दिखाई देती थी, उन्हें प्रोत्साहित करने की कोई कोशिश नहीं की जाती थी। उन्हें असफलता के अहसास के साथ छोड़ दिया जाता था और इसलिए वे डरावनी 'जिम कक्षा' से पीछा छुड़ाने के लिए कुछ भी कोशिश करने को तैयार रहते थे। अध्ययनों से पता चलता है, लगभग आधे अमेरिकन यह कहते हैं कि जहाँ तक उन्हें याद है, पहली बार वे शारीरिक शिक्षा की कक्षा में ही फेल हुए थे!

अमेरिका का केवल एक प्रान्त – इलिनॉय – दैनिक शारीरिक शिक्षा का पक्षधर है। दूसरे प्रान्तों में से अधिकतर, सप्ताह में केवल दो घण्टे ही शारीरिक शिक्षा देना काफी समझते हैं। यह बात अलग है कि यह भी वास्तव में लागू हो पाता है या नहीं। खास तौर से पिछले दशक में, अमेरिकी शिक्षा का जोर इस बात पर रहा है कि ''कोई बच्चा न पिछड़े''। इसलिए पूरा ध्यान मानक परीक्षण के अंकों पर है। कोई भी विषय जो परीक्षा की तैयारी से सीधे न जुड़ा हो, या तो समाप्त कर दिया गया है या अनदेखा कर दिया गया है। दुर्भाग्यवश, शारीरिक शिक्षा भी इन्हीं में शामिल है। इससे बदतर बात हो नहीं सकती, खासतौर पर तब, जब अमेरिकी बच्चे जानलेवा मोटापे का शिकार हो रहे हों।

शारीरिक शिक्षा के कई नवाचार अमेरिका में हुए हैं। 'स्पार्क' जैसे अमेरिकी संगठनों ने शारीरिक संचालन तथा खेल–कूद सम्बन्धी दक्षताओं के विकास के लिए आयु–अनुरूप रोचक और मन को भाने वाली पाठ्यचर्या तैयार की। अनेक स्कूल किक–बॉक्सिंग, एरोबिक्स जैसी कक्षाओं की पेशकश के साथ स्वास्थ्य–क्लब मॉडल अपना चुके हैं और स्वास्थ्य–क्लब कक्षाओं की ही तरह के कैम्प चलाते हैं। शारीरिक शिक्षा की अनेक कक्षाओं में अब स्वास्थ्य एवं पोषक तत्वों सम्बन्धी शिक्षा को शामिल करना जरूरी कर दिया गया है। स्वास्थ्य सम्बन्धी सम्पूर्ण समझ बनाने के लिए यह अच्छा तो है, लेकिन इससे होता यह है कि शारीरिक गतिविधि में खर्च किए जाने वाले वास्तविक समय से ध्यान बँट जाता है।

जहाँ तक स्कूलों में संगठित प्रतियोगी खेलों की बात है, अमेरिका निःसन्देह सबसे आगे है। बेहतर ढाँचागत व्यवस्था वाली प्रतियोगी–लीग्स तो अनेक प्रकार के खेलों में हैं, और इनमें महिलाओं और पुरुषों, दोनों का समावेश है, जो एशिया में बमुश्किल ही देखने को मिलता है। असल में कानून तो यही कहता है कि लड़कों और लड़कियों को बराबर की सुविधाएँ और भागीदारी मिलनी चाहिए। दुर्भाग्य से, अधिक ध्यान प्रतियोगी समूह–खेलों पर केन्द्रित रहता है; जीवन भर चलने वाले, जिन्दगी भर स्वस्थ रखने वाले, दौड़, साइक्लिंग तथा टेनिस जैसे खेलों पर कम ध्यान दिया जा रहा है। स्कूल स्तर पर खेलों में भाग लेने वाले अधिकतर खिलाड़ी विश्वविद्यालय स्तर पर पहुँचकर प्रतिस्पर्द्धा में नहीं रह पाते। इस तरह, उनमें से ज्यादातर तो हमेशा के लिए खेलों को अलविदा कह देते हैं और पढ़ाई–लिखाई, डेटिंग तथा पीने–पिलाने के दबावों में फँसकर सेहत का नाश कर बैठते हैं।

आस्ट्रेलिया भी एक ऐसा देश है जहाँ खेलों में भागीदारी

पर भरपूर जोर दिया जाता है; लेकिन संयोजित ढंग से शारीरिक शिक्षा के लिए कोई अनुदेश नहीं है। हाल ही में वहाँ स्कूलों में प्रतिदिन शारीरिक शिक्षा पुनः शुरू किए जाने सम्बन्धी कानून बनाए गए हैं। बहरहाल, सचाई तो यह है कि नेतृत्व की आशा खेल–टीमों से की जाती है न कि शारीरिक शिक्षा के स्टाफ से! शारीरिक शिक्षा के पेशेवरों के लिए सम्मान और प्रशिक्षण की ऐसी ही कमी न्यूजीलैण्ड में भी है। यही वजह है कि वहाँ खेलों की संस्कृति से सम्बद्ध अधिकतर गतिविधियाँ स्कूली वातावरण से बाहर ही सम्पन्न होती हैं।

स्कूलों में दी जाने वाली शारीरिक शिक्षा और क्लबों तथा दूसरे संगठनों में चलने वाली खेल–गतिविधियों के बीच तालमेल बैठाने की कोशिशों में ब्रिटेन इन दिनों सक्रिय हो उठा है। उन्होंने शारीरिक शिक्षा एवं स्कूल–क्लब गठजोड़ (फिजीकल एजूकेशन स्कूल क्लब लिंक्स) कार्यक्रम में धन लगाया है। इसका उद्देश्य 5 से 16 वर्ष आयु–वर्ग के प्रत्येक बच्चे को सप्ताह में चार घण्टे खेलों में व्यस्त रखना है। इनमें दो घण्टे शारीरिक शिक्षा की कक्षा के लिए और बाकी स्कूल, समुदाय तथा क्लब की गतिविधियों के लिए होंगे। यह कार्यक्रम शुरू हुए अभी इतना समय नहीं बीता कि इसका ठीक से आकलन किया जा सके, फिर भी ऐसा लगता है कि दूसरी इकाइयों के साथ मिलकर काम करना स्कूलों द्वारा उठाया गया अक्लमन्दी का कदम है। इससे खेलों में समग्र रूप से भागीदारी बढ़ेगी। हाँ, यह देखना अभी बाकी है कि यह कदम विभिन्न खेल गतिविधियों में भागीदारी को बड़े पैमाने पर प्रोत्साहित करने के लिए उठाया गया है या मात्र इसलिए कि सुपरस्टार एथलीटों को आगे आने के लिए कुछ अधिक सुविधाएँ उपलब्ध करवाई जाएँ?

सिंगापुर ऐसा देश है जहाँ कानून पक्के तौर पर लागू होते हैं, इसलिए यह तो तय है कि वहाँ उनका पालन भी होगा। परीक्षा के दिनों को छोड़कर, प्रति सप्ताह दो घण्टे तो शारीरिक शिक्षा को प्रत्येक स्कूल द्वारा दिए ही जाने

हैं। प्रत्येक स्कूल में छात्रों के शारीरिक स्वास्थ्य की जाँच के लिए साल में एक बार स्वास्थ्य परीक्षा वहाँ अनिवार्य है। यह प्राप्त अंकों के आधार पर स्वास्थ्य के आकलन मात्र के लिए नहीं है, बल्कि कम अंक पाने वालों को दो माह तक काउण्टी की अनिवार्य सैनिक सेवा करनी पड़ती है। सुनने में यह अच्छा और लाभप्रद लगता है लेकिन सिंगापुर में खेलों का विकास बहुत अच्छा नहीं है क्योंकि अकादमिक सन्दर्भ में बेहतर प्रदर्शन का बहुत अधिक दबाव रहता है। वे शारीरिक शिक्षा के लिए समय केवल इसलिए निकाल पाते हैं क्योंकि शनिवार के पूरे दिन समेत शिक्षण के लिए उनके पास पूरा सप्ताह रहता है। अकादमिक पक्ष पर केन्द्रित इस ध्यान की वजह से बेहतरीन एथलीटों द्वारा उच्चतम स्तरों के लिए प्रशिक्षण हेतु समय देने की क्षमता कुन्द हो गई है।

भौगोलिक आकार और खेलों पर ध्यान केन्द्रित करने की दृष्टि से चीन इसके एकदम उलट है। लेकिन सरकार से आर्थिक मदद और समर्थन के सन्दर्भ में दृष्टिकोण यहाँ भी सिंगापुर जैसा ही है। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर खेलों में उनके अभूतपूर्व परिणामों का आधार सरकार की वित्तीय मदद से प्रतिभाओं की पहचान और उनके प्रशिक्षण की प्रक्रिया है। अगर यह तय हो जाता है कि अमुक बच्चा (आम तौर पर बहुत कम उम्र में) खेल विशेष हेतु प्रतिभा रखता है, तो उसे राष्ट्रीय खेल स्कूल में भेज दिया जाता है। यहाँ किताबी शिक्षण तो कम ही दिया जाता है, लेकिन खेल और उसके विकास के लिए प्रशिक्षण पूर्णकालिक आधार पर दिया जाता है, उस पर पूरा बल दिया जाता है। इस प्रक्रिया से बहुत–से खेलों, विशेष रूप से जिम्नास्टिक्स और गोताखारी जैसे खेलों में (जिनमें क्रियाओं की बार–बार पुनरावृत्ति पर बल रहता है) विश्व चैम्पियन खिलाड़ी पैदा करने में मदद मिल सकती है। यह कहना मुश्किल है कि इस प्रक्रिया में कितने बच्चे शारीरिक, मानसिक या दोनों तरह से जलकर राख हो जाने की स्थिति तक पहुँचते हैं। इस प्रक्रिया से "एथलीट" और "गैर–एथलीट" के बीच विभाजन भी पैदा होता है।

चीन के नियमित स्कूल भी दो घण्टे प्रति सप्ताह शारीरिक शिक्षा देने के आदेश का पालन करते हैं। मानक परीक्षण विकसित किए गए हैं जो समग्र स्वास्थ्य स्तर के आकलन के लिए हर दूसरे साल किए जाते हैं। आगामी ग्रेड में जाने के लिए विद्यार्थियों को शारीरिक शिक्षा के एक स्तर तक की कुशलता हासिल करनी होती है। स्वास्थ्य सम्बन्धी जानकारी पर भी जोर दिया जाता है और शारीरिक शिक्षा के शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण का बहुत ही संयोजित कार्यक्रम है।

सेकेण्डरी स्कूलों में शारीरिक शिक्षा के शिक्षकों में से केवल 30 प्रतिशत के पास ही कॉलेज स्तर की डिग्री के बराबर की डिग्री है। उनमें से अधिकतर के पास एक एसोसिएट डिग्री है जो शारीरिक शिक्षा के दो से तीन–वर्षीय विशेष कार्यक्रम के बराबर होती है।

दूसरी ओर चीन की तरह भारत के पास जबरदस्त जनसंख्या–पूल है जहाँ से प्रतिभाएँ पैदा की जा सकती हैं। भारत खेलों, और शिक्षा पर ध्यान केन्द्रित करने, तथा शारीरिक गतिविधि के प्रति व्यापक प्रेम विकसित करने के बीच समुचित सन्तुलन बनाने में कामयाब हो जाए और समर्पण की भावना के साथ चैम्पियन एथलीटों को विकसित कर पाए तो सचमुच अच्छा रहेगा।

मेरी व्यक्तिगत, निजी राय और नजरिए की बात करें तो कोशिश प्रत्येक अन्य देश की बेहतर प्रथाओं को अपनाने की होनी चाहिए। खेल और मौज–मस्ती के वातावरण में कौशलों को समुचित उम्र में विकसित किए जाने पर बल देने की बात को मैं अमेरिका से ग्रहण करना चाहूँगा, ताकि कम उम्र में ही खेलों के प्रति प्रेम की भावना जागृत हो। सिंगापुर और चीन से मानकीकृत जाँच की रिवायत को लेना उपयुक्त होगा। लेकिन इसका ध्यान बच्चे के अपने विकास को मापने पर केन्द्रित होना चाहिए न कि उस विकास की तुलना अन्य बच्चों के विकास की गति से करने पर। एक ओर शारीरिक शिक्षा के ही सन्दर्भ में विभिन्न तरह के खेलों से व्यापक स्तर पर परिचय, और दूसरी ओर प्रतिभाशाली एथलीटों के लिए वित्तीय सहायता के मौके उपलब्ध होना ताकि वे स्कूल, राज्य, राष्ट्रीय और पेशेवर स्तर पर किसी खेल को अपना सकें – इन दोनों स्थितियों में एक सन्तुलन होना चाहिए।

शारीरिक शिक्षा बच्चों में उम्र भर के लिए अच्छी आदतें डालने का काम कर सकती है और यह उनके लिए कई तरह से लाभप्रद होगा। अच्छा होगा यदि शिक्षक और माता–पिता इस बात को समझें और इस बात को भी कि यदि बच्चे अपनी पसन्द के खेल में प्रशिक्षण का लाभ पा सकें तो यह उनके लिए कितना लाभप्रद होगा। किसी सपने को सच में तबदील करने के लिए (जैसे, पेशेवर टेनिस खिलाड़ी बनने का सपना) आवश्यक समर्पण भाव से जो जीवन–कौशल विकसित होते हैं, वे बच्चों को जीवन में सफल होने के लिए लैस कर सकते हैं। फिर वे जो भी करियर चुनें, कोई फर्क नहीं पड़ता। खेलों में अगर कोई पेशेवर स्तर तक सफल नहीं हो पाता तो इसे उसकी असफलता नहीं माना जाना चाहिए, क्योंकि उत्कृष्टता की तलाश के दौरान उसमें अनुशासन, समय–प्रबन्धन, खेल–भावना, नतीजों की जिम्मेदारी लेने और पराजय से सीखने की क्षमता जैसे गुणों का विकास हो गया होगा। इस अनुभव के परिणामस्वरूप बच्चों में खेल के लिए जीवन–पर्यन्त प्रेम पैदा हो चुका होगा, जो उन्हें जिन्दगी के हर मोड़ पर ताउम्र ठीक और स्वस्थ रखेगा, जीवन के हर क्षेत्र में सफलता की ओर ले जाएगा।

मेरी दृष्टि में, सभी भारतीय विद्यार्थियों के लिए हमारा लक्ष्य उनमें यह समझ विकसित करना होना चाहिए कि स्वस्थ, सक्रिय शरीर उनके मानसिक बल और दक्षता में वृद्धि करेगा और इसलिए, उन्हें शरीर, मन और आत्मा के बीच एक स्वस्थ सन्तुलन कायम रखने का प्रयास करना चाहिए।

***टेड मरे*** *36 वर्षों तक संसार के सर्वाधिक नवाचारी और बहुमुखी प्रतिभा वाले टेनिस कोचों में से एक हैं। हर उम्र और क्षमता के खिलाड़ियों को प्रशिक्षित करते हुए उन्होंने अनेक देशों के क्लबों, रिसोर्टों और अकादमियों में कार्यक्रम चलाए हैं। भारतीय ग्रैण्ड स्लैम विजेता लिएण्डर पेस और ओलिम्पिक पदक विजेता गिगी फर्नांडीज़ भी इन खिलाड़ियों में शामिल हैं। भारतीय टेनिस से टेड का लम्बा और सफल रिश्ता रहा है। 1985 में उन्हें ब्रिटैनिया–अमृतराज टेनिस फाउण्डेशन (बी.ए.टी.) का पहला कोच चुना गया। अमृतराज परिवार के साथ मिलकर उन्होंने भारत के लिए डेविस कप खिलाड़ियों की आगामी पीढ़ी तैयार करने के लिए अथक श्रम किया। कुछ समय अमेरिका में रहने के बाद टेड 2008 में अपनी पत्नी शिखा के साथ बंगलौर लौट आए जहाँ उन्होंने ग्रीष्म जूनियर टेनिस एवं योग कैम्प की बेहद सफल शुरुआत की।*

# 04 शिक्षा में खेल : चाहिए नीतिगत फोकस और एक मिशनरी जोश

ऋषिकेश

हमारी इस प्यारी धरती पर दो देश सौ करोड़ से अधिक की आबादी वाले देश हैं। इनमें से एक तो खेलों की महाशक्ति बन गया, जबकि दूसरा इस सूची में नीचे से पहले नम्बर पर है। बीसवीं सदी के मध्य में ये दोनों एक दिलचस्प मोड़ पर खड़े थे। उधर चीन में 1949 के निर्णायक क्षणों में एक गृहयुद्ध का अन्त होकर पीपुल्स रिपब्लिक ऑफ चाइना का उदय हुआ था; इधर भारत को 200 साल के ब्रिटिश साम्राज्य से मुक्ति मिली थी और लोकतान्त्रिक भारतीय गणराज्य की स्थापना हुई थी। यहाँ से दोनों अपने–अपने रास्ते चले – चीन चला कॉमरेड माओ की साम्यवादी राह पर और भारत ने पकड़ी लोकतान्त्रिक समाजवाद की डगर। वक्त के उस मुकाम पर, ये दोनों मुल्क विभिन्न सूचकांकों के हिसाब से करीब–करीब एक ही पायदान पर खड़े थे; खेल में भी, खेलों के अलावा भी। असल में तो तथ्यों[1] पर चलें तो कई मसलों में भारत चीन से आगे ही था, कुछ–कुछ। और चीन चूँकि तब बाकी सारी दुनिया के लिए एक 'बन्द' देश था, सो अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर भी चीन इतना पहचाना नहीं जाता था जितना कि भारत।

अन्तर्राष्ट्रीय खेलों के मैदान में इन दो देशों के बीच का अन्तर इससे अधिक क्या हो सकता था कि एक ओर जहाँ भारत[2] 1920 से लगातार ओलिम्पिक खेलों में भाग लेता आया है, वहीं उसमें चीन की शिरकत का दौर सन् 1984 में जाकर शुरू हो पाया। यानी कि 2008 के उन खेलों से बस कुछ 25 बरस पहले, जिनकी मेजबानी चीन ने की थी। लेकिन असल फर्क तो यहाँ है – केवल 9 ओलिम्पिक्स में भाग लेकर चीन 385 पदकों की शानदार उपलब्धि हासिल कर चुका है, जबकि भारत अब तक 23 ओलिम्पिक खेलों में शामिल हुआ, लेकिन उसके हाथ लगे बस 20 पदक! सन् 2008 के खेलों में चीन ने बनाया पदकों का एक शतक जिसमें 51 स्वर्ण पदक थे, जबकि भारत ने केवल 3 स्वर्ण पदक जीते। इनमें व्यक्तिगत प्रतियोगिता में किसी भारतीय खिलाड़ी द्वारा जीता गया पहला–पहला स्वर्ण पदक भी शामिल है। 1996 के खेलों में चीन चौथी पायदान पर था, 2000 के ओलिम्पिक्स में तीसरे स्थान पर, 2004 में दूसरे स्थान पर और सन् 2008 में वह खेलों का मेजबान था तो पदकों का सरताज भी। जबकि इसके उलट, साल 1996 और 2000 के खेलों में भारत रहा 71वें स्थान पर, और इन खेलों के अगले दो संस्करणों में क्रमशः 65वें और 50वें स्थान पर।[3]

इस तुलना को चीन जैसी व्यवस्था लागू किए जाने के हक में दिए जाने वाले तर्क के रूप में न देखा जाए, फिर चाहे वह व्यवस्था खेलों के लिए हो या शासन की। यह तुलना केवल इस परिप्रेक्ष्य में की जा रही है कि एक ही समय पर अपने

इतिहास का एक नया अध्याय शुरू करने वाले समान–सी आबादी वाले दो पड़ोसी देश खेलों में उपलब्धि के सन्दर्भ में आज दो अलग–अलग मुकामों पर खड़े दिखाई देते हैं। इस कड़वी सच्चाई के मद्देनजर कि हम तो 'कहीं पहुँचे ही नहीं', वाकई उपयुक्त होगा कि हम अपने अन्दर झाँकें।

मैं साम्यवादी तन्त्र बनाम पूँजीवादी लोकतन्त्र के तर्क को बहस के बाहर रखने के लिए एक साधारण सा तर्क प्रस्तुत करना चाहूँगा। मेरा कहना है कि खेलों में साम्यवादी व्यवस्था की भूमिका से पूँजीवादी लोकतन्त्रों की सफलता की व्याख्या नहीं हो सकती। जिन 125 देशों ने कम से कम एक पदक जीता है उनमें भारत सबसे पीछे है।[4] यानी समाजवादी लोकतान्त्रिक गणराज्य भारत के ऊपर नाना प्रकार के देश हैं जिनमें कोई साम्यवादी–व्यवस्था का है, तो कोई पूँजीवादी–व्यवस्था का, कोई धर्मतन्त्रीय है तो कोई निरंकुश तन्त्र का, और कोई है राजशाही भी – यानी हमसे ऊपर हर अन्य व्यवस्था का देश है। इससे स्पष्ट है कि भारत बनाम चीन की बहस को दोनों देशों में प्रचलित शासनतन्त्र के चश्मे से नहीं देखा जाना चाहिए।

अन्तर्राष्ट्रीय खेल–मैदान में भारत की असफलता पर कई व्याख्याएँ प्रस्तुत की गई हैं, ढेरों सिद्धान्त झाड़े गए हैं। 2008 में संयुक्त राज्य अमेरिका के ड्यूक विश्वविद्यालय के दो विद्वानों ने एक शोध–पत्र[5] में लिखा था, ''तुर्की ने, जिसकी आबादी भारत की आबादी के दसवें हिस्से से भी

कम है, 2004 के ओलिम्पिक्स में उसी भारत के मुकाबले 10 गुना पदक जीते थे; भारत की आबादी के 6 प्रतिशत जितनी आबादी वाले थाइलैण्ड ने भी 8 गुना पदक तो जुटा ही लिए थे।'' अपने उस पर्चे में इन दो विद्वानों ने दलील दी कि इस सन्दर्भ में 'सामाजिक गतिशीलता' का पहलू किसी देश की सफलता का एक कारक है। वैसे वे यह भी जोड़ते चलते हैं कि क्यूबा, इथियोपिया, कजाखिस्तान, केन्या और उज्बेकिस्तान ऐसे राष्ट्र नहीं हैं जो अपनी ऊँची औसत आय के लिए जाने जाते हैं, फिर भी भारत की तुलना में उन्होंने कहीं अधिक पदक बटोरे हैं। इसलिए हम कह सकते हैं कि खेलों में भारत के इस निराशाजनक प्रदर्शन के लिए जिम्मेदार बहुतेरे कारकों में कुछ तो सच्चाई है। मसलन –

- लोगों की गरीबी (कुछ अनुमानों के मुताबिक हमारी 80 प्रतिशत आबादी ग़रीब है)।[6]
- कुपोषण (कुपोषण में भारत दुनिया का दूसरे नम्बर का देश है)।[7]
- बुनियादी ढाँचे के प्रति हमारी घोर लापरवाही (ओलम्पिक में एकमात्र व्यक्तिगत स्वर्ण पदक विजेता अभिनव बिन्द्रा के पिता द्वारा अभ्यास के लिए एक निजी शूटिंग रेंज बनवाया जाना हमारी खस्ताहाल सार्वजनिक सुविधाओं के बारे में बहुत कुछ बोलता है)।[8]
- प्रायोजकों की कमी (भारतीय उड़नपरी पी.टी. ऊषा की एथलेटिक्स अकादमी की शुरुआत कंगाली की हालत में हुई और आज भी अपनी इस अकादमी को चलाए रखने के लिए उन्हें ढेरों पापड़ बेलने पड़ते हैं)।[9]
- राजनैतिक भ्रष्टाचार (कॉमनवेल्थ खेल घोटाला[10]) और संस्थागत बिखराव (हमारे हॉकी संगठनों की लम्बे दौर से चली आ रही अन्दरूनी कलह के चलते आई.एच.एफ. द्वारा चैम्पियनशिप ट्रॉफी हॉकी टूर्नामेण्ट निरस्त कर दिया जाना)।[11]

  क्रिकेट का दबदबा (हम एक–दिवसीय क्रिकेट में वर्तमान विश्व चैम्पियन हैं), और
- हमारी जीवन शैली और संस्कृति से जुड़े अन्य कारक (हमारा खान–पान वसा–समृद्ध है और जब हमारे खिलाड़ी ही फिटनेस के लिहाज से कमजोर माने जाते हैं तो आम आदमी की तो बात ही क्या करें)।

हाँ, एक कारक जरूर ऐसा है जिसे अधिकांश विश्लेषक गिनती में लाने से चूक जाया करते हैं, और वह है हमारी शिक्षा की औपचारिक व्यवस्था में 'खेलों' का गम्भीर अभाव। इस लेख में मैं खेलों या खेलों की कमी के इसी पहलू को रेखांकित करना चाहूँगा।

खेलों में हमारी कमतरी की जड़ इस बात में है कि हमारे यहाँ स्कूली शिक्षा की ठेठ शुरुआत में खेलकूद को जरूरी प्रोत्साहन नहीं दिया जाता। नतीजतन, हमारे यहाँ एक खेलप्रेमी समाज की नींव ही ढंग से नहीं रखी जाती।

यह सही है कि देश में ऐसे कई स्कूल हैं जो खेलों पर ध्यान देते हैं और अपनी शैक्षिक उपलब्धियों तथा खेलकूद की उपलब्धियों के बीच एक सन्तुलन बैठाने की मशक्कत में लगे रहते हैं। लेकिन नीति के स्तर पर इस सन्दर्भ में 'शारीरिक शिक्षा' पर सप्ताह में एक निर्धारित कालखण्ड के अलावा खास कुछ और नहीं है – और अधिकांश छात्रों के लिए यह अनुभव भी खेलकूद से मिलने वाला आनन्द होने के बजाय मिलिटरी में करवाई जाने वाली उबाऊ कवायद जैसा होता है। स्कूलों की शारीरिक शिक्षा में प्रार्थना सभा सहित सभी प्रकार की औपचारिक और नियोजित शारीरिक गतिविधियाँ होती हैं। दूसरी ओर खेलों का सम्बन्ध प्रतियोगी क्रीड़ाओं और शारीरिक चपलता पर आधारित दीगर गतिविधियों से अधिक जुड़ता है, जिनमें एक कौशल दूसरे के मुकाबिल होता है, और अन्ततः एक–दूजे से होड़ के चलते प्रतिभागियों का सवश्रेष्ठ प्रदर्शन उभरकर आता है।

इस लेख में ध्यान शिक्षा व्यवस्था में खेलों की भूमिका और इस बात पर केन्द्रित है कि कैसे भारत इस क्षेत्र में कुछ खास नहीं कर पाया है। अब चूँकि खेलों को शारीरिक शिक्षा की छतरी के तले रखा गया है, सो शारीरिक शिक्षा को भी हम पूरी बहस के दायरे में लेंगे। यह तो सामान्य ज्ञान की बात है कि शारीरिक शिक्षा के कालखण्ड में वही सब होता है जो हमारे स्कूलों के शारीरिक शिक्षा मास्टर तय करते हैं और यहीं बीमारी की जड़ है। हमारे

शारीरिक शिक्षा शिक्षक अपनी नौकरी उस सर्टीफिकेट (शारीरिक शिक्षा में डिप्लोमा/डिग्री) के आधार पर पाते हैं जो अगर ठीक उन्हीं नहीं तो वैसी ही बीमारियों का शिकार है जिनसे हमारे देश के अन्य शिक्षक–प्रशिक्षण कार्यक्रम भी ग्रस्त हैं जो 21वीं सदी की जरूरतों से वाकिफ ही नहीं हैं। नतीजतन, यही सब रुग्णता हमारे स्कूली शारीरिक शिक्षा शिक्षकों की गतिविधियों में झलकती है।

हाथ में छड़ी लिए यह शारीरिक शिक्षा शिक्षक ही है जो छात्रों की वक्त की पाबन्दी पर नजर रखता है, स्कूल यूनिफॉर्म से सम्बन्धित नियमों का ध्यान रखता है, असेम्बली के समय छात्रों का एक सीधी लाइन में खड़े रहने पर, तमाम स्कूली जलसों के दौरान 'सावधान', 'विश्राम' आदि की मुद्राओं पर और छात्रों द्वारा स्कूल में अनुशासन बनाए रखने पर कड़ी नजर रखता है। सो स्कूल की चारदीवारी के भीतर छात्रों के लिए उनका शारीरिक शिक्षा शिक्षक ही सबसे डरावना जीव होता है। छात्रों के मन में मौजूद यह छवि उस आदर्श छवि से एकदम उलट है जो एक शारीरिक शिक्षा शिक्षक की होनी चाहिए। हरदम उन्हें श्रेष्ठता पाने के लिए प्रेरित करते रहने वाला, हर पल उनसे 'हदों को परे धकेलने' की गुहार लगाने वाला, निर्भीक खिलाड़ियों की प्रेरणास्पद कहानियाँ सुनाकर हमेशा उनकी कुछ यूँ हौसला–अफजाई करने वाला व्यक्ति कि वे मानव शरीर की अथाह क्षमताओं से रूबरू हो पाएँ, और वह व्यक्ति जिसकी ओर वे हर बार अगाध श्रद्धा के भाव से देखें![12]

देश में ऐसे संगठनों की कोई कमी नहीं जिनका काम ही स्कूलों में शारीरिक शिक्षा या, और भी विशिष्ट रूप से, देश में खेलकूद से सम्बद्ध है। लेकिन उनके रवैये में किसी भी तरह की प्रगतिशीलता नहीं है, उनके दृष्टिकोण में कुछ भी नया नहीं होता और इसके चलते वे अज्ञात अवस्था में ही रहते हैं। 'अखिल भारतीय शारीरिक शिक्षा परिषद'[13] देश में शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रमों पर नजर रखने के लिए ऐसी ही नामजद संस्था है, जिसकी नियुक्ति भारतीय संसद के वरिष्ठ सदन ने की है, लेकिन इसके बारे में हमें बहुत कम जानकारी है। विकासशील विचार से रहित

*खेलों में हमारी कमतरी की जड़ इस बात में है कि हमारे यहाँ स्कूली शिक्षा की ठेठ शुरुआत में खेलकूद को जरूरी प्रोत्साहन नहीं दिया जाता। नतीजतन, हमारे यहाँ एक खेल प्रेमी समाज की नींव ही ढंग से नहीं रखी जाती।*

दस्तावेज के उदाहरण के रूप में 'अध्यापक शिक्षण के लिए राष्ट्रीय परिषद' (नैशनल काउंसिल फॉर टीचर एजुकेशन) के दस्तावेज 'अध्यापकों के गुणवत्तापूर्ण शिक्षण हेतु एक रूपरेखा'[14] की मिसाल रखी जा सकती है जिसमें एक अध्याय 'शारीरिक शिक्षा के लिए अध्यापकों का शिक्षण' को समर्पित है। हमें इसमें भी कोई विकासशील विचार नहीं मिलते। प्रगतिशील विचारों के अभाव के अलावा कई और कमियाँ भी इन दस्तावेजों में देखने को मिलती हैं। एक भी दस्तावेज न तो शारीरिक शिक्षा के अन्तर्गत खेलों पर अपेक्षित ध्यान देता है और न ही 'शिक्षा' की समूची व्यवस्था में शारीरिक शिक्षा के प्रति कोई समग्र नजरिया पेश करते हुआ दिखता है।

कोई 25 बरस पहले, 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति' हेतु तैयारियों के सन्दर्भ में 31 मार्च, 1986 को राष्ट्रीय प्राथमिक शिक्षा सम्मेलन में बोलते हुए तत्कालीन प्रधानमन्त्री स्व. श्री राजीव गाँधी ने घोषणा की थी – ''सिर्फ किताबी ज्ञान से चरित्र नहीं बनता। चरित्र तो विभिन्न नियमित गतिविधियों से बनता है, खेलों के द्वारा बनता है, किसी टीम में या अकेले स्वयं खेलने से बनता है।''

लेकिन शिक्षा में खेलों पर हमारा आग्रह अगर कहीं रहा भी है तो केवल 'भाषणों' में ही रहा है; यहाँ तक कि यह 'कागज' तक भी नहीं पहुँचा है। कुछ विचार अगर 'कागज' (यानी दस्तावेज) तक पहुँचे भी तो वे ऐसी ठोस, एकीकृत योजना के रूप में नहीं थे जिसे अमली जामा पहनाया जा सके। सब स्कूल वार्षिक खेल दिवस मनाने की नीति का पालन करते हैं, लेकिन एक अहम कड़ी तो नदारद ही है – उसका जुड़ाव और सम्बन्ध कक्षा के भीतर और बाहर होने वाले ज्ञान के साथ नहीं है। यदि होता तो खेलों के प्रति एक सकारात्मक रवैया बन सकता था। इसी प्रकार परीक्षाओं के दौरान खेल के सब कालखण्ड निरस्त कर दिया जाना एक ऐसी मानसिकता की ओर इशारा करता है जो आदिम भी है और यकीनी तौर पर उन एकदम हालिया अनुसन्धानों[15] से बेखबर भी, जिनके मुताबिक नियमित शारीरिक शिक्षा और शैक्षिक उपलब्धि के बीच एक सकारात्मक सह–सम्बन्ध है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986[16] 'खेल एवं शारीरिक शिक्षा' शीर्षक के अपने खण्ड में किसी भी शैक्षिक प्रक्रिया में खेलों और शारीरिक शिक्षा के महत्व पर जोर देती है। वह इसे प्रदर्शन–मूल्यांकन की समग्र प्रक्रिया का एक घटक बनाने का सुझाव देती है और शिक्षा के इमारती ढाँचे के एक अदद हिस्से के तौर पर शारीरिक शिक्षा के राष्ट्रव्यापी ढाँचे का आह्वान भी करती है। खेलों में प्रतिभा रखने वाले छात्रों

को प्रोत्साहन देने की जरूरत की बात भी इसमें की गई है। लेकिन, छात्रों द्वारा श्रेष्ठता के लिए प्रयास करने और खेलों को एक धुन, एक जज्बा बनाने पर ध्यान देने की बात गायब है। यहाँ तक कि शारीरिक शिक्षा पर एक अलग उप–समूह वाले एन.सी.एफ. 2005 से भी आशाएँ पूरी नहीं होतीं; इसका पूरा ध्यान भी स्वास्थ्य सम्बन्धी शारीरिक शिक्षा गतिविधियों पर है, न कि असल खेलकूद पर। यदि एन.सी. एफ. जैसा प्रगतिशील दस्तावेज भी मुद्दे की बात न करे तो हमें यह मान लेना चाहिए कि हमने इस सच्चाई पर गौर ही नहीं किया कि अन्तर्राष्ट्रीय खेलों में फिसड्डी बने रहने से देश और देश के लोगों की छवि को ठेस पहुँचती है।

देश में शिक्षा के भविष्य हेतु उपाय सुझाने वाले हालिया आधिकारिक दस्तावेजों में से एक, शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 पर सर्व शिक्षा अभियान की रिपोर्ट[17] भी पूर्ववर्ती दस्तावेजों द्वारा खेलों के प्रति दर्शाई गई अनभिज्ञता की परिपाटी का ही पालन करती है; इसमें भी खेल–सम्बन्धी पहलुओं पर कोई बल नहीं दिया गया है। रिपोर्ट आज हमारी व्यवस्था द्वारा अपनाए जा रहे विषय–आधारित तरीके की अड़चनों का जिक्र छेड़ती है, और यह भी बताती है कि इस रवैये के चलते समाज के महत्वपूर्ण मसलों पर चेतना जगाना किस कदर टेढ़ी खीर हो चला है। लेकिन अपनी इस बात का खुलासा करने के लिए वह खेलों का सहारा उदाहरण के तौर पर भी नहीं लेती। रिपोर्ट 'व्यवस्थागत बाधाएँ' शीर्षक के अन्तर्गत पाठ्यचर्या और मूल्यांकन पर अपने अध्याय में विभिन्न पहलुओं का जिक्र करती है। जैसे 'सभी विषयों में और सभी स्तरों पर पर्यावरण सम्बन्धी ज्ञान और कार्य सम्बन्धी प्रवृत्ति का प्रसार', 'विभिन्न विषयों में स्कूली ज्ञान और बच्चों के रोजमर्रा के अनुभवों के बीच की कड़ियाँ', 'एक स्तर से अगले स्तर तक जाने के दौरान बच्चों के विकास और उनकी निरन्तरता के प्रासंगिक चरणों हेतु प्रसंगों और विषयों की उपयुक्तता', 'अलग–अलग अनुशासनिक क्षेत्रों के अन्तर्गत आने वाले विभिन्न स्कूली विषयों हेतु प्रकरणों के बीच की अन्तर–अनुशासनिक एवं विषयपरक कड़ियाँ', और तो और, 'पाठ्यचर्या के हर पहलू में कलाओं और भारतीय शिल्पकला की विरासत को गूँथते हुए सुरुचि सम्पन्न संवेदनशीलता का विकास' जैसे कई पहलुओं का हवाला यह रिपोर्ट देती है, पर शारीरिक शिक्षा से जुड़े किसी भी पहलू का एकबारगी जिक्र भी नहीं है, खेलों की तो बात ही छोड़िए।

कोई कह सकता है कि जब खुद शिक्षा के क्षेत्र की ही अपनी कई समस्याएँ हों, ऐसे में शिक्षा के दायरे में काम करने वाले संस्थानों, संगठनों से यह उम्मीद करना कि वे खेलों या शारीरिक शिक्षा पर प्रगतिशील दस्तावेज भी बनाएँ, उनके साथ सरासर ज्यादती होगी। लेकिन हमारे देश में खेलों के प्रबन्धन और उसके प्रोत्साहन का काम जिन संगठनों के खाते है, उन पर जरा एक नजर डालें, तो आप तुरन्त समझ जाएँगे कि न सिर्फ उनकी सोच स्थिर और एक ही जगह टिकी हुई है, उनमें खेलों पर ध्यान केन्द्रित करने का माद्दा भी नहीं है जिसकी देश को आज सख्त जरूरत है।

उदाहरण के लिए, युवा मामलों और खेल मन्त्रालय की राष्ट्रीय युवा नीति 2003[18] का उद्देश्य कानून का पालन करने वाले ऐसे नागरिक तैयार करने का लगता है, जो संविधान में निहित आदर्शों के प्रति वफादार बने रहें, जो हमारे इतिहास और तहजीब के प्रति श्रद्धा भाव रखते हुए समाज–सेवा में अपना योगदान देने को तत्पर रहें – कुल मिलाकर आज्ञापरायण, शान्ति बनाए रखने वाली जनता हो। वैसे तो इस उद्देश्य में कुछ भी गलत नहीं है, लेकिन जब यह बात उस मन्त्रालय से आए जिसका काम युवा मामलों और खेलों के लिए कुछ करना है, तब यह बात दुखी कर देने वाली लगती है कि शब्द 'खेल' एक बार भी न तो इसकी उद्देश्य–सूची[19] में और न ही इसके प्रमुख सरोकारों में आता है! 'खेल' नाम का कर्म 'खेल एवं युवा मामले' मन्त्रालय के खेल विभाग के साथ नत्थी हो जाता है और युवा मामलों की नीति से उसका कुछ लेन–देन ही नहीं रह जाता!! यदि युवा मामलों एवं खेल मन्त्रालय के भीतर बने दो विभागों के बीच ही कोई एका नहीं है तो हम सोच सकते हैं कि एक ओर मानव संसाधन विकास मन्त्रालय के तहत शिक्षा विभाग और उधर खेल विभाग के बीच की स्थिति

क्या होगी जबकि मेरे हिसाब से देश को पिटे–पिटाए रास्ते से निकालने के लिए यह तालमेल अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

राष्ट्रीय खेल नीति 2001[20] में खेलों को शिक्षा से जोड़ने के मुद्दे पर बस एक छोटा–सा अनुच्छेद है; न तो आगे चलकर इसे कोई विस्तार दिया गया है और न ही कुछ सार्थक विचार प्रस्तुत किए गए हैं। हाँ, चन्द ख्वाहिशें जरूर दर्ज हैं। राष्ट्रीय खेल नीति 2007[21] कुछ अच्छे सुझाव जरूर देती है, लेकिन अब भी यह बस एक प्रारम्भिक दस्तावेज की शक्ल में ही है जो कुल मिलाकर हमारे देश में की जा रही खेलों की लगातार अनदेखी की ओर ही इशारा करता है। जनवरी 2011 में भारत सरकार द्वारा 'राष्ट्रीय खेल विकास संहिता 2011 (एन.एस.सी.आई. 2011)'[22] अधिसूचित होकर तुरन्त प्रभाव में आई। आप अगर इस दो सौ से अधिक पृष्ठों वाले दस्तावेज को पढ़ें तो तुरन्त समझ जाएँगे कि इस दस्तावेज का उद्देश्य, शुद्ध रूप से खेलों की हौसला–अफजाई करना तो है ही नहीं, इसमें तो बस खेलों को नियन्त्रित करने भर की मशक्कत है। इसका प्रयोजन बस यह सुनिश्चित करना है कि विभिन्न राष्ट्रीय खेल संघ[23], भारतीय खेल प्राधिकरण (एस.ए.आई.) और सम्बद्ध सरकारी एजेंसियाँ कहीं एक–दूसरे के आड़े न आएँ। बेशक, विभिन्न एजेंसियों के क्रियाकलापों को परस्पर–संगति में लाना और उनके उद्देश्यों की पूर्ति हेतु उन्हें प्रेरित करना भी जरूरी है और इससे खेलों में देश की छवि भी बेहतर होगी, लेकिन आज 'नीचे–से–ऊपर' वाले व्यावहारिक दृष्टिकोण की बहुत जरूरत है। 'पंचायत युवा क्रीड़ा और खेल अभियान'[24] सरीखी पहलकदमियाँ सही दिशा में उठे कदम हैं लेकिन इसकी सफलता के लिए यह देखते रहना भी जरूरी होगा कि कौन–कौन से कार्यक्रम बनाए जा रहे हैं और उनका क्रियान्वयन किस तरह हो रहा है। इन तमाम पहलकदमियों का अन्तिम लक्ष्य ग्राम स्तर पर एक खेल संस्कृति की पैठ बनाना होना चाहिए और इसकी शुरुआत ग्राम स्कूल से होनी चाहिए।

आज एक ठीक–ठाक से बुनियादी खेल ढाँचे तक पहुँच बनाना बहुत आवश्यक है। यह इसलिए और भी अधिक आवश्यक है क्योंकि अभी तक हम खेलों के लिए मूलभूत स्वास्थ्य–विज्ञान की स्थापना से भी बहुत दूर हैं। राष्ट्रीय खेल नीति 2007 के मसौदे के मुताबिक आज हमारे देश में 35 साल से कम उम्र की करीब 77 करोड़ की जनसंख्या में से केवल 5 करोड़ युवाओं को ही खेलकूद की संगठित सेवाएँ मुहैया हैं। इससे स्पष्ट है कि नीतियों को लागू करने में हम कितना कमजोर हैं। 1984 में आई पहली राष्ट्रीय खेल नीति की हुंकार ने तभी हमें चेता दिया था कि हमारी खेल–अधोसंरचना में सुधार की भीषण जरूरत है, और तमाम पंच–वर्षीय योजनाओं से इसे लगातार सम्बल भी मिलता रहा, लेकिन इस सबके बावजूद आज भी वही बदतर हालात कायम हैं।

राष्ट्रीय खेल नीति 2007 में, शैक्षिक सर्वेक्षणों के आँकड़ों पर आधारित कुछ दिलचस्प टिप्पणियाँ इस प्रकार हैं – ''दरअसल 1978 से लेकर 2002 के बीच खेल के मैदानों की उपलब्धता में, प्राथमिक स्कूलों के सन्दर्भ में 7 प्रतिशत, उच्चतर प्राथमिक स्कूलों के मामले में 9 प्रतिशत और माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्कूलों में 5 प्रतिशत की कमी आई है। अन्य खेल–सम्बन्धी सुविधाओं, जैसे कि इन्डोर हॉल, व्यायामशालाओं और उपकरणों की उपलब्धता तो बुनियादी स्तर के खेल के खुले मैदानों की उपलब्धता से भी कम है।" यहाँ तक कि हमारे शहरों में कुकुरमुत्तों की तरह फल–फूल रहे छोटे स्कूलों पर एक उड़ती नजर से ही हमें इन स्कूलों द्वारा खेल और खेलों से जुड़ी किसी भी प्रकार की गतिविधि की अनदेखी का पता चल जाता है। अब इस तरह के स्कूल भला कर भी क्या सकते हैं – इनमें से ज्यादातर तो अपेक्षाकृत थोड़े बड़े मकानों में ही चलाए जा रहे हैं। वहाँ बरामदा तक तो होता नहीं, सो खेल के मैदान की तो जुर्रत ही क्या कि वो वहाँ हो। ऐसे में, हमारी शिक्षा नीति और खेल नीति की युगल टीम बनाना, उन्हें एकीकृत करना, हमारा अगला महत्वपूर्ण कदम होना चाहिए।

कई निजी संस्थानों[25] ने स्कूलों और व्यक्तियों की जरूरतों को पूरा करने के लिए दुकानें खोल ली हैं। यह 'शिक्षा में खेल' की बढ़ती माँग की ओर इशारा करता है। इस तरह के संगठन कुछ और अभिनव बिन्द्रा बना पाने की उम्मीद में हमारे अभिजात–वर्ग के स्कूलों की मदद को आ रहे हैं। लेकिन हमारी आबादी के एक बहुत बड़े हिस्से को बीते जमाने की प्रणालियों के आधार पर बने संसाधनों से ही सन्तुष्ट रहना पड़ेगा। ऐसे में ड्यूक विश्वविद्यालय के विद्वानों[26] द्वारा बताई गई समस्या तो वहीं–की–वहीं, वैसी–की–वैसी अनछुई ही रह जाएगी – कि सौ करोड़ से ज्यादा की आबादी में युवाओं का अच्छा–खासा प्रतिशत होने के बावजूद, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का खेल प्रदर्शन करने का माद्दा रखने वाले हमारे युवा संख्या में बहुत थोड़े हैं। इसलिए हमारी खेल–जरूरत न सिर्फ महत्वपूर्ण है, बल्कि तात्कालिक भी है। समय आ गया है कि हमारे सारे राष्ट्रीय खेल संघों (अब तक बासठ) को इस बात के आदेश दिए जाएँ कि वे एक सोची–समझी चरणबद्ध रणनीति के तहत अपने–अपने

खेलों को देश भर में लोकप्रिय बनाएँ और उन्हें आगे बढ़ाएँ।

मेरा आग्रह तो यही होगा कि शिक्षा में खेलों को लेकर हमारा नजरिया क्या है, उस पर हमें नए सिरे से नजर डालनी होगी। हमें खेलों को अपनी शिक्षा में इस तरह रचाना–बसाना होगा कि वे सीखने–सिखाने के अनुभव का एक अभिन्न अंग हों, न कि किसी 'पाठ्येत्तर' गतिविधि की तरह। खेलों के महत्व को राष्ट्रीय चेतना में लेकर आना और फिर युवाओं को श्रेष्ठतम अर्जित करने हेतु प्रेरित करना – यह हमारा राष्ट्रीय मिशन बन जाना चाहिए। इसके लिए भारत को एशियाई खेलों या कॉमनवेल्थ गेम्स या फिर ओलिम्पिक का मेजबान होने तक इन्तजार करने की कतई जरूरत नहीं है। इसकी बजाय हम अपनी पाठ्यचर्या की गतिविधियों में खेल से सम्बद्ध उदाहरण और विषय शामिल करके शुरुआत कर सकते हैं। यह सभी स्तरों पर पाठ्यक्रम का महत्वपूर्ण हिस्सा बन जाना चाहिए। इस वक्त तो हम इस मामले में एक कोरी स्लेट की तरह हैं – इसकी एक सरल पड़ताल तो यह देखकर ही की जा सकती है कि हमारी पाठ्यपुस्तकों में कितने प्रसिद्ध खिलाड़ियों का कितना और क्या जिक्र आता है!

एक राष्ट्र की हैसियत से, अगर हम अपनी क्षमताओं से न्याय करने वाली कोई खेल उपलब्धि पाना चाहते हैं तो हमें नीतिगत दखलंदाजियों के साथ–साथ ढेरों छोटी–छोटी चीजें भी करनी होंगी। व्यक्तिगत स्तर पर हमारे अध्यापक खेल के विषयों को अन्य विषयों की ही तरह खेलों को भी वही सम्मान और गरिमा देकर ऐन मुख्यधारा में ला सकते हैं। गणित के शिक्षक द्वारा उसेन बोल्ट के आँकड़ों की मदद से दशमलव का पाठ पढ़ाया जाना या समाजविज्ञान के अध्यापक द्वारा देश के उत्तर–पूर्व से हमारी एक अहम कड़ी के रूप में भारोत्तोलक कुंजूरानी देवी का उदाहरण देना या फिर भौतिकी के एक शिक्षक द्वारा गुरुत्व के बल से पोल वॉल्ट खिलाड़ी बुब्का का नाम जोड़ना कुछ उदाहरण हैं कि किस प्रकार प्राथमिक कक्षाओं में खेल–संस्कृति विकसित की जा सकती है। इस प्रकार के मिशनरी जज्बे के दम पर ही हम अपनी ऊँघ से निकल पाएँगे और चीन के फैक्टरीनुमा ढाँचे को लागू किए बिना यश की उस चोटी की ओर अग्रसर हो पाएँगे जिसे वह देश फतह कर चुका है।

यदि हम 'गूगल स्कॉलर' में 'स्पोर्टस् इन एजुकेशन' सर्च करें तो इसके पहले और पाँचवें पृष्ठ पर दिए गए आठ लिंक में से पाँच लिंक चीन से निकलने वाली पत्रिकाओं के मिलते हैं। खेलों के क्षेत्र में चीन ने जो कुछ किया है, उस पर राष्ट्रीय खेल नीति 2007[27] भी अच्छा–खासा वक्त बिताती है। हालाँकि यहाँ 'स्वर्ण पदक लक्ष्य' की खातिर चीन द्वारा अपनाए गए तरीकों पर बातचीत करना ठीक न होगा, लेकिन हकीकत तो यही है कि चीन आज एक खेल महाशक्ति है, और भारत एक फिसड्डी; हाँ कुछ लोग जरूर भारत को 'सुप्त महादेश' कहते हैं। लेख के अन्त में चीन से तुलना का मकसद हमारे फिसड्डीपन को रेखांकित करना भी है और उसी साँस में, खुद को अपने देश की क्षमताओं के बारे में याद दिलाना भी है। मैं जानता हूँ कि भारत एक सोया हुआ महादेश है; इसीलिए यह जरूरी है कि हम सही चीजें करें, अभी, ठीक अभी, ताकि युवा हिन्दुस्तानियों के अन्दर जीवट भरा इनसानी जज्बा और खेलों का रोमांच जगे और वे सक्षम बन भारत को एक 'खेल महाशक्ति' बनाने के उद्यम में लग जाएँ।

यह निर्विवाद है कि स्कूलों में ही एक जोरदार शुरुआत करने की जरूरत है। स्कूलों में नियोजित शारीरिक गतिविधि के फायदे सिर्फ सेहत तक ही सीमित नहीं रहते, बल्कि शैक्षिक उपलब्धियों में भी उनका सकारात्मक योगदान जुड़ता है – यह सच्चाई खेलों को शिक्षा से जोड़ने वाले रास्ते में आने वाली तमाम बाधाओं को दूर करने में सहायक होनी चाहिए।

सन्दर्भ:


1. T.N.Srinivasan , Samuel C.Park Jr. , Professor of Economics, Yale University. China and India: Growth and Poverty 1980-2000 http://siteresources.worldbank.org/INTPGI/Resources/12404_TNSrinivsan-Paper2+Tables.pdf
2. http://www.olympic.org/ (countries tab)
3. Wikipedia – countries at the Olympics ; http://en.wikipedia.org/wiki/China_at_the_Olympics
4. http://users.skynet.be/hermandw/olymp/reloly.html
5. Anirudh Krishna and Eric Haglund. Why Do Some Countries Win More Olympic Medals? E.P.W., July 2008.
6. http://www.policymic.com/articles/how-poor-is-too-poor-in-India
7. http://web.worldbank.org/WBSITE/EXTERNAL/COUNTRIES/SOUTHASIAEXT/0,,contentMDK:20916955~ pagePK:146736~piPK:146830~theSitePK:223547,00.html
8. http://www.preservearticles.com/106117788/short-biography-of-abhinav-bindra-the-olympic-gold-

medalist.html

9. http://www.bywaystar.com/2011/06/track-two-to-the-olympics/
10. http://ibnlive.in.com/news/cbi-arrests-suresh-kalmadi-in-cwg-scam-case/150134-3.html
11. http://www.fih.ch/en/news
12. इस लेख में शारीरिक शिक्षा शिक्षक की जो तस्वीर खींची गई है वह एक तो स्कूली दिनों में हुए लेखक के अपने अनुभवों और दूसरे, स्कूल से निकलने के कोई दो दशक बाद तक विभिन्न स्कूलों में लेखक द्वारा देखे गए नजारों पर आधारित है।
13. http://www.aicpe.ac.in/news.htm
14. http://www.ncte-india.org/pub/curr/curr.htm#61
15. Katz DL, Cushman D, Reynolds J, Njike V, Treu JA, Walker J, et al. Putting Physical Activity Where it Fits in the School Day : Preliminary Results of the ABC (Activity Bursts in the Classroom) for Fitness Programme. Prev Chronic Dis 2010 ; 7(4). http://www.cdc.gov/pcd/issues/2010jul/09/_0176.htm. Accesses 09-09-11

    Susan A. Carlson, Janet E. Fulton, Sarah M. Lee, Michele Maynard, David R. Brown, Harold W.Kohl,III William H. Dietz. Physical Education and Academic Achievement in Elementary School: Data from the Early Childhood Longitudinal Study. http://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC 2377002/Am J Public Health. 2008 April; 98(4): 721-727. doi: 10.2105/AJPH.2007.117176

    Joseph E. Donnelly, Jerry L. Greene, Cheryl A. Gibson, Bryan K. Smith, Richard A Washburn, Debra K. Sullivan, Katrina DuBose, Matthew S, Mayo, Kristin H Schmelzle, Joseph J. Ryan, Dennis J. Jacobsen, Shannon L. Williams. Physical Activity Across the Curriculum (P.A.A.C.): A Randomized Controlled Trial To Promote Physical Activity and Diminish Overweight and Obesity in Eelementary School Children.

    http://www.ncbi.nlm.nih.gov/pmc/articles/PMC2766439/ Prev.Med. Author manuscript; available in PMC 2010 October 1. Published in final edited form as : Prev.Med. 2009 October; 49(4): 336-341.

    Published online 2009 August 6.
16. एन.पी.ई. (राष्ट्रीय शिक्षा नीति), 1986
17. 'शिक्षा का अधिकार, सर्व शिक्षा अभियान' पर अनिल बोर्डिया समिति द्वारा प्रस्तुत अन्तिम रपट।

    http://ssa.nic.in/quality-of-education/rte-reporting-by-anil-bordia-committee
18. http://www.yas.nic.in/index2.asp?linkid=47&slid=70&sublinkid=32&langid=1
19. http://www.yas.nic.in/index2.asp?linkid=67&slid=86&sublinkid=188&langid=1
20. http://www.yas.nic.in/index3.asp?sslid=91&subsublinkid=66&langid=1
21. http://www.yas.nic.in/writereaddata/mainlinkfile/File371.pdf
22. http://www.yas.nic.in/writereaddata/mainlinkFile/File918.pdf
23. खेल एवं युवा मामले मन्त्रालय की वेबसाइट http://yas.nic.in/writereaddata/linkimages/8940703031.htm पर 62 राष्ट्रीय खेल संघ दर्ज हैं।
24. http://pykka.gov.in/
25. http://www.sportseed.in/
26. Anirudh Krishna and Eric Haglund. Why Do Some Countries Win More Olympic Medals? E.P.W., July 2008.
27. Pages 13-15; http://www.yas.nic.in/writereaddata/mainlinkfile/File371.pdf

***ऋषिकेश*** *अज़ीम प्रेमजी इंस्टिट्यूट फॉर असेसमेण्ट एण्ड अक्रेडिटेशन की डाइट क्वालिटी इकाई के प्रमुख हैं। खेलों के पैरोकार ऋषिकेश, जे.एन.यू. के स्नातकोत्तर हैं। शैक्षिक शोधकर्ता बनने से पहले वे स्कूलों में इतिहास की कार्यशालाएँ आयोजित किया करते थे। फाउण्डेशन की तमाम अकादमिक और शैक्षिक गतिविधियों के जरिए वे इस विषय में अपनी दिलचस्पी निरन्तर बनाए रखते हैं। सम्पर्क करने के लिए उनका ई–मेल है rishikesh@azimpremjifoundation.org*

# 05 खेल

हर्ष भोगले

पूरी दुनिया में – और भारत में भी – दो प्रकार के खेल प्रेमी हैं; एक, जो खेलते हैं और दूसरे, जो खेल देखते हैं। पूरी दुनिया में शहरी समुदायों की प्रकृति को देखते हुए स्वाभाविक है कि खेलने वालों की संख्या के मुकाबले खेल देखने वालों की संख्या बहुत ज्यादा होती है। लेकिन मुझे डर है कि दुनिया के दूसरे हिस्सों के मुकाबले हमारे यहाँ यह बात और भी अधिक सच्ची है, और खिलाड़ियों के अनुपात में खेल देखने वालों की संख्या काफी अधिक है। ऐसा दो कारणों से है – एक, शहरी भारत में जबरदस्त भीड़ की स्थिति तथा इससे उपजी खुली जगह की कमी; दूसरा, वह असाधारण महत्व जो स्कूली शिक्षा के अन्त में मिलने वाले अंकों को दिया जाता है। इन हालात के निहितार्थ स्टाइल से जुड़े उद्योग के लिए भी हैं क्योंकि खिलाड़ियों जैसा दिखने की चाहत वाले लोगों की संख्या खेलने की चाहत वाले लोगों की संख्या के मुकाबले बहुत अधिक होगी।

शहरी खिलाड़ियों की अपेक्षाकृत कम संख्या को देखकर निराशा होती है क्योंकि टीम–वर्क के महत्व को, या दूसरे शब्दों में कहें तो इसके अभाव को, समझने के लिए कोई टीम वाला खेल खेलने से बेहतर कोई तरीका नहीं है। कभी–कभार बदलाव की छोटी–सी किरण तब दिखाई देती है जब दिल से जवान लोग माता–पिता बनते हैं लेकिन बहुत ही जल्दी वे भी कक्षाओं और अंकों के उस चक्र में फँस जाते हैं जो आज भी भारत में सफलता का एकमात्र निर्धारक है। इसीलिए खेल दूर से देखने वाला तमाशा बने रहते हैं न कि आनन्द लेने वाली गतिविधि।

शहरी भारत में खेल की दो प्रमुख सीमाएँ हैं – समय की कमी और खेलने के लिए जगह की कमी। कोई भी खेल खेलना हो तो आपको हारना, सीखना और सफल होना होता है; उपेक्षा का सामना करना और संघर्ष करना पड़ता है, अवसरों का लाभ उठाना होता है। आपको समय चाहिए होता है। भारतीय शहरों में ट्रैफिक जाम की स्थिति और यातायात के बदहाल बुनियादी ढाँचों के चलते खेलों में भाग

*शहरी भारत में खेल की दो प्रमुख सीमाएँ हैं – समय की कमी और खेलने के लिए जगह की कमी। कोई भी खेल खेलना हो तो आपको हारना, सीखना और सफल होना होता है; उपेक्षा का सामना करना और संघर्ष करना पड़ता है, अवसरों का लाभ उठाना होता है।*

लेना हो तो बहुत समय लगाना पड़ता है, बल्कि यह लोगों के लिए खेलों से दूर रहने का एक बड़ा कारण और बहाना बन जाता है। फिर जगह तो कम है ही। मुम्बई में तो हम मजाक करते हैं कि फुटबॉल के मैदान के बराबर जगह तो दूर, बस 22 गज जमीन भी उपलब्ध हो तो कोई राजनेता या बिल्डर इस पर भी बहुमंजिला इमारत बना देगा। इससे लगता है कि छोटे शहरों में, जहाँ समय और जगह के साथ इतनी बेदर्दी नहीं की जाती, खेलों के फलने–फूलने की अधिक गुंजाइश होगी। अचरज नहीं होता कि भारतीय खिलाड़ियों की अगली पीढ़ी यहीं से आ रही है। अगर नई पीढ़ी के नेता भी वहीं से उभरें तो भी मुझे आश्चर्य नहीं होगा।

शहरी खेल दो पारम्परिक दुश्मनों के आक्रमण से जूझ रहे हैं – एक ओर तो 10वीं कक्षा का हौआ और कोचिंग क्लास, और दूसरी ओर सामाजिक मीडिया। मेरा मानना है कि हमारा समाज, जिसका प्रतिनिधित्व माता–पिता और स्कूली शिक्षक करते हैं, बारह या तेरह वर्ष की आयु तक के बच्चों के खेलने से खुश रहता है। बल्कि इस उम्र तक तो वे "कोचिंग" और खेल के सामान पर बहुत ज्यादा खर्च भी कर लेंगे। लेकिन जैसे ही बोर्ड परीक्षा का साल शुरू होता है, उनका नजरिया बदल जाता है। तब बच्चों के लिए दिन में स्कूल और शाम में कोचिंग जाना अनिवार्य सा हो जाता है। कभी–कभी मैं सोचता हूँ कि स्कूलों में अगर पढ़ाई ठीक से करवाई जाए तो बच्चों के लिए शाम का वक्त खाली रह

सकता है, जबकि अभी यह वक्त वह पढ़ने–सीखने में बीतता है, जो वे स्कूल में नहीं सीख–समझ पाए। मगर सच तो यही है कि ज्यादा अंक पाने की दौड़ में इन दो अनिवार्य गतिविधियों के बीच खेलकूद के लिए समय का अभाव ही रहता है। कुछ स्कूल तो जैसे गर्व से घोषणा करते हैं कि आने वाले वर्ष में बच्चों के पास किसी और चीज के लिए समय नहीं होगा–स्कूल न हुए, शिक्षा के जेलखाने हो गए! शायद इसीलिए शहरी भारत में सपने जल्दी ही मर जाते हैं। जो खेलकूद में आगे बढ़ना चाहते हैं उन्हें 'कम अंकों' वाली जिन्दगी जीने का दण्ड मिलता है (और जिस व्यवस्था में अंक दीवाली के उपहारों की तरह दिए जाते हों, वहाँ तो 'कम' को तुलनात्मक दृष्टि से ही देखना होगा)। अगर परीक्षाएँ 'पढ़ो और उगल दो' (या सामाजिक रूप से अधिक स्वीकार्य भाषा में कहें, तो 'पढ़ो और पुनः प्रस्तुत करो') वाली पद्धति पर न होतीं तो स्थितियाँ शायद अलग हो सकती थीं।

इसके साथ ही दूसरा पहलू सामाजिक मीडिया में आई क्रान्ति का है। आपका दोस्त अब केवल एक क्लिक की दूरी पर है और यह क्लिक चौबीसों घण्टे उपलब्ध है। शारीरिक गतिविधि का अर्थ अब शायद अपने शरीर के वजन को एक कोहनी से दूसरी कोहनी पर डालने तक ही सीमित हो गया है क्योंकि युवा और युवतियाँ अपने लैपटॉप के सामने पसरे रहते हैं। तेंदुलकर और मेस्सी को देखना और उनके बारे में चर्चा करना यकीनन उनकी तरह पसीना बहाने से कहीं आसान है। हाँ, बढ़ते हुए सामाजिक सम्पर्क और अच्छा दिखने की बढ़ती जरूरत के चलते एक गतिविधि जरूर लोकप्रिय हो रही है – युवा लड़के और लड़कियाँ अब जिम में अधिक दिखाई देने लगे हैं! उम्मीद है कि इसका एकमात्र कारण दिखावा, एक तरह का घमण्ड, और उसके नतीजे में एक खास अन्दाज में दिखने की जरूरत ही नहीं होगा!

अगर जवान लड़के–लड़कियाँ अपनी जिन्दगी को अलग–अलग खानों में बाँटना सीख लें; जो भी करें उसे 100 प्रतिशत प्रतिबद्धता से करें; और एक गतिविधि को दूसरी के आड़े न आने दें, तो कुछ अलग हो पाना सम्भव है। जो वास्तव में व्यवस्थित हैं वे खेलते समय पढ़ाई के बारे में नहीं सोचेंगे और जब पढ़ रहे होंगे तो उन्हें खेलकूद का ख्याल तक नहीं आएगा। जब समय की माँग बहुत हो, तो इसका दुरुपयोग किसी अपराध से कम नहीं होता।

खेलकूद को प्रोत्साहित करने में एक स्कूल अच्छी भूमिका निभा सकता है और वाकई कुछ स्कूल ऐसा करते भी हैं। अक्सर किशोर–मन के रथ का सारथी शिक्षक होता है और इस संसाधन का बेहतर उपयोग स्कूलों में होना जरूरी है। अगर शिक्षक युवा मस्तिष्क के विकास में खेलों की शक्ति को समझता है तो वह अपने बच्चों को खेलने के लिए प्रेरित कर सकता है। खेलकूद एक बहुत ही शानदार ढंग से आविष्कारी हो सकते हैं और अच्छे शिक्षक जो जगह मौजूद है, उसका उपयोग करना सीख सकते हैं या नई जगह निकाल सकते हैं। उदाहरण के लिए टेबल टेनिस के लिए अधिक जगह की जरूरत नहीं है और वॉलीबॉल भी महँगे उपकरणों की माँग नहीं करता। यह एक कमाल का, उत्साहित करने वाला खेल है। बास्केटबॉल टीमवर्क की माँग करने वाला उच्च स्तर का कसरती खेल है। लेकिन छात्रों को प्रोत्साहित करना बहुत जरूरी है; शायद स्टार एथलीट और गणित का जादूगर एक टीम बना सकते हैं; स्टार एथलीट दूसरे को दौड़ना और कूदना सिखा सकता है तो दूसरा त्रिकोणमिति के गुर समझने में उसकी मदद कर सकता है!

जीवन के शुरुआती दौर में टीम के प्रति प्रेम विकसित किया जाना महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे यह भी निर्धारित होता है कि आप अन्य सब काम कैसे करेंगे। किसी दिन आप पास होते हैं और किसी दिन अच्छा स्कोर करते हैं, और दोनों ही बार आप हीरो होते हैं; या दूसरे दिन आप केवल 5 रन बनाते हैं लेकिन बेहतर बल्लेबाज को 50 रन बनाने में मदद करते हैं। एक–दूसरे के लिए कुछ करना, टीम के लिए खेलना, ऐसी बातें हैं जिनके लिए पूरा भारत चिन्तित है, लेकिन हमारे स्कूल और अंकों की दौड़ तथा "ट्यूशन" की व्यवस्था स्वार्थ की भावना को बढ़ावा देते हैं। आप ट्यूशन–टीचर को रखते हैं लेकिन किसी को नहीं बताते; आपको कोई नई, मजेदार पाठ्यपुस्तक मिलती है लेकिन किसी को नहीं बताते; हम हर चीज को दर्जा देते हैं और इसलिए व्यक्तिगत तौर पर अव्वल रहने के पीछे भागते हैं।

समुदाय ही है जो पहले खेलकूद का बीज बोता है – यह बात पूरी दुनिया में देखी गई है। सार्वजनिक कोर्ट, टेबल और मैदान शुरुआती बिन्दु हैं। राज्य से यह अपेक्षा रखना तो शायद ज्यादती ही होगी कि वह इस सन्दर्भ में कुछ करे, खासतौर से तब जब खेल मन्त्रालय को अक्सर दण्ड वाली पोस्टिंग माना जाता हो। लेकिन मुझे भरोसा है कि कारपोरेट घरानों को योगदान देने के लिए टटोला जा सकता है। जमीनी स्तर पर कारपोरेट घरानों द्वारा सक्रिय तौर पर इस प्रक्रिया में शामिल होने के कुछ उदाहरण अब देखने को मिल रहे हैं, और आशा है कि और अधिक लोग आई.एम.जी.–रिलायंस मॉडल

का अनुसरण करेंगे, जिसमें मार्केटिंग और किसी खेल के बीजारोपण की जिम्मेदारी किसी सरकारी विभाग की जगह एक कारपोरेट घराने द्वारा निभाई जाती है। इससे शायद शासन का एक अलग, अधिक समावेशी रूप सामने आए।

लेकिन जब तक शहरी समाज अपने नागरिकों को समय और जगह से वंचित रखेंगे, जब तक अंकों को योग्यता का एकमात्र निर्धारक मानने का पागलपन जारी रहेगा, तब तक खेल आनन्ददायक गतिविधि के बजाय दूर से देखने लायक तमाशा बने रहेंगे। खेलना एक असीमित दुनिया के द्वार खोलता है और इसके सम्पर्क में आने के लिए स्कूल का समय सबसे बढ़िया समय है।

***हर्ष भोगले*** *'भारतीय क्रिकेट की आवाज' के रूप में जाने जाते हैं। वे आई.आई.एम.,अहमदाबाद के छात्र रहे हैं और हैदराबाद से इंजिनियरिंग के स्नातक हैं। वे भारत के अग्रणी क्रिकेट कमेन्टेटर और स्तम्भकार हैं। लोग उनकी पैनी दृष्टि वाली टिप्पणियाँ खूब पसन्द करते हैं। समाचारपत्रों और पत्रिकाओं में लिखने के अलावा उन्होंने कुछ किताबें भी लिखी हैं। अब वे कॉरपोरेट व्याख्यान भी देते हैं जिनमें वह कारोबारी नीतियों के विकास के लिए खेल से पाए अनुभव का उपयोग करते हैं।*

# 06 खेल बनाम शिक्षा : दूरी समाप्त करने का समय

नन्दन कामथ

लम्बे समय से पेशेवर खेल और औपचारिक शिक्षा व्यवस्था एक–दूसरे से विमुख रहे हैं। आज के निरन्तर व्यस्त और प्रतियोगी वातावरण में समय आ गया है कि ये दोनों संसार एक–दूसरे के निकट आएँ, एक–दूसरे के पूरक बनें तथा आपसी शंका के माहौल को छोड़कर आगे बढ़ें।

सीमित उपलब्ध अवसरों के हमारे देश में खेलकूद और शिक्षा को ऐतिहासिक रूप से ऐसे दो बिल्कुल भिन्न और समानान्तर संसारों के रूप में देखा जाता रहा है जिनके पास एक दूसरे को देने के लिए अधिक कुछ न हो। यह मानसिकता हमारे सांस्कृतिक दृष्टिकोणों और व्यवस्था की औपचारिक संरचना का भी हिस्सा बन चुकी है। असल में तो इनमें से प्रत्येक की माँगों और जरूरतों को इस रूप में देखा जाता रहा है जैसे वे दूसरे क्षेत्र में एक व्यक्ति द्वारा अपनी सम्भावनाओं को पूरी तरह हासिल करने की क्षमता पर एक अनचाहा भार हों। वर्तमान समय में, जब सम्पूर्ण व्यक्तिगत विकास, वृहत्तर जागरूकता और शोध के लिए अधिक संसाधन उपलब्ध हैं, यह निरन्तर स्पष्ट होता जा रहा है कि यदि हमें ऐसा जनसमुदाय चाहिए जो शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक प्रवृत्तियों का सामाजिक और व्यक्तिगत, दोनों स्तरों पर समानान्तर विकसित कर पाए, तो इन दोनों पूरक क्षेत्रों को आपस में टकराना होगा। शिक्षा और व्यक्तिगत विकास का एक व्यापक दृष्टिकोण हमारे देश के पेशेवर एथलीटों को इस रूप में मदद देगा कि वे उच्चतम स्तर पर प्रतियोगी भावना के साथ बेहतर प्रदर्शन करते हुए जीत हासिल करने के लिए अनेक कौशल विकसित कर पाएँगे।

## 'खेलकूद या शिक्षा' से 'खेलकूद और शिक्षा' तक

एक औसत भारतीय बच्चे को बहुत छोटी आयु में ही कुछ सांस्कृतिक सन्देश बहुत ही स्पष्ट तौर पर दे दिए जाते हैं – जैसे यह, कि यदि उसे प्रतियोगिता में टिके रहना है तो उसे 'यह' या 'वह' के लहजे में एक विकल्प का चयन करना होगा। एक सन्देश यह भी है कि अकादमिक गतिविधियों को "गम्भीरता" से लिया जाना आवश्यक है।

जिन बच्चों का सम्बन्ध औपचारिक खेलकूद विकास कार्यक्रमों से नहीं है, उनके लिए खेलकूद का मतलब केवल खेलना और मौजमस्ती करना है। खेलकूद उनके लिए बस व्यक्तिगत बौद्धिक और पेशेवर उन्नति से थोड़ा विराम लेकर मनोरंजन करना है। परम्परागत रूप से कम ही नियम हैं जो भारत में प्राथमिक और हाईस्कूल पाठयचर्या में शारीरिक शिक्षा को एक अनिवार्य और आवश्यक तत्व बनाते हों। इसके चलते शैक्षणिक संस्थान – और अभिभावक भी – ऐसी स्थिति में आ पहुँचते हैं जहाँ स्वेच्छा पर आधारित 'खेल' को प्रतियोगिता की दृष्टि से प्रतिकूल अवस्था माना जाता है।

स्कूल में – और स्कूल के बाद भी – बच्चों से कई तरह की अकादमिक अपेक्षा रखी जाती हैं। और इसके बाद बच्चों के पास खेल सम्बन्धी अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए कम ही समय और ऊर्जा बचते हैं, फिर वह चाहे शौक या मनोरंजन के रूप में ही क्यों न हो।

औपचारिक प्रशिक्षण कार्यक्रमों में छोटे बच्चों को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। शिक्षाशास्त्रियों, प्रशासकों – और कुछ अभिभावकों में भी – शारीरिक और मानसिक दृष्टि से खेलकूद की आवश्यकता के बारे में जागरूकता का प्रायः अभाव पाया जाता है। यही अभाव खेल के मैदान से मिलने वाले महत्वपूर्ण सबकों के सन्दर्भ में भी पाया जाता है। इसी का नतीजा है कि अकादमिक शर्तों, ढाँचों और संस्थानों में लचीलेपन का अभाव रहता है, और प्रतिभावान खिलाड़ियों के लिए ये सब बातें स्थिरता प्रदान करने की बजाय बाधा के रूप में कार्य करने लगती हैं। उपस्थिति की अनिवार्यता, काम के भारी दबाव और कठोर परीक्षा कार्यक्रम के चलते लचीलेपन की गुंजाइश बहुत कम रहती है और अलगाव की भावना पनपने लगती है। 'सबके लिए खेल' का उद्देश्य है कि अधिक से अधिक भारतीय सभी स्तरों पर खेलों से जुड़ें, उनमें टिके रहें और सफल भी हों – उपरोक्त हालात इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए लगातार एक चुनौती की तरह बने रहते हैं।

## औपचारिक शिक्षा का परिप्रेक्ष्य

भारतीय शिक्षा प्रणाली का ध्यान मुख्यतः साक्षरता और अंकज्ञान पर केन्द्रित रहा है। ऐतिहासिक तौर पर अधिक जनसंख्या, बेरोजगारी, निर्धनता और सीमित अवसर वाले किसी राष्ट्र के लिए ये तर्कसंगत प्राथमिकताएँ हैं। खेलों को प्रायः हाशिए पर रखा जाता है और उनका मूल्य कुछ

अधिक नहीं समझा जाता। उन्हें पाठयक्रम से इतर एक गैर–शैक्षणिक, समय के अनुत्पादक उपयोग वाली गतिविधि के रूप में लिया जाता है। उनका महत्व बस मनोरंजन के तौर पर ही रहता है; अनिवार्य "आधारभूत" विषय के रूप में उन्हें लागू नहीं किया जाता। प्राथमिकता न मिलने के चलते और सापेक्ष जरूरत के अभाव के कारण ज्यादातर स्कूलों में मौलिक खेलकूद सुविधाओं और योग्य प्रशिक्षण प्रतिभाओं की कमी है। स्वाभाविक है कि इस सबके चलते एक औसत भारतीय बच्चे के लिए खेलों में एक बहुत ही कमजोर बुनियाद पड़ती है। बच्चे के प्रतिनिधि – अभिभावक – भी प्रायः यही मोलभाव करते हुए पाए जाते हैं। परन्तु अब समय बदल रहा है।

नवीनतम अनुसंधान ने इस "अथवा–या" की विचार प्रक्रिया को सिर के बल खड़ा कर दिया है अनेक महत्वपूर्ण बाल–विकास अध्ययन मानते हैं कि शारीरिक शिक्षा और खेल गतिविधियों में नामांकित विद्यार्थी न केवल तंत्रिका–प्रेरक/गत्यात्मक कौशलों में सुधार कर पाते हैं बल्कि अपने अध्ययन समय का अधिक प्रभावी ढंग से उपयोग भी करते हैं। वे अधिक बेहतर तरीके से ध्यान केन्द्रित कर पाते हैं और शारीरिक रूप से सक्रिय न रहने वाले विद्यार्थियों से बेहतर प्रदर्शन न कर पाएँ तो भी उनकी अकादमिक उपलब्धियों के बराबर तो पहुँच ही पाते हैं।

समग्र व्यक्तिगत विकास की इस अवधारणा को एन.सी.ई.आर.टी. की राष्ट्रीय पाठयचर्या रूपरेखा 2005 में मान्यता दी गई है। यह अनिवार्य पाठ्यचर्या डिजाइन की आवश्यकता की बात करता है जो "स्वास्थ्य की समग्र परिभाषा को इख्यितार करे जिसके तहत शारीरिक शिक्षा और योग का बच्चे के शारीरिक, सामाजिक, भावनात्मक, और मानसिक विकास में योगदान रहे।'' इसमें आगे कहा गया है कि "पाठ्यचर्या को प्रभावी ढ़ंग से लागू करने के उद्देश्य से यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि प्रत्येक स्कूल में खेलकूद के लिए न्यूनतम अनिवार्य स्थान और उपकरण उपलब्ध रहें और डॉक्टर तथा चिकित्साकर्मी नियमित रूप से स्कूल में जाँच करने जाएँ। इस क्षेत्र में शिक्षकों की तैयारी के लिए बेहतर नियोजन और सघन प्रयासों की आवश्यकता है।"

भारत की शैक्षणिक व्यवस्था जैसे–जैसे बदलाव को लागू करने की ओर बढ़ती है, ध्यान इस बात पर होना चाहिए कि खेल सबके लिए हों। स्कूल में बेहतर खेल सुविधाएँ, शिक्षक–प्रशिक्षण, अभिभावक–परामर्श, प्रारम्भिक सहज योग्यताओं और रूझानों का परीक्षण और कौशल–वृद्धि मुख्य विशेषताएँ होंगी। इसके साथ ही रूढ़िवादी और कठोर अकादमिक ढाँचों का स्थान उन ढाँचों को लेना होगा जो बच्चों के सीखने और व्यक्तिगत विकास में खेलों के योगदान के प्रति अधिक सतर्क और जागरूक हों। इन कदमों से प्राथमिक स्तर से लेकर उच्चतर/पेशेवर शैक्षणिक संस्थानों तक खेलों के लिए माँग–आधारित दबाव भी बन पाएगा।

## पेशेवर–खेल परिप्रेक्ष्य

हम भारतीय अभी हाल के वर्षों में ही अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न खेलों में प्रतियोगिता की स्थिति में आने और सफल होने में सक्षम हुए हैं। इससे पहले हमारी उपलब्धि के न्यून स्तर के लिए अनेक कारणों को जिम्मेदार ठहराया जाता रहा है – 'खेल संस्कृति' और 'शारीरिक विशेषताओं' का अभाव इस सूची में शीर्ष पर हैं। हमारी खेल और शिक्षा व्यवस्था द्वारा श्रेष्ठ खेल प्रतिभाओं की पहचान न कर पाने और जो प्रतिभाएँ पहले ही शीर्ष पर चमक रहीं है, उन्हें पोषित न कर पाने का भी इसमें महत्वपूर्ण योगदान है।

खेल को करियर के तौर पर अपनाने के साथ बड़े जोखिम जुड़े हैं। इसके लिए औपचारिक शिक्षा व्यवस्था को त्यागना पड़ सकता है। सहायता और पुरस्कार भी सीमित ही होते हैं। इसलिए खिलाड़ी अपने समक्ष उपस्थित जोखिमों के अनुरूप सम्भावनाएँ नहीं देख पाते हैं। खेल में प्रतिभा–सम्पन्न जिन व्यक्तियों के पास अन्य विकल्प उपलब्ध होते हैं, वे उनकी ओर चले जाते हैं; जो साहस बटोरकर खेलों में अपने सपने को पूरा करने में लगे रहते हैं, उनके पास बस सार्वजनिक क्षेत्र में नौकरी से प्राप्त आय और सरकारी पुरस्कारों की अनिश्चितता के अतिरिक्त बहुत कुछ नहीं रहता। इसलिए हैरत नहीं कि खेल के मैदान पर हमारी श्रेष्ठ खेल–प्रतिभाएँ नहीं उतर रही होतीं और हमारे बेहतरीन खिलाड़ी ऐसे वातावरण में प्रशिक्षण लेते और संघर्ष करते हैं जो उन्हें क्रियात्मक रूप से शक्तिहीन और पेशेवर रूप से असुरक्षित रखता है।

खिलाड़ियों में शिक्षा के अभाव के अन्य नकारात्मक प्रभाव भी हैं–खेलों के प्रशासनिक अधिकारियों के मुकाबले उनके पास बातचीत और सौदेबाजी करने की बहुत कम क्षमता होती है, डोपिंग और पैसे के लेनदेन आदि जैसे हेराफेरी के तौर–तरीकों से बचे रहने की भी कम क्षमताएँ होती हैं, और रिटायरमेन्ट के बाद करियर की सम्भावनाएँ भी बहुत सीमित होती हैं।

अभी हाल में 'गो स्पोर्टस् फाउण्डेशन' ने एक शोध–अध्ययन

के तहत अनेक ऐसे भूतपूर्व खिलाड़ियों पर एक सर्वेक्षण किया जिन्होंने अपनी प्रतिभा के चरम पर पहुँचने से पहले ही खेलों के करियर को छोड़ दिया। इस अध्ययन का निष्कर्ष है कि खिलाड़ियों ने प्रतियोगी खेलों को समय–पूर्व त्यागने के सबसे प्रमुख कारणों में 'करियर का अव्यावहारिक होना' और 'शैक्षणिक तथा अभिभावकों का दबाव' को जिम्मेवार ठहराया है। अधिकतर खिलाड़ियों ने 18 से 22 वर्ष की आयु में खेल को करियर के तौर पर छोड़ा जब खेलकूद या अध्ययन में से एक का चयन एक कड़वी सच्चाई के रूप में सामने आया ।

भारत में खेल–उद्योग में पेशेवर प्रशासन की भूमिका बढ़ने और हमारे देश की आर्थिक और सामाजिक प्रगति के चलते इन स्थितियों में बहुत तेजी से बदलाव हो सकता है। आज क्रिकेट पूरे देश में सैकड़ों खिलाड़ियों को न केवल व्यावहारिक बल्कि आकर्षक करियर उपलब्ध करवाता है। अभिभावकों को आज इस बात के लिए सहमत करना सम्भव है कि उनके बच्चे क्रिकेट को भी उसी प्रकार एक करियर के रूप में चुन सकते हैं जैसे एक डॉक्टर या वकील का पेशा। सम्भावना और वास्तविकता के बीच विशाल अन्तर के बावजूद अन्य खेलों में भी बदलाव अवश्यम्भावी है। शैक्षणिक संस्थान और औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा पद्धतियाँ खेल प्रतिभाओं की पहचान और उनकी सहायता करने में, तथा जीवन–कौशल विकसित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर सकते हैं।

## संगम की रूपरेखा

खेलकूद या शिक्षा लम्बे समय तक एक–दूसरे से विमुख नहीं रह सकते। यह स्थिति दोनों को कमजोर बना रही है। इस संगम की ओर बढ़ना चाहे तत्काल सम्भव न हो लेकिन वह निम्नलिखित दिशा में आकार ले सकता है–

- विश्वस्तरीय शैक्षिक मानदण्ड और प्रतिस्पर्धा की भावना शहरी क्षेत्र में स्थित स्कूलों और कालेजों को इस ओर धकेलेंगे कि वे खेल सुविधाओं, ढाँचागत व्यवस्थाओं और कार्यक्रमों को ऐसी विशेषताओं के रूप में उपयोग करने के लिए बाध्य हों जिससे वे प्रतिस्पर्द्धा में अलग खड़े दिखाई दें। ग्रामीण क्षेत्रों के स्कूल भी धीरे–धीरे इस ओर बढ़ेंगे, फिर चाहे उनकी सुविधाएँ बहुत अल्पविकसित ही क्यों न हों।
- स्वास्थ्य सम्बन्धी राष्ट्रीय सरोकार (जिनमें बच्चों में बढ़ते मोटापे की समस्या भी शामिल है), प्राथमिक और माध्यमिक स्कूल पाठ्यचर्या में अनिवार्य शारीरिक शिक्षा को शामिल करने के लिए बाध्य करेंगे।

  विश्वविद्यालय स्तर के खेलकूद और एथलेटिक्स कार्यक्रम रूप–आकार लेंगे जिनके तहत प्रतिभावान खिलाड़ी खेलों में अपने विकास को जारी रखते हुए पेशेवर शिक्षा के लचीले लेकिन अर्थपूर्ण मौके हासिल कर पाएँगे।
- बेहतर शिक्षा प्राप्त खिलाड़ी कहीं अधिक सुरक्षित,

आत्मविश्वासयुक्त और अपनी सम्भावनाओं को पूरा करने में सक्षम होंगे। उनमें से बहुतों के पास करियर पश्चात अवसर उपलब्ध होंगे और वे नई प्रतिभाओं में शिक्षा की भूमिका के प्रति प्रोत्साहन और प्रेरणा तथा सम्मान उत्पन्न करेंगे।

अर्थव्यवस्था और बाजार की कार्यप्रणाली तो इस अन्तर को आंशिक रूप से कम करेंगे, राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर विचारशील नीति निर्माण, शिक्षा और खेलों के प्रति संवेदनशीलता उत्पन्न करने के कार्यक्रम और बड़े पैमाने पर निवेश भी इसके लिए महत्वपूर्ण तत्व होंगे। साथ ही इस सबकी सफलता में आस्था का होना भी आवश्यक है। शिक्षा और खेल के बीच के इस अन्तर का कम होना अवश्यम्भावी है, लेकिन यह कितना जल्दी, कितने बेहतर तरीके से और कितनी लागत पर होगा, यह इस नई पीढ़ी पर निर्भर है।

***नन्दन कामथ*** *खेलों के क्षेत्र के एक वकील और 'गो स्पोर्टस् फाउण्डेशन' में ट्रस्टी हैं। 'गो स्पोर्टस फाउण्डेशन' एक गैर–लाभकारी संगठन है जो महत्वपूर्ण वित्तीय और गैर–वित्तीय सहायता के माध्यम से भारतीय खेल प्रतिभागियों के सशक्तीकरण के लिए काम करता है। 'गो स्पोर्टस् फाउण्डेशन' के बारे में अधिक जानकारी के लिए www.gosportsfoundation.in पर जाएँ।*

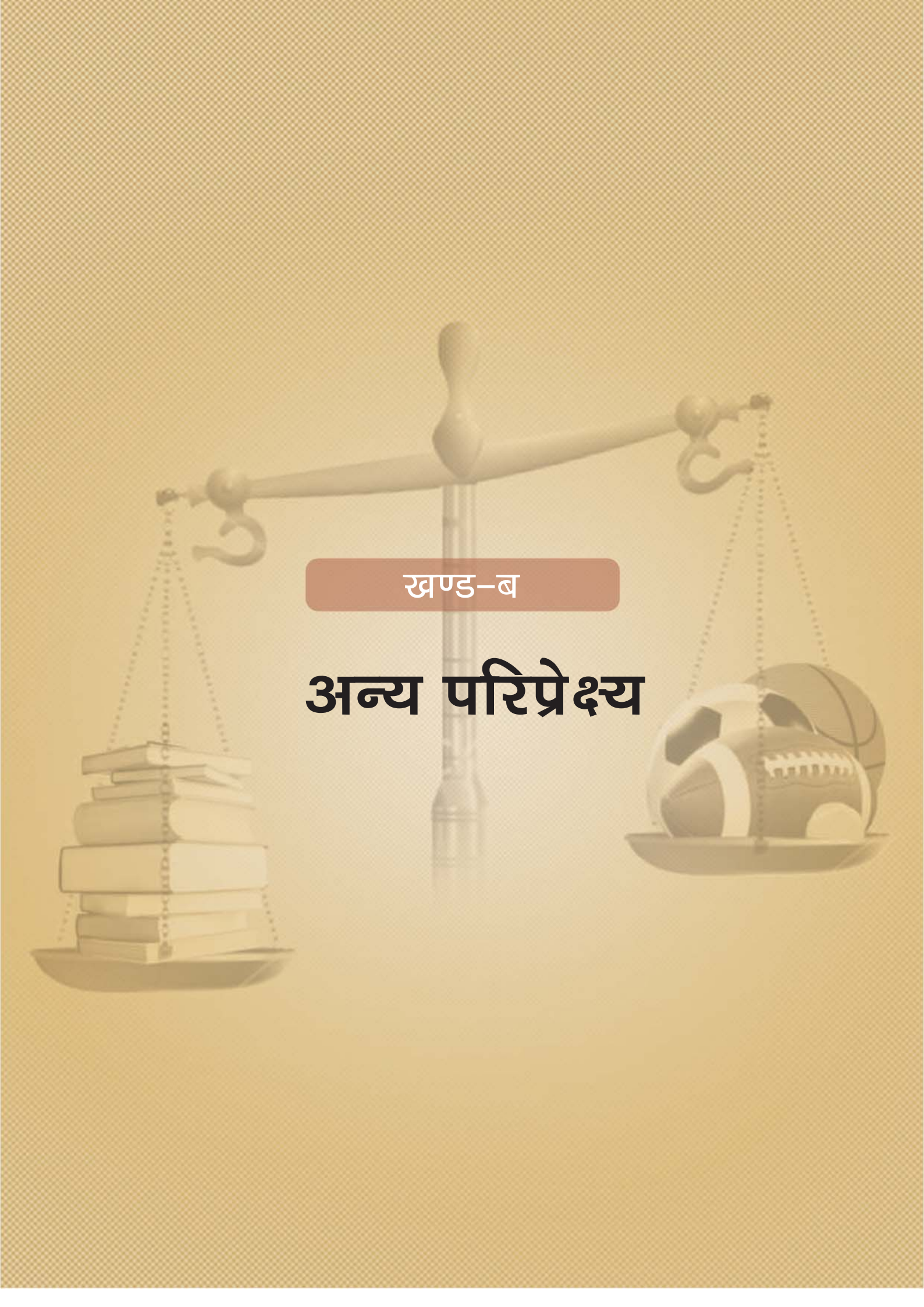

खण्ड–ब

# अन्य परिप्रेक्ष्य

# 07 शिक्षा में खेल : स्वस्थ शरीर में स्वस्थ दिमाग

अश्विनि नाचप्पा

**मैं** स्कूली खेलों की उपज हूँ। बहुत अरसा पहले, 80 के दशक में, स्कूल में खेलों को बहुत महत्व दिया जाता था, उन्हें मान्यता प्राप्त थी। खेल हमारी शिक्षा का अभिन्न हिस्सा और स्कूलों के लिए अपनी टीम के प्रदर्शन को सबकी नजरों में लाने का शानदार माध्यम थे। खेल के मैदान में प्रदर्शन करने वाली टीम ही नहीं बल्कि विद्यार्थी, शिक्षक और प्रिंसिपल भी खुशियों में शामिल होकर खेल के प्रति अपनी रुचि जाहिर करते थे। दुर्भाग्य से, पिछले कई सालों से देखने में आ रहा है कि बौद्धिकता बच्चों के विकास के सब पहलुओं पर हावी हो गई है और बच्चों के अत्यधिक तनाव और प्रतिस्पर्द्धा भरे जीवन में खेल शिक्षा से बिल्कुल जुदा हो गए लगते हैं।

आज की शिक्षा पद्धति केवल श्रेणी या अंकों पर ही ध्यान देती है। अकादमिक विषयों से इतर बच्चे में प्रतिभा को खोजने और संवारने पर ध्यान नहीं दिया जाता। परिणामस्वरूप, हमारी आधुनिक शिक्षा प्रणाली में 'औसत' बच्चे के लिए कोई स्थान नहीं है। जरूरत है कि हमारी शिक्षा प्रणाली में खेलों को 'खेलकूद और क्रीड़ा' के रूप में शामिल किया जाए। इससे बच्चे स्वयं के लिए विकल्प चुन पाएँगे और खेलों में भागीदारी करने से बच्चा निष्पक्ष खेल, अधिकारियों के प्रति आदर रखना, विरोधियों को सम्मान देना, साहस, ईमानदारी, दृढ़ता, टीम निर्माण, समता की भावना और पुरस्कारों की अहमियत जानना आदि मूल्यों से परिचित होता है जो सब एक जिम्मेदार जीवन जीने की ओर ले जाने वाले मूल्य हैं।

शैक्षणिक पाठ्यचर्या में खेलों को शामिल करने का अर्थ है यह सुनिश्चित करना कि बच्चे के शरीर और मस्तिष्क का विकास हो और उसे साहस, विश्वसनीयता, ईमानदारी, दृढ़ता, और स्व–अनुशासन की शिक्षा मिले। जैसा बहुत बार कहा भी जाता है, "स्वस्थ तन में ही स्वस्थ मन का वास होता है।" किण्डरगार्टन स्तर पर तंत्रिका–प्रेरक/गत्यात्मक कौशल विकसित करना उतना ही महत्वपूर्ण है जितना बाद के वर्षों में ज्ञान हासिल करने के साथ–साथ शारीरिक कौशल अर्जित करना। ये गत्यात्मक कौशल अति प्रतिभावान खिलाड़ियों के लिए एक ऐसे प्लेटफार्म की तरह भी हैं जहाँ से वे अनिवार्य स्कूली शिक्षा के बाद खेल सम्बन्धी उपयुक्त दक्षताएँ अर्जित कर पाते हैं। ये उच्च स्तर पर खेलों में भागीदारी का ही नहीं, आराम और विश्राम की गतिविधियों में जीवनपर्यन्त भाग लेने का भी माध्यम बन सकते हैं, जिनके स्वास्थ्य सम्बन्धी लाभ भी हैं।

मैं इस बारे में आश्वस्त हूँ कि खेलकूद में भागीदारी से सकारात्मक शैक्षणिक परिणाम हासिल किए जा सकते हैं। सही तरीके से सिखाए जाएँ तो खेल बच्चों और जवानों के लिए विकसित होने के महत्वपूर्ण अनुभव प्रदान करते हैं और यह न केवल प्रदर्शन में क्षमता–वृद्धि द्वारा होता है, बल्कि व्यक्तिगत विकास और जिम्मेवारी के माध्यम से भी। खेलकूद बच्चों में जीत–हार को समान दृष्टि से देखने की भावना पैदा करते हैं और हमें यह भी सिखाते हैं कि "सबके लिए खेल सम्बन्धी नैतिकता" को कैसे लागू किया जाए। हमें विद्यार्थियों को इस रूप में शिक्षित करने की जरूरत है कि वे न केवल अपने खेल के ज्ञान से लैस खिलाड़ी बनें बल्कि व्यापक खेल–संस्कृति और सामान्य जीवन में अच्छी खेल पद्धतियों के पैरोकार बनें।

खेलकूद और शिक्षा एक–दूसरे के पूरक हैं। इनका एक–दूसरे से तालमेल आवश्यक है। जहाँ एक ओर ज्ञान का बहुत महत्व है, वहीं खेल बच्चों को टीम के हिस्से के तौर पर कार्य करना और आपसी सहयोग करना सिखाते हैं; साथ ही यह शारीरिक अवस्था में भी बेहतरी लाते हैं। दुर्भाग्य से भारत में खेलों के शिक्षण को वैज्ञानिक आधार से नहीं जोड़ा गया है। आवश्यकता है कि स्कूलों में शारीरिक शिक्षा के शिक्षक बच्चों के दिमाग में वैज्ञानिक जिज्ञासा के बीज बोएँ :

1) पोषण – यह कैसे मदद करता है?

2) हृदय गति की जाँच कैसे करें – इसका क्या अर्थ है?

3) हीमोग्लोबिन का क्या अर्थ है?

4) प्रशिक्षण के सिद्धान्त

खेल–संस्कृति विकसित करने के लिए, बच्चों में इसके पोषण के लिए अभिभावकों, शिक्षकों आदि का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है।

अध्ययन दर्शाते हैं कि शारीरिक गतिविधि के उच्च स्तर विद्यार्थियों में बड़ी अकादमिक उपलब्धि से जुड़े हुए हैं। जब हमारी खेल टीमें जिला और राज्य स्तर की प्रतिस्पर्धाओं में मेडल जीत कर लाती थीं तो समाचारपत्र उनकी तस्वीरों से भरे रहते थे, पलक झपकते वे सबकी नजरों में नायक बन जाते थे और साथी विद्यार्थी उन्हें गर्व और ईर्ष्या से देखते थे। मेरे गणित के शिक्षक श्री सनिल ने बताया, "ये बच्चे जिन्होंने खेलों में जीत हासिल की है, अब अपनी पढ़ाई पर अधिक केन्द्रित हुए हैं और इन्होंने अकादमिक दृष्टि से भी अच्छा प्रदर्शन किया है।" यह बात गणित, यानी उस विषय के शिक्षक द्वारा कहा जाना, जिससे अधिकतर विद्यार्थी डरते हैं, दर्शाता है कि शिक्षा और खेल एकीकृत हो जाएँ तो विकास भी होता है और साथ ही सकारात्मक परिणाम भी मिलते हैं।

बहुत लोगों को शिक्षा के मूल्य का अहसास नहीं होता क्योंकि हम इसका होना स्वाभाविक मानकर चलते हैं। हमें अच्छे घरों में अच्छे माता–पिता के यहाँ जन्म लेने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और इसे भी हम स्वाभाविक ही मान लेते हैं कि हम अच्छे स्कूलों और कालेजों में शिक्षा ग्रहण करेंगे। परन्तु जो हमारी तरह भाग्यशाली नहीं होते, उनके लिए शिक्षा एक दूर का सपना होती है। इस सपने को वे खेलों के माध्यम से पूरा कर सकते हैं। खेलों

में प्रतिभाशाली, गरीब पृष्ठभूमि के बच्चे छात्रवृत्तियों और सहायता राशि की मदद से स्कूल तक अपनी पहुँच बना पाते हैं, और उनके लिए शिक्षा एक ऐसे संसार के दरवाजे खोल देती है जो उनके लिए बिल्कुल अलग और नया है। वे शिक्षा के सोपानों को छूने के लिए खेल को सीढ़ी के रूप में प्रयोग करते हैं।

जैसा कि हम सभी जानते हैं, खेल तनाव दूर करने का एक प्राकृतिक साधन हैं। आनन्दित करने वाली, शारीरिक अभ्यास और वर्जिश की किसी भी गतिविधि के दौरान एन्डॉर्फिन निकलते हैं और इसके चलते हमारा मूड भी अच्छा रहता है। अच्छी मनोदशा बेहतर अकादमिक प्रदर्शन के लिए अनुकूल होती है क्योंकि मानसिक शान्ति हो तो बेहतर एकाग्रता भी सम्भव हो पाती है। खेलकूद किसी भी प्रकार की निराशा और कुण्ठा को निकाल बाहर फेंकने का बहुत बढ़िया साधन है। हमारे बच्चों को इसकी जरूरत है!

***अश्विनी नाचप्पा*** *ने ट्रैक एण्ड फील्ड की सौ मीटर, दो सौ मीटर और चार सौ मीटर की राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्पर्धाओं में विजय हासिल करके भारतीय खेलों के लिए नाम कमाया। सक्रिय प्रतिस्पर्धात्मक एथलेटिक्स से सन्यास के बाद 1991 में वे विशेष ओलम्पिक कार्यक्रम से 12 वर्षों तक जुड़ी रहीं। यह कार्यक्रम मानसिक रूप से विकलांग बच्चों और युवाओं के लिए विभिन्न खेलों में प्रशिक्षण प्रदान करता है। 2004 में उन्होंने अपने पति दाता कारूम्बैया के साथ मिलकर आइ.सी.एस.ई. से मान्यता प्राप्त 'कारूम्बैयाज़ एकेडमी फॉर लर्निंग एण्ड स्पोर्टस' www.kalschool.com की स्थापना की। अश्विनी नाचप्पा से सम्पर्क के लिए ई–मेल ashwini.nachappa@gmail.com*

# 08 खेल में साहस और श्रेष्ठता : क्रिकेट से गाथाएँ

एस. गिरिधर,
वी. जे. रघुनाथ

हमें यह कहने में बिल्कुल कोई झिझक नहीं है कि हम दोनों क्रिकेट को लेकर रूमानी हैं। हम यह भी मानते हैं कि बाहरी तौर पर क्रिकेट के गुण–विशेषताओं में चाहे कितना भी बदलाव आया हो, साहस और श्रेष्ठता के सर्वोत्कृष्ट गुण इसमें हमेशा गुंथे रहेंगे। इस आलेख में हम वर्णन करेंगे कि खेल में साहस और श्रेष्ठता क्यों हमारे दिल को छूते हैं, क्यों वे इस खेल को ऊँचा उठाने वाला पक्ष हैं?

हम साहस की उन कहानियों से शुरुआत करेंगे जहाँ खिलाड़ियों ने शारीरिक और जज्बात की पीड़ा से ऊपर उठकर हिम्मत की अमर गाथाएँ रचीं। बल्लेबाजी करते हुए साहस का प्रदर्शन बहुत ही जीवन्त छवियाँ हमारी आँखों के सामने लाता है– जैसे, चेहरे पर चोट खाए हुए, खून थूकते बल्लेबाज का पारी बचाने के लिए मैदान में डटे रहना। 50 वर्ष पहले वेस्टइण्डीज में ग्रिफिथ द्वारा कान्ट्रेक्टर को गिराना किसी भारतीय बल्लेबाज के चोटिल होने की सबसे हृदयविदारक कहानी है। हमारे समाचारपत्रों की श्वेत–श्याम तस्वीरों में वेस्टइण्डीज के कप्तान वॉरेल आपातकालीन ऑपरेशन के लिए रक्तदान करने वाले लोगों की पँक्ति में सबसे आगे खड़े दिखाई दे रहे थे। कान्ट्रेक्टर फिर कभी भारतीय टीम के लिए नहीं खेल सके परन्तु हम दोनों ने उन्हें उस लगभग घातक चोट से उबरने के बाद उसी प्रतिबद्धता से पश्चिमी क्षेत्र के लिए बल्लेबाजी करते देखा है।

1964 में चेन्नई में भारत चौथे दिन की समाप्ति पर अपने चार बेहतरीन बल्लेबाज गँवाने के बाद डांवाडोल स्थिति में था। पाँचवें दिन की सुबह मांजरेकर, जिनके अँगूठे पर क्षेत्ररक्षण के दौरान चोट लगी थी, हनुमन्त सिंह के साथ बल्लेबाजी के लिए मैदान पर उतरे। मांजरेकर को दस्ताने का अँगूठे वाला हिस्सा काटना पड़ा क्योंकि सूजा हुआ अँगूठा दस्ताने में नहीं समा रहा था। चोटिल अँगूठा ढका हुआ नहीं था। आक्रामक तेज गेंदबाज मैकेन्जी की प्रत्येक तूफानी बाल को खेलते समय दर्द को झेलते मांजरेकर ने उस सुबह के सत्र में मैच को बचाने के लिए जी–जान लड़ा दी। अन्ततः दोपहर में भोजन के समय जब वे आउट हुए तो वे हार के बावजूद विजेता की तरह वापिस लौट रहे थे–पूरा दर्शक–समूह उनके सम्मान में खड़ा हो गया।

1980 के दशक में साहस की एक कहानी बार–बार सुनाई जाती है, जबकि दूसरी कभी–कभार ही सुनने में आती है। मोहिन्दर अमरनाथ को मार्शल की बॉल से चोट लगी, उनके मुँह से दाँत के साथ–साथ खून निकला और उन्हें अस्पताल जाना पड़ा। उसी खून में सनी हुई कमीज में अगले दिन बल्लेबाजी की शुरुआत करते हुए उन्होंने पहली बॉल को जो एक बाउन्सर थी, मैदान से बाहर पहुँचा दिया। उनका हौसला रत्तीभर भी कम नहीं हुआ, कदम पीछे हटाना उनकी फितरत में ही नहीं था। उनका साहस एक किंवदन्ती बन गया। इससे दो वर्ष पहले की बात है, आस्ट्रेलिया में भारत के सन्दीप पाटिल एक बाउन्सर का शिकार हो गए, उन्हें खेल से हटा लिया गया और मैच की शेष अवधि में वे बेहोशी की सी अवस्था में रहे। लेकिन उनके कप्तान चाहते थे कि पाटिल दोबारा बल्लेबाजी करें। बीमार और डगमगाते पाटिल बल्लेबाजी के लिए उतरे, कुछ गेंदों तक संघर्ष किया और आउट हो गए। उनके कप्तान गावस्कर वापसी पर सारे रास्ते उनकी प्रशंसा करते रहे। असल बात तो यह थी कि दोबारा बल्लेबाजी के लिए उतरकर पाटिल ने डर के भूत को भगा दिया था–यही सन्देश उन्होंने मैदान में दोबारा उतरकर दिया था।

चोट और गहन पीड़ा से ऊपर उठकर गेंदबाजी के कमाल दिखाने की भी अनेक दिल को छू जाने वाली कहानियाँ हैं। हम भारतीय निश्चित रूप से 1981 में मेलबोर्न में लंगड़ाते हुए कपिलदेव का जीत के लिए गेंदबाजी करना नहीं भूलेंगे। हाल के समय की दिल को छू लेने वाली कहानी 2002 में भारतीय टीम के कैरेबियन दौरे पर अनिल कुम्बले से सम्बद्ध है। डिल्लन की बॉल से जबड़ा चोटग्रस्त होने के बाद पट्टियों से जकड़े हुए और सर्जरी के लिए वापसी उड़ान का कार्यक्रम होने के बावजूद कुम्बले हमेशा की तरह मजबूत इरादे और एकाग्रता के साथ गेंदबाजी के लिए मैदान में उतरे। उन्होंने लारा का विकेट चटकाया और विजेता की तरह हाथ ऊपर उठाए चल पड़े। यह प्रसंग जितनी बार भी देखा और याद किया जाएगा इसमें निहित ताकत कभी भी मन्द नहीं पड़ेगी।

हमारे लिए सबसे भावुक और विचलित करने वाली कहानी दिसम्बर 1953 में न्यूजीलैण्ड द्वारा दक्षिण अफ्रीका के विरुद्ध टेस्ट मैच को बचाने के लिए उतरी चोटिल बर्ट सच्लिफ और भावनात्मक रूप से पस्त बॉब ब्लेयर की जोड़ी के बारे में है। एक बाउंसर गेंद से बुरी तरह चोटिल सच्लिफ सिर पर पट्टियों का वजन लिए हुए हॉस्पिटल से लौटे थे और जवाबी आक्रमण में अविश्वस्नीय ढंग से सात छक्के जड़ दिए। सच्लिफ ने शारीरिक चोट के विरुद्ध संघर्ष किया था; उधर उनके साथ खेल रहे बॉब ब्लेयर की कहानी कहीं अधिक मर्मस्पर्शी है। अभी–अभी खबर मिली थी कि ब्लेयर की मंगेतर एक रेल दुर्घटना में काल का शिकार हो गई है। दसवें विकेट की साझेदारी में सच्लिफ के जोड़ीदार की हैसियत से ब्लेयर द्वारा क्रीज पर डटे रहने के साहस की घटना धैर्य से दुख का सामना करने की हैरतअंगेज कहानी बन गई। अन्ततः जब ब्लेयर आउट हुए तभी उन्होंने अपनी आँखों से आँसू छलकने दिए। एक–दूसरे को बाहों में भरे, रोते हुए और भावनात्मक रूप से परास्त, जब यह जोड़ी वापिस लौटी तो उस दिन एक भी अफ्रीकी व्यक्ति ऐसा नहीं था जिसकी आँखें नम नहीं थीं।

मँसूर अली खान पटौदी को सलाम किए बिना साहस के विषय पर कोई भी लेख अधूरा ही रहेगा। 1962 में इंग्लैण्ड में एक मोटर दुर्घटना में अपनी एक आँख गंवा चुके पटौदी ने अपना लगभग सम्पूर्ण टेस्ट क्रिकेट एक आँख से ही खेला। क्रिकेट इतिहास में यह अपने आप में अद्वितीय बात है। परन्तु 1967 में मेलबोर्न में पटौदी ने केवल एक पैर पर बल्लेबाजी भी की थी क्योंकि उन्हें घुटने के पीछे की नस में चोट लगी थी। टीम की हार के बावजूद पटौदी एक चमकता हुआ सितारा साबित हुए क्योंकि उन्होंने क्रिकेट इतिहास की दो बहुत ही आक्रामक पारियाँ (75 और 85) खेली थीं। रेडियो पर एलन मैकगिल्व्रे को सुनते हुए या अगली सुबह 'द हिन्दू' में जैक फिंग्लटन को पढ़ते हुए यह बिल्कुल स्पष्ट था कि हम एक साहसिक कारनामे के गवाह बन रहे हैं। इतना ही नहीं, 1975 में, जब उनकी शक्तियाँ ढलान पर थीं और शरीर में भी वह लोच–लचक न रही थी, कोलकाता में रॉबर्ट्स की तेज रफ्तार गेंद से पटौदी का जबड़ा बुरी तरह से कुचला गया था। दर्शकों की तालियों की गड़गड़ाहट के बीच ठोड़ी पर टाँकों के साथ पटौदी मैदान पर लौटे और अपनी चोट को भुलाकर गेंद को बाउण्डरी के दर्शन करवाने की विस्फोटक झड़ी लगा दी। यह धधकता हुआ प्रति–आक्रमण संक्षिप्त ही था – उन्होंने केवल 36 रन बनाए। जब पटौदी मैदान से बाहर आए तो कोलकाता के दर्शक जो यह जानते थे कि अब वे उन्हें दोबारा बल्लेबाजी करते हुए नही देख पाएँगे, उन्हें यादगार विदाई देने के लिए उनके सम्मान में खड़े हो गए।

इस आलेख का अगला भाग महान खेल भावना की कहानियों के विषय में है। हर व्यक्ति में कोई जन्मजात प्रवृत्ति या विशिष्टताएँ होती हैं जिनसे उसकी खेल भावना निर्धारित होती है।

हमारे खेलना आरम्भ करने के साथ ही कुछ अपेक्षाएँ निर्धारित कर दी जाती हैं – खेल भावना को बनाए रखना, एकात्मकता को निर्दिष्ट करने वाली भावना, निष्ठा, ईमानदारी और व्यक्तिगत हितों से ऊपर टीम के हितों को महत्व देना आदि। अब हम खेल के मैदान पर समय, संस्कृतियों और भूगोल की सीमाओं से ऊपर उठकर सहृदयता, उदारता और भद्रता की सर्वाधिक भावुक घटनाओं की याद दिलाएँगे। इनमें से अधिकतर शानदार खेल घटनाओं ने अपनी कीमत भी वसूली है – खेल का पलड़ा विरोधी टीम के पक्ष में झुक गया, इनमें से कुछ खिलाड़ियों ने टेस्ट टीम में अपनी जगह खो दी; परन्तु इनमें से किसी भी बात ने उनके दिमाग को विचलित नहीं किया।

हम कुछ भी कहें, वास्तव में कोई भी व्यक्ति प्रतिस्पर्धा करने और जीतने के लिए खेलता है और आस्ट्रेलिया तथा इंग्लैण्ड के बीच ऐशेज शृंखला जीतने के संघर्ष और घोर प्रतिद्वन्द्विता जैसा और कोई उदाहरण नहीं है। जब इंग्लैण्ड ने 2005 में आस्ट्रेलिया को 2 रन से हरा दिया तो आस्ट्रेलिया के बल्लेबाज ब्रेट ली घोर निराशा में अपने घुटनों के बल बैठ गए। अँग्रेज खिलाड़ी जीत की खुशियाँ मना रहे थे और एक–दूसरे को गलबाहियाँ

डाल रहे थे, परन्तु इंग्लैण्ड की जीत के नायक फ्लिन्टाफ ब्रेट ली को सांत्वना देने के लिए बढ़ चुके थे। निराशा में डूबे ली को बाहों में घेरे फिलन्टाफ की तस्वीर शायद उस वर्ष की सबसे यादगार तस्वीर थी।

ऐसी भावना केवल खिलाड़ियों तक ही सीमित नहीं है। कुछ क्रिकेट मैदानों को भी ऐसी खेल भावना से जुड़े होने का आशीर्वाद प्राप्त है। दिसम्बर 1998 में पूरा भारत निराशा में डूबा हुआ था जब भारत मात्र 12 रन से पाकिस्तान के हाथों मैच हार गया और तेन्दुलकर के महानतम में से एक शतक भी काम न आया। चैन्नई के दर्शकों को सबसे अधिक ठेस लगनी चाहिए थी लेकिन स्टेडियम में मौजूद 60,000 लोगों ने महान उदारता का परिचय दिया और खड़े होकर तालियाँ बजाते हुए पाकिस्तानी टीम का अभिनन्दन किया। इस अभिनन्दन के बीच पाकिस्तान की टीम द्वारा अपनी जीत के उल्लास में चेपॉक मैदान में चक्कर लगाना हमेशा के लिए स्मृतियों में अंकित हो गया।

ऐसे प्रेरक व्यवहार के लिए कप्तान तो मिसाल बन सकते हैं। मुम्बई में जुबिली टेस्ट (1982) में इंग्लैण्ड की टीम 5 विकेट पर 85 रन के साथ लड़खड़ा रही थी। बॉब टेलर को कैच आउट घोषित कर दिया गया, परन्तु टेस्ट मैच में भारत के कप्तान विश्वनाथ ने अम्पायरों से टेलर को वापिस बुलाने का आग्रह किया क्योंकि उनके विचार में बल्लेबाज आउट नहीं था। टेलर दोबारा क्रीज पर आ गए और उन्होंने बॉथम के साथ एक मैच जिताने वाली भागीदारी निभाई। इस सबमें विश्वनाथ के लिए कुछ भी विशेष नहीं था क्योंकि उनके हिसाब से तो खेलने का दूसरा कोई तरीका ही नहीं था। यह हमेशा बहस का विषय रहा है कि बल्लेबाज को आउट होने पर स्वयं ही मैदान छोड़ देना चाहिए या अम्पायर को निर्णय करने देना चाहिए? विश्वनाथ के लिए यह किसी बहस का प्रश्न ही नहीं था। हमने कितनी ही बार देखा कि किस तरह गेंद का बल्ले से स्पर्श होकर लपके जाते ही, क्षेत्ररक्षक द्वारा अपील करने से भी पहले, वे बल्ला उठाकर चल देते थे।

गेंदबाजों में क्रिकेट की खेल–भावना का सच्चा राजदूत वेस्टइण्डीज के कर्टनी वाल्श से बेहतर शायद ही कोई और हो। 1987 में पाकिस्तान के विरुद्ध एक वर्ल्ड कप मैच में वाल्श ने तब सदा के लिए सम्मान अर्जित कर लिया जब एक विकट स्थिति में उन्होंने उस पा. किस्तानी बल्लेबाज को रन आउट करने से इन्कार कर दिया जो नॉन–स्ट्राइक सिरे पर वाल्श के गेंद फेंकने से पहले ही भागकर कुछ अतिरिक्त दूरी का फायदा लेने की कोशिश कर रहा था। वाल्श ने इस बल्लेबाज को रन आउट करने की अपेक्षा उसे ऐसा नहीं करने की चेतावनी भर दी। इस खेल भावना की कीमत वेस्टइण्डीज को मैच हारने के रूप में चुकानी पड़ी (और वे टूर्नामैन्ट से बाहर हो गए), परन्तु वाल्श अन्य किसी भी दूसरे तरीके से जीतना नहीं चाहते थे।

क्रिकेट में खेल भावना की बात आमतौर से एक बहुत ही सरलीकृत ढाँचे में रखकर की जाती है। एक दृष्टिकोण है कि जबसे इस खेल में शौकिया से पेशेवर, और इसके बाद आधुनिक समय के अत्यधिक वाणिज्यिक रूप जैसे बदलाव हुए हैं, खेल के साथ जुड़ी भद्रता समाप्त हो गई है। दूसरे वर्ग का मत है कि क्योंकि हम हर चीज टी.वी. पर देखते और

सुनते हैं, हमें लगता है कि खेल भावना विकृत हो गई है, जबकि शायद ऐसा हुआ नहीं है। दोनों ही मत कुछ सीमा तक सही हो सकते हैं परन्तु सच्चाई इससे कहीं अधिक है। हम आशा करते हैं कि इस लेख के माध्यम से हम कुछ ऐसे प्रमाण प्रस्तुत करने में कामयाब रहे होंगे जो दर्शाते हैं कि उदार चेष्टाओं ने आज के दौर की भी उतनी ही शोभा बढ़ाई है जितनी पहले दौरों की बढ़ाती थीं। एक विडम्बनापरक मायने में, आधुनिक समय में बहुत अच्छा टी.वी. कवरेज शायद क्रिकेट की भावना को बचाए रखने का माध्यम बन रहा हो क्योंकि कोई भी क्रिकेटर नहीं चाहेगा कि वह गंवार और असभ्य दिखाई दे; वह यह भी नहीं चाहेगा कि उसकी निष्ठा पर प्रश्न उठते हुए दिखें। यहाँ से खेल भावना के अधिक स्वैच्छिक प्रयासों तक की यात्रा शायद बहुत ज्यादा लम्बी नहीं होगी।

**टिप्पणी :**

यह लेख फरवरी और मार्च में espncricinfo.com पत्रिका के लिए दो भागों में लिखे गए लेख का संक्षिप्त रूप है। जो पाठक ऐसे और अधिक प्रसंग पढ़ने के इच्छुक हैं, वे नीचे दी गई लिंक पर जाएँ –

http://blogs.espncricinfocom/inbox archives/2010/03/nobility_in_a_hard_game.php and
http://blogs.espncricinfo.com/inbox/archives/2010/02/courage_in_a_hard_game.php

***गिरि*** *अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में रजिस्ट्रार और विश्वविद्यालय संसाधन केन्द्र के प्रमुख हैं।* ***रघु*** *एडिसन पेन्ट्स के सेवानिवृत्त मुख्य कार्यकारी अधिकारी और वरिष्ठ प्रशिक्षण सलाहकार हैं। दोनों में टेस्ट क्रिकेट के प्रति गहरा लगाव है। रघुनाथ 60 और 70 के दशकों में मुम्बई और चैन्नई लीग में देश के अनेक टेस्ट क्रिकेटरों के साथ खेल चुके हैं। गिरि और रघु कॉर्बारण्डम यूनिवर्सल, चैन्नई में मिले और 1980 के दशक में हिन्दू ट्रॉफी और चैन्नई की अन्य प्रतियोगिताओं में खेले। दोनों लेखकों ने क्रिकेट पर अनेक लेख लिखे हैं जिनमें खेल के समृद्ध इतिहास के उदाहरण भरे हुए हैं। उनसे यहाँ सम्पर्क किया जा सकता है : giri@azimpremjifoundation.org तथा raghunathj@gmail.com*

# 09 शिक्षा में खेलकूद

(जैसा उन्होंने हिता गुज्जर को बताया)

**बीडू**

अनेक लोग इस भ्रम में रहते हैं कि शारीरिक शिक्षा का अर्थ एक या दो घण्टे का शारीरिक अभ्यास करना है। वे शारीरिक शिक्षा द्वारा विशेष रूप से बच्चों को होने वाले फायदों को भूल रहे होते हैं। एक नए खेल को सीखने या प्रशिक्षण का अनुभव जीवन भर उनके साथ रहता है; यह बच्चों तथा परिवारों को चुस्त–दुरुस्त और स्वस्थ रहने में सहायता करने के अलावा साथ रहने और मौज–मस्ती के मौके भी प्रदान करता है।

शारीरिक शिक्षा के माध्यम से बच्चे समयबद्धता, सन्तुलन, समन्वय और एकाग्रता सीखते हैं। इसी वजह से यह विषय किसी भी समग्र, व्यापक स्कूली पाठ्यचर्या का अंग बनता है। यह विषय बच्चे के मनोवैज्ञानिक विकास के लिए भी बहुत आवश्यक है क्योंकि इसकी मदद से बच्चा नकारे जाने की अवस्था को बेहतर तरीके से स्वीकारना और सफलता तथा उपलब्धि को तत्काल ही अनुभव करना सीख पाता है। साथ ही समूहकार्य, सम्प्रेषण, प्रेरणा, सांगठनिक क्षमताओं का विकास, नेतृत्व और अन्य लोगों के साथ मेलजोल सम्बन्धी कौशल भी सीख पाता है।

शारीरिक शिक्षा किसी सम्पूर्ण शैक्षणिक पैकेज के मुख्य घटकों में से एक है; इसके बगैर यह पैकेज अधूरा है। खेलकूद एक विज्ञान है और इसलिए आवश्यक हो जाता है कि शारीरिक शिक्षा के प्रशिक्षक प्रशिक्षित हों, और योग्य भी। आदर्श स्थिति तो यह है कि शारीरिक शिक्षा का एक अच्छा प्रशिक्षक खेलों की पृष्ठभूमि से हो, विद्यार्थियों को प्रशिक्षण देने में वह रुचि रखता हो, और उसमें श्रेष्ठ प्रदर्शन क्षमताएँ होने के साथ–साथ नेतृत्व का माद्दा भी हो। शारीरिक शिक्षा का एक अप्रशिक्षित और अयोग्य शिक्षक अपने कर्तव्य के प्रति न्याय नहीं कर सकेगा। अधिकतर सरकारी या राज्य संचालित विश्वविद्यालय शारीरिक शिक्षा के शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए पाठ्यक्रम चला रहे हैं, परन्तु दुर्भाग्य से इनकी गुणवत्ता और मानदण्ड बहुत निम्न स्तर के हैं। निजी कॉलेज शारीरिक शिक्षा के बेहतरीन शिक्षकों का चयन करते हैं और किसी भी अन्य विभाग की तरह सेमिनारों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करते हैं; प्रबन्धन भी उन पर नजर रखता है और उनके लिए अपने कार्य में प्रगति का प्रदर्शन करना आवश्यक है। उदाहरण के लिए, बंगलौर के भगवान महावीर जैन कॉलेज का शारीरिक शिक्षा विभाग बहुत अच्छा है, शिक्षक बहुत योग्य हैं और इसी कारण बहुत से विद्यार्थी ऐसे कॉलेजों का चयन करते हैं। वास्तव में, ऐसे कॉलेज कुछ बहुत अच्छे एथलीट तैयार करने में सफल रहे हैं और उन्होंने देश का भी प्रतिनिधित्व किया है।

बहुत पहले, 1960 में जब मैंने प्रशिक्षण पाया था, व्यवस्था बहुत अच्छी थी क्योंकि हमारे पास शारीरिक शिक्षा के उच्च प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षक थे। बाद में गुणवत्ता में गिरावट आ गई। मैं सरकार की प्रशंसा करता हूँ जो रिफ्रेशर कोर्स, अभिमुखीकरण कोर्स और प्रशिक्षण पाठ्यक्रम संचालित करके अनेक उपायों द्वारा वर्तमान स्थिति को सुधारने का प्रयास कर रही है। वेतनमान भी बहुत अच्छे हैं। परन्तु संस्थानों में चयन की विशिष्ट प्रक्रिया के अभाव के चलते स्तर में गिरावट आई है और कुछ स्कूलों में तो शारीरिक शिक्षा विभागों में बजट भी आवंटित नहीं है। कुछ शारीरिक शिक्षा शिक्षकों के साथ परिचारक (अटेन्डेन्ट) जैसा व्यवहार किया जाता है और बहुत से स्कूलों में तो कोई भी खेल सुविधा नहीं है। बहुत अच्छे एथलीट, जो सामान्य तौर पर अपने–अपने क्षेत्र से जुड़े पेशों में जाना चाहते हैं, आर्थिक मजबूरी या स्कूलों और कॉलेजों द्वारा शारीरिक शिक्षा के प्रशिक्षकों के साथ किए जा रहे बर्ताव के कारण अन्य पेशों का चुनाव करने के लिए बाध्य हो जाते हैं। खाली हुए स्थानों को भरने के लिए अकुशल और अप्रशिक्षित व्यक्ति सामने आते हैं और इस तरह गुणवत्ता में गिरावट आती है। सरकार को दखल देकर स्थिति को सुधारने का प्रयास करना चाहिए।

पश्चिमी देशों में विद्यार्थियों के लिए शारीरिक शिक्षा के अंक अनिवार्य हैं और इस प्रकार समग्र, व्यापक विकास सुनिश्चित हो पाता है। बच्चों को तैराकी, जिम्नास्टिक्स और एथलेटिक्स के मूलभूत कौशल सीखने होते हैं। हमें भी बच्चों के लिए ये कौशल कम से कम पाँचवीं कक्षा से अनिवार्य करने चाहिए। यह बच्चों में दमखम और बेहतर रोग–प्रतिरोधक क्षमता पैदा करने में मददगार होता है। परन्तु यह कौशल सीखने के लिए सही वातावरण होना आवश्यक है जिसके लिए बजट आवंटन बहुत जरूरी है। मान लें कि सरकार ने एक सार्वजनिक स्टेडियम तैयार करके उपलब्ध करवा दिया, परन्तु उसका उपयोग करना स्कूलों पर निर्भर करता है। स्कूलों द्वारा इन

सुविधाओं का उपयोग किया जा सकता है परन्तु वे ऐसा करते नहीं हैं।

भारत में प्रत्येक क्षेत्र का पैसे से जुड़ा पहलू भी है। उदाहरण के लिए, मीडिया किसी भी अन्य खेल की तुलना में क्रिकेट को ज्यादा कवरेज देता है। इस खेल का बहुत अधिक व्यवसायीकरण हो गया है और स्कूल स्तर पर यह बच्चों के लिए वांछित शारीरिक अभ्यास भी प्रदान नहीं करता है। मैं चाहूँगा कि मीडिया स्कूलों में शारीरिक शिक्षा के अभाव की ओर ध्यान आकर्षित करे। यह सही है कि किसी के लिए एक खेल को बेचना या मार्केट बनाना सम्भव नहीं है लेकिन मीडिया जिम्नास्टिक्स, खेलों और एथलेटिक्स के प्रति लोगों के नजरिए में बदलाव जरूर ला सकता है।

एक धारणा यह भी है कि खेल बहुत खर्चीले होते हैं और केवल अमीर लोगों के लिए हैं, परन्तु यह सच्चाई नहीं है। पैसों की जरूरत तो पड़ती ही है लेकिन बहुत ज्यादा नहीं। सरकार द्वारा कांतीर्व स्टेडियम जैसी सुविधाएँ उपलब्ध करवाई गई हैं जो बिल्कुल मुफ्त हैं। नाइकी रन क्लब छोटे बजट का प्रयास है जिसमें लगभग 300 लोगों को मुफ्त प्रशिक्षण दिया जाता है।

स्कूलों और कॉलेजों को समुचित खेल सुविधाएँ सुनिश्चित करना ही चाहिए। किसी भी अन्य विभाग की तरह एक शारीरिक शिक्षा विभाग का होना भी आवश्यक है। इस विभाग की समयसारणी सुविधानुसार होनी चाहिए क्योंकि अधिकतर प्रशिक्षण स्कूल और कॉलेज समय से पहले या बाद में होते हैं। विद्यार्थी खेल स्पर्धाओं और प्रशिक्षण सत्रों में भाग ले रहे हों, तब भी उन्हें कक्षा में उपस्थिति के लिए प्रताड़ित किया जाता है। खेल के मैदान पर विद्यार्थियों के प्रदर्शन का भी मूल्यांकन होना चाहिए। आशा की जा सकती है कि यह विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करेगा। ज्यादातर स्कूलों में नौवीं और दसवीं कक्षाओं में खेल के घण्टे पर रोक लगा दी जाती है जबकि ऐसा नहीं होना चाहिए।

सरकारी स्कूलों में स्थिति बहुत खराब है; उनमें एक मैदान के अतिरिक्त कुछ नहीं है। अनेक स्कूलों में प्रशिक्षण सुविधाएँ नहीं हैं और न ही वहाँ विद्यार्थियों को सरकारी स्टेडियम में ले जाकर सुविधाओं का उपयोग करने के लिए बजट या पहलकदमी है। प्रत्येक सरकारी स्कूल में एक योग्यताप्राप्त प्रशिक्षित शारीरिक शिक्षा शिक्षक का होना सुनिश्चित किया जाना जरूरी है। श्रेष्ठ निजी स्कूल इस क्षेत्र में सरकारी स्कूलों के मुकाबले बेहतर स्थिति में हैं। व्यवस्था में बदलाव का यही समय है।

मेरा सुझाव है कि सरकारी स्कूलों के लिए सरकार ज्यादा धनराशि उपलब्ध करवाए और मॉनीटर करने के लिए एक निकाय की स्थापना करे जो सुनिश्चित करे कि इस धन का दुरुपयोग नहीं हो। गुणवत्तापरक शारीरिक शिक्षा की आवश्यकता को समझने के लिए और अधिक कार्यक्रम संचालित किए जा सकते हैं। अच्छा स्तर और मानदण्ड बनाए रखने हेतु शारीरिक शिक्षा के प्रत्येक शिक्षक के लिए योग्यता की जरूरतें पूरी करने पर बल दिया जाना जरूरी है।

बेहतर शारीरिक शिक्षा तंत्र कायम रखने वाले बंगलौर के कुछ संस्थानों में सेंट जोसेफ इण्डियन ब्वायज हाईस्कूल, क्लूनी कॉन्वेंट, माउण्ट कार्मेल कॉलेज और भगवान महावीर जैन कॉलेज शामिल हैं। इन संस्थानों में एक अलग शारीरिक शिक्षा विभाग है जिसमें पर्याप्त धनराशि और योग्य तथा प्रशिक्षित शिक्षक हैं। इन्होंने राष्ट्रीय स्तर के अनेक खिलाड़ी तैयार किए हैं। वर्तमान समय में यहाँ अध्ययन कर रहे कुछ विद्यार्थी जो खेलों में अपना करियर बनाना चाहते हैं, स्वयं को बहुत सुविधाजनक स्थिति में पाते हैं क्योंकि विभाग सुनिश्चित करता है कि उन्हें अपनी उपलब्धियों का श्रेय हासिल हो; प्रतिभा को पहचान मिलती है और पोषित किया जाता है। शारीरिक–शिक्षा विभाग द्वारा संचालित गतिविधियाँ अन्य विद्यार्थियों को नए खेल सीखने और खेलों के प्रति रुचि पैदा करने में मदद करती हैं।

यद्यपि सरकार ने स्कूलों में शारीरिक शिक्षा के लिए प्रतिदिन एक घण्टा अनिवार्य कर दिया है, खेल विभाग की गुणवत्ता भी स्तरीय होना आवश्यक है। स्कूलों को एक उपयुक्त शारीरिक शिक्षा विभाग की स्थापना और उसका प्रबन्धन सुनिश्चित करना होगा।

***बीडू*** *ने वाई.एम.सी.ए. चैन्नई तथा राष्ट्रीय खेल संस्थान, पटियाला में प्रशिक्षण प्राप्त किया और शारीरिक शिक्षा में स्नातकोत्तर अध्ययन जर्मनी में किया है। वे एथलेटिक्स में प्रशिक्षण के विशेषज्ञ हैं और अनेक राज्य और राष्ट्रीय स्तर के एथलीटों को प्रशिक्षित कर चुके हैं। वे मैराथन धावकों को मुफ्त प्रशिक्षण देने वाले नाइकी रन क्लब में मुख्य कोच भी हैं।*

# 10 एक खिलाड़ी की माँ होने की खुशियाँ

देविका नाडिग

मैंने बारह बरस तक एक स्कूल की मुखिया और पन्द्रह बरस तक शतरंज जैसे कठिन, एकाकी खेल की चैम्पियन की माँ होने का आनन्द उठाया और इस अनुभव से मैं सही सलामत निकल आई। इसके बाद यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि मैंने प्रतिस्पर्धात्मक खेल और उसकी दुनिया, दोनों का खूब अनुभव हासिल किया है।

मैं नहीं जानती कि पहले क्या आया–मेरी बेटी कृतिका का बारम्बार स्कूल न जाना और नतीजतन, उसके प्रिंसिपल से छुट्टी की लिखित इजाजत के इन्तजार में उनके ऑफिस के बाहर घण्टों खड़े रहने का मेरा तकलीफदेह अनुभव – या फिर स्कूल की मुखिया के रूप में मेरा सकारात्मक रवैया, जिसके चलते मैं बच्चों को उनके पसन्दीदा खेल में पूरी गम्भीरता से लग जाने की अनुमति सहर्ष दे दिया करती थी। शायद एक से ही दूसरा निकला होगा।

बहरहाल, मैं जोखिम उठाते हुए अपने इस विश्वास पर कायम रही कि पीछे छूटी पढ़ाई की भरपाई के दबाव सहित तमाम कष्टों के बावजूद, स्कूली–जीवन के दौरान खेलों में भाग लेना एक करने लायक बात है। इसलिए खिलाड़ी बनने के आकांक्षी विद्यार्थी मेरे नेतृत्व में चल रहे स्कूल की ओर खिंचे चले आते थे। जल्द ही हमारी ख्याति इस बात के लिए हो गई कि हम खेल–आकांक्षियों का 'ध्यान रखते हैं'; उनके लगातार चलने वाले प्रशिक्षणों और प्रतियोगिताओं की कार्यक्रम–सारणी में सहयोग करते हैं, और अपनी इन व्यस्तताओं से छुट्टी पाकर जब भी वे स्कूल लौटते हैं, तो हम उनके शैक्षणिक मूल्यांकन तथा परीक्षा आदि की सारणी में फेर–बदल की गुंजाइश रखते हैं। विडम्बना यह, कि एक ओर जहाँ मेरे अपने स्कूल के कई विद्यार्थियों के लिए मैंने यह सब किया, वहीं मेरी अपनी बेटी को अपने परम्परागत स्कूल में कई मुश्किलों का सामना करना पड़ा। कृतिका को मेरे स्कूल में प्रवेश दिलाने का तो सवाल ही नहीं उठता था क्योंकि मैं उसे उस विशिष्ट बर्ताव से दूर रखना चाहती थी जो प्रिंसिपल की बेटी होने के नाते उसे मेरे स्कूल में निश्चित ही मिलता।

प्रतिभा–समर्थन के अपने इन प्रयासों के चलते मैंने पाया कि जब भी विद्यार्थियों को उनका शौक पूरा करने की आजादी दी जाती है, तो स्कूल वापिस आने पर वे अपने अध्यापकों के प्रति एक जवाबदेही महसूस करते हैं, और जिन कार्यों में वे पीछे रह गए, उन्हें पूरा करने में जुट जाते हैं। यह बात खेल हो या संगीत या कोई भी अन्य प्रदर्शनकारी कला, सब क्षेत्रों के विद्यार्थियों पर लागू होती है। मैंने पाया कि वे अपने आस–पास की हर चीज को बड़ी तेजी से जज्ब करते हैं, पहले से अधिक मेहनत करते हैं और स्कूल में बिताए हर पल में ऊर्जा से भरे रहते हैं। यह बड़ी हैरत की बात थी, क्योंकि हमें तो लगता था कि वे जब भी लौटकर आएँगे, थके–हारे होंगे और आते ही सुस्ती की शरण में आराम फर्माएँगे।

हाँ, यह कहना मुश्किल है कि उनकी यह ताजादम ऊर्जा नितान्त उनकी अपनी थी, या अध्यापकों और अभिभावकों को खुश रखने, और अपने साथियों को प्रभावित करने की इच्छा से जन्मी थी।

*मैंने पाया कि वे अपने आस–पास की हर चीज को बड़ी तेजी से जज्ब करते हैं, पहले से अधिक मेहनत करते हैं, और स्कूल में बिताए हर पल में ऊर्जा से भरे रहते हैं। यह बड़ी हैरत की बात थी, क्योंकि हमें तो लगता था कि वे जब भी लौटकर आएँगे, थके–हारे होंगे और आते ही सुस्ती की शरण में आराम फर्माएँगे।*

खेलों के इन नन्हे सितारों के माता–पिता भावनाओं के समन्दर में कभी मजबूत तो कभी कमजोर पड़ते दिखाई देते थे। जब भी उनके लाड़ले खेल के मैदान से सफलता–प्रतिष्ठा अर्जित करके लौटते, तो उनके माता–पिता कहते कि उनके बच्चे अपने खेल को जारी रख सकें, अपना शौक पूरा कर सकें, इसके लिए वे कुछ भी करने को तैयार हैं। वे इस बात पर भी पूरा बल देते कि 'केवल पढ़ना' कोई बड़ा उद्देश्य नहीं हो सकता। लेकिन, जब यही लाड़ले बुरे दौर से गुजर रहे होते तो

खेलों की अनिश्चितता का विलाप शुरू हो जाता; वे पूछते कि बच्चे पढ़ाई–लिखाई पर ध्यान केन्द्रित कर सकें, क्या स्कूल इसमें मदद कर सकता है? हाँ, इस प्रकार की अस्थिरता अनुभवी अभिभावकों में कम दिखाई देती थी – और उन अभिभावकों में भी, जिनके बच्चे अपेक्षाकृत बड़े थे और जानते थे कि वे क्या करना चाहते हैं, फिर चाहे सफलता आसानी से हाथ न भी आए।

एक टेनिस चैम्पियन की माँ ने मुझे बताया कि कैसे उनका बेटा नहाते समय, नाश्ते की मेज पर, स्कूल बस में और ऐसी अन्य जगहों पर पढ़ने की जिद किया करता था ताकि वह समय बचा सके। मेरे साथ भी ऐसा होता था। मेरी बेटी अपना सारा होमवर्क अपनी स्कूल बस में बैठे–बैठे ही पूरा कर देती ताकि घर पहुँचते ही वह अपना शतरंज का रियाज करने के लिए एकदम तैयार हो। सचमुच एक बार अगर आपने कोई लक्ष्य तय कर लिया तो आपका शौक आपसे कुछ भी करवा सकता है!

*संगीत की तरह खेल भी देश और संस्कृति की समस्त बाधाओं को तोड़ते हैं। आप यदि एक ऐसा खेल चुनते हैं जो आपको दुनिया भर की सैर करने के मौके देता है तो आप विभिन्न संस्कृतियों और सभ्यताओं के, अपने ही जैसे खिलाड़ियों के सम्पर्क में आते हैं, और आपका नजरिया, आपका सोचने–समझने का ढंग, आपकी विश्व दृष्टि में वह व्यापकता आ जाती है जो शायद बहुत कुछ पढ़ने पर भी न आए। यह प्रत्यक्ष अनुभव होता है। सीमाएँ घुल जाती हैं। दुनिया भर में आपके दोस्त बनने लगते हैं। दुनिया सिमट कर आपके करीब आ जाती है।*

इसकी तुलना में, ऐसे कुछ बच्चे जो किसी खेल या शौक के दीवाने नहीं थे, अपना समय दोस्तों के साथ घूमने–फिरने में गुजारते थे। उनका बाकी समय शायद ट्यूशन में या फिर टी.वी. देखने में जाता था। लेकिन मैं इतना जानती हूँ कि वे अक्सर उकताए हुए ही रहते थे और इसीलिए उदासीन भी। इस सबसे मुझे समझ में आया कि इन विद्यार्थियों को स्वयं के लिए प्राप्त किए जा सकने वाले लक्ष्य खुद से बनाने होंगे, और हमें इसमें उनकी मदद करनी होगी। सभी छात्रों को हम अपने लिए पढ़ाई के अलावा आजीवन अनन्त खुशी देने वाला कोई एक शौक या खेल चुनने के लिए प्रोत्साहित करते। कहना न होगा कि किसी के लिए भी सबसे बेहतर स्थिति तो यही होती है कि आगे चलकर आपका पसन्दीदा खेल या आपका शौक ही आपके पेशे में तब्दील हो जाए!

और नन्हे चैम्पियन! वे पूरे स्कूल कैम्पस में राजा या रानी की शान से घूमा करते थे– आत्मविश्वास और प्रभावी लहजे से लबरेज, बिल्कुल सीधे, सिर उठाए, अधरों पर खेलती एक चपल–सलोनी मुस्कान के साथ। यह आत्मविश्वास उनके हर काम में झलकता था। अपने स्कूली जीवन में मुझे एक भी चैम्पियन खिलाड़ी नहीं मिला जिसे अक्खड़ कहा जा सकता हो। हाँ, प्रतियोगिताओं में शायद वे ऐसे होते हों, लेकिन यहाँ स्कूल में वे अद्‌भुत रूप से विनम्र नजर आते थे शायद इसलिए क्योंकि यहाँ उनके कई अन्य रूप भी थे और उनका खेल तो उनके व्यक्तित्व का एक छोटा हिस्सा भर था। ये अनुभवी खिलाड़ी नए उभरते खिलाड़ियों के लिए पथ–निर्माता भी होते थे। उनके जज्बे को उछाल मिलता था और नए स्वप्न जन्म लेते थे। और हम हर नए सपने का स्वागत करते थे।

खेल को खेल के लिए खेलने में भी एक समझदारी है। क्योंकि खेल प्रतियोगिताएँ छलावा भी दे सकती हैं। बच्चे स्टार खिलाड़ी बनें या न बनें, लेकिन छोटी उम्र से ही बच्चों को खेलने के लिए प्रेरित करने के कई फायदे हैं। एक सक्रिय खिलाड़ी की माँ होने के नाते मैंने पीड़ा और आनन्द से भरपूर जीवन जिया। किसी टूर्नामैण्ट

में हार के बेहद पीड़ादायक क्षणों के बाद भी कड़ी मेहनत और नए–नकोर इरादों के बूते बेहतर और सुखद परिणाम पाने की एक शाश्वत उम्मीद और आकांक्षा मन में कहीं बनी रहती थी। दरअसल, इस लिहाज से यह एक नशा सा ही बन गया था–सहेजे रखने लायक प्यारा नशा। कभी–कभी सोचती हूँ कि खेल और खेल प्रतियोगिताओं के लिए मेरी लालसा की शिद्दत कहीं मेरे घरेलू चैम्पियन की ललक के मुकाबले भी अधिक तो नहीं थी!

छात्रों द्वारा खेलों को अपने करियर हेतु एक गम्भीर विकल्प के तौर पर आजमाने के मुद्दे पर स्कूल आमतौर पर बहुत उत्साही नहीं होते। इसका प्रमुख कारण है परीक्षा परिणामों को लेकर हमारे स्कूलों की अनबुझ प्यास। उन्हें लगता है कि उनके पास अपनी विश्वसनीयता बनाने का यही एक रास्ता है। उनकी इस सोच के पीछे निश्चित ही सामाजिक मूल्यों का बड़ा हाथ है। इस मसले पर स्कूल बड़े अजीब–ओ–गरीब ढंग से अभिभावकों के साथ हो लेते हैं और अपना मूल्य इसी हिसाब से आँकने लगते हैं कि हर साल उनके यहाँ से कितने टॉपर और अच्छा रैंक पाने वाले कितने विद्यार्थी निकलते हैं। असल में तो इसकी बजाय उनका सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य यह होना चाहिए कि हर बच्चे को अच्छी शिक्षा मिले, अपनी सम्भावनाएँ साकार करने का भरपूर मौका और समर्थन मिले।

हाँ, खेलों के लिए लगातार पैसे जुटाना जरूर एक मुश्किल काम है। शतरंज की ही बात करें तो केवल दो चीजें सस्ती हैं – बिसात और गोटियाँ। ढंग की कोचिंग बहुत ही महँगी है। शतरंज प्रतियोगिता का आयोजन भी बेहद खर्चीला काम है। मेरे अनुमान से अधिकांश अभिभावकों के लिए यह एक मुश्किल फैसला होता होगा, वे चाहे जितने भी बड़े खेल–समर्थक क्यों न हों।

मेरा बहुत समय प्रायोजकों से मिलने, उनके सामने हमारी बात रखने और फिर एक बेनतीजा सी दिखने वाली दौड़–भाग करने में लगता था। इस तमाम मशक्कत और बार–बार की मेहनत के बाद ही कोई परोपकारी आत्मा मिल पाती थी, और हम अपने सुनहरे सपने की ओर एक कदम आगे बढ़ पाते थे।

फिर भी हम कुछेक अच्छी प्रतियोगिताएँ जीतने में सफल रहे, जिसके चलते सरकार और भारतीय खेल प्राधिकरण (स्पोर्टस् अथॉरिटी ऑफ इण्डिया – साई) से कुछ वित्तीय मदद मिली। विडम्बना यह है कि योग्यता के मापदण्ड पर मदद के हकदार होने के बावजूद आप इसके बारे में तब तक आश्वस्त नहीं हो सकते, जब तक आप राजधानी स्थित सत्ता के गलियारों में धरने की सी अवस्था में नहीं बैठते।

अपने इस अनुभव के चलते मैं अपने स्कूल के कुछ खिलाड़ियों की मदद भी कर पाई। वे चाहे किसी भी खेल के रहे हों, अपने अनुभव के आधार पर वित्तीय सहायता की तलाश में मैं सही कार्यालय में, सही मेज पर पहुँचकर इन खिलाड़ियों की मदद कर पाई। बस इसके बाद का संघर्ष मेरे बहादुर खिलाड़ियों को करना होता था। इस पूरे काम की विशालता को देखते हुए खिलाड़ियों के जीवन में कम से कम एक ऐसे प्रौढ़ व्यक्ति की आवश्यकता है जो एकाग्रचित प्रतिबद्धता के साथ उनके साथ हो।

सच में, यह देखकर बड़ी खुशी होती है कि कुछ प्रमुख टी.वी. चैनल अब 'मार्क्स फॉर स्पोर्टस्' जैसे अभियान चलाने लग गए हैं। लेकिन फिर भी हमें इस बात पर तो गौर करना होगा कि आखिर क्यों हम ऐसी दुखद स्थिति तक पहुँचे।

पढ़ाई–लिखाई के बावजूद, खेलों में श्रेष्ठता अर्जित करने का जतन आज भी जारी है। अक्सर, 'एकला चालो रे' की तर्ज पर।

***देविका नाडिग*** *पुणे स्थित शिक्षांगन एजुकेशन इनिशिएटिव्ज के संस्थापकों में से एक हैं। वे प्राथमिक, माध्यमिक और तृतीयक स्तर पर निजी और सरकारी शैक्षिक जगत का हिस्सा रही हैं। एक भूतपूर्व प्राचार्य और शतरंज चैम्पियन कृतिका नाडिग की अभिभावक होने के नाते उन्हें विभिन्न स्कूल प्रधानाचार्यों, अध्यापकों, महाविद्यालयों के शिक्षकगण और युवाओं के साथ काम करने का अनुभव रहा है। वे कई सामाजिक पहलकदमियों के मूल्यांकन में भी शामिल रही हैं। उनसे devika@shikshangan.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।*

# 11 बच्चा और खेलकूद

श्यामल वल्लभजी

जब मुझे खेलकूद, बच्चों पर इसके प्रभाव और स्कूली पाठ्यचर्या में इसके महत्व पर लिखने को कहा गया तो तत्काल मेरे दिमाग में एक विचार कौंधा – हर बच्चा मुँह में चाँदी का चम्मच लेकर पैदा नहीं होता है। हर बात में दोषरहित पूर्णता हासिल करने की कोशिश करने वाले अभ्यास–विज्ञानी के तौर पर मैं कठोर परिश्रम और अभ्यास को प्रतिभा से अधिक महत्व देता हूँ।

पिछला एक दशक खेल के क्षेत्र में अनुकरणीय, विशिष्ट बदलाव का गवाह रहा है। वही खेल–क्षेत्र, जिसका मकसद पहले केवल मनोरंजन और दिल बहलावे तक सीमित था, अब करोड़ों डॉलर के उद्योग में बदल गया है, और उसने न केवल रोजगार के अवसर पैदा किए हैं बल्कि अनेक व्यक्तियों को रातोंरात सितारा बना दिया है। यह पूरे संसार में सबसे तेजी से बढ़ने वाला उद्योग और शायद बहुत ही व्यापक पैमाने पर आर्थिक लाभ प्रदान करने वाला क्षेत्र है।

परन्तु यह प्रश्न अभी भी बना हुआ है कि क्या 'सच्चा दिखाई देने वाला यह सपना' सचमुच बड़ी संख्या में लोगों द्वारा हासिल किया जा सकता है या यह केवल हमारी कल्पना की उपज है? इससे भी महत्वपूर्ण यह सवाल है कि यह सुनिश्चित करने के लिए क्या कदम उठाए जा सकते हैं कि खेल–क्षेत्र सबके लिए समान अवसरों से भरपूर एक वास्तविकता बने?

2007 में मैंने "लम्बे दौर के लिए एथलीट–विकास'' हेतु मॉडल पर आधारित शोध–पत्र प्रस्तुत किया था जिसमें

बाल–विकास बनाम एथलीट का कौशल–विकास सम्बन्धी कई पक्षों को सम्बोधित किया गया था। इसमें मैंने तीन बुनियादी क्षेत्रों पर सवाल उठाए थे जो मेरे विचार से एथलीट–विकास के लिए किसी भी सफल योजना हेतु आधारभूत कदम हैं।

हम तीन साधारण प्रश्नों से शुरुआत करते हैं :

- हमारी रुचि क्या केवल इसमें है कि एक या दो प्रदर्शनों से अत्यधिक लाभ ले लिया जाए या खेलकूद और अभ्यास के लिए जीवनपर्यन्त प्रतिबद्धता को बढ़ावा देने में है?
- हमारी दिलचस्पी प्रशिक्षण और उससे प्राप्त लाभ को बढ़ाने में है या हम सामान्य जैविक विकास और परिपक्वता की प्रक्रिया के इच्छुक हैं?
- दोषरहित और सम्पूर्णता से लैस एथलीट–केन्द्रित विकास मॉडल मनोरंजन या दिल बहलावे को ध्यान में रखने वाला होता है या प्रतिस्पर्धा–आधारित होता है?

यह याद रखना महत्वपूर्ण है कि दक्षता से लागू की गई सुनियोजित प्रशिक्षण पद्धति एक एथलीट के लिए उसके पूरे करियर के दौरान एक उचित, अनुकूल स्तर का विकास सुनिश्चित करती है। सफलता लम्बी अवधि के परिणाम सुनिश्चित करने के लिए बनाई गई योजना का परिणाम होती है (न कि अल्प अवधि की सन्तुष्टि के लिए)।

मूल बात यह है कि सफलता तक पहुँचने का कोई छोटा रास्ता नहीं होता!

मैलकम ग्लैडवेल की पुस्तक 'आउटलायर्स' में लेखक उत्कृष्टता की भविष्यवाणी के लिए 10,000 घण्टों के अभ्यास का नियम प्रतिपादित करते हैं। वे बताते हैं कि विश्वस्तरीय खिलाड़ी अपनी क्षमता और पहुँच से कुछ आगे तक के लक्ष्य अपने लिए निर्धारित करते हैं, लेकिन वे उस अन्तर को पाटने के लिए कुछ अतिरिक्त जागरूकता और ज्ञान भी रखते हैं। समय बीतने के साथ–साथ लगातार दोहराव की प्रक्रिया के तहत यह अन्तर धीरे–धीरे समाप्त होता चला जाता है और फिर नए लक्ष्य निर्धारित किए जाते हैं – कई बार ये एक साधारण इन्सान की समझ से परे होते हैं।

ग्लैडवेल के सिद्धान्त के साथ समस्या यह है कि वह

अभ्यास की गुणवत्ता को सम्बोधित नहीं करता जबकि शरीर–क्रियाओं के सन्दर्भ में यह प्रदर्शन में बेहतरी के लिए बहुत आवश्यक है। सच तो यह है कि एक चैम्पियन का निश्चित उद्देश्य केवल एक होता है – प्रगति और विकास। वह अपने समय का हर पल – दिन के प्रत्येक घण्टे का प्रत्येक मिनट और सैकेण्ड – इस एकमात्र उद्देश्य के लिए समर्पित करता है। श्रेष्ठता हासिल करने के लिए उसे स्वयं को अपनी कल्पना की हदों से भी आगे तक धकेलना होता है। वह स्वयं के लिए अत्यन्त कठिन और दुष्कर चुनौतियाँ पैदा करता है और प्रत्येक प्रशिक्षण–सत्र के बाद उसका वास्तव में एक भिन्न, अधिक विकसित व्यक्तित्व उभर कर सामने आता है।

इसलिए मेरा मानना है कि उत्कृष्टता ग्लैडवेल के 10,000 घण्टों के अभ्यास के बजाय उद्देश्यपूर्ण अभ्यास के 10,000 घण्टों के नतीजे में हासिल होती है। लेकिन जैसा कि अधिकतर गोपनीय नुस्खों में भी होता है, उद्देश्यपूर्ण अभ्यास तो बस केवल एक अंश है। सही मायनों में उत्कृष्टता हासिल करने के लिए हमें सही प्रशिक्षण पद्धति की भी आवश्यकता है। यही अनुकूलतम प्रदर्शन के लिए सही स्थितियाँ प्रदान करती है। सही स्थितियाँ बन जाती हैं तो सीखने की शुरुआत होती है, ज्ञान में वृद्धि होती है और प्रदर्शन भी ऊँचाइयाँ छूने लगते हैं।

इस सबको ध्यान में रखते हुए हम सबसे चुनौतीपूर्ण प्रश्न से सम्बोधित हो सकते हैं: सम्पूर्ण तौर पर दोषरहित प्रशिक्षण पद्धति क्या है?

ऐसी प्रशिक्षण पद्धति पाँच चरणों की प्रणाली है जिसमें बच्चे की सीखने की मानसिक क्षमता और उसके तन्त्रिका–प्रेरक कौशलों के विकास का मिश्रण रहता है। आइए हम इस मॉडल पर नजर डालते हैं।

विकास और उन्नति के तीन चरण इस प्रकार हैं –

- बुनियादी चरण – 5 से 11 वर्षों के मध्य
- तैयारी चरण – 11 से 16 वर्षों के मध्य

प्रदर्शन चरण 16 + वर्ष

इन तीन चरणों को सीखने की पाँच अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है:

- अवस्था 1 – मौलिक सिद्धान्त, 5 से 9 वर्ष।

इस अवस्था में बच्चे के सम्पूर्ण विकास, अंग संचालन के मौलिक कौशलों और एथलेटिक्स के ककहरे (फुर्तीलापन, सन्तुलन, समन्वय और गति) पर बल दिया जाता है, और यह खेल और अभ्यास के माध्यम से किया जाता है।

- अवस्था 2 – प्रशिक्षित होना सीखना, 9 से 12 वर्ष।

इस अवस्था में हल्का–फुल्का मनोरंजक माहौल बनाया जाता है और प्रोत्साहित किया जाता है कि नवप्रयोग किए जाएँ और बच्चे फैसले लेना सीखें।

- अवस्था 3 – प्रशिक्षित होने के लिए प्रशिक्षण, 12 से 15 वर्ष।

इस अवस्था में बल इस बात पर रहता है कि एथलीट की उसके खेल के बारे में समझ और तकनीकी दक्षता बढ़े। इस दौर में एथलीट की शारीरिक और मानसिक तैयारी में स्पष्ट अन्तर दिखाई देने लगता है। फैसलों के लिए जवाबदेह होने की बात मन में बैठाए जाने की शुरुआत हो जाती है।

- अवस्था 4 – प्रतिस्पर्द्धा के लिए प्रशिक्षण, 16 से 18 वर्ष।

अब तकनीक और कौशल को सुधारने–तराशने पर ध्यान दिया जाता है। ईमानदारी, निष्पक्ष व्यवहार, नियमों का आदर, निष्ठा और खेल भावना जैसे मूल्यों के महत्व पर बल देना भी अहमियत रखता है।

- अवस्था 5– जीतने के लिए प्रशिक्षण, 18 + वर्ष।

इस चरण में प्रतियोगिता, तैयारी और शारीरिक देखभाल पर ध्यान दिया जाता है। जवाबदेही और उत्तरदायित्व–निर्धारण भी समान रूप से महत्वपूर्ण हैं।

सीखने की अवस्थाओं के अध्ययन के अलावा उन घटकों पर नजर डालना भी उतना ही महत्वपूर्ण है जिनका योगदान एक सम्पूर्ण पेशेवर खिलाड़ी को तैयार करने में रहता है। बच्चे के भीतर छिपी विलक्षण प्रतिभा को पहचानने और उसे बाहर निकाल पाने के लिए उसके

शारीरिक और मानसिक विकास के प्रति समूचापन और सम्पूर्णता लिए हुए दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है। इस दृष्टिकोण के चार पहलू हैं –

- मानसिक बल
- रणनीति और जागरूकता
- तकनीक और शारीरिक स्वास्थ्य
- व्यक्तिगत विकास

एक सम्पूर्ण पेशेवर खिलाड़ी तैयार करने के लिए ये चार आधार स्तम्भ हैं। लेकिन एक और कारक है जिससे बहुत

अन्तर पड़ता है और जो खिलाड़ी को चैम्पियन के रूप में ढालता है। यह वह तत्व है जिसका पोषण करना अधिक कठिन है और परिमाण जानना उससे भी मुश्किल। वह कारक अँग्रेजी भाषा का शब्द HARD है।

HARD वह शक्ति है जो चैम्पियन पैदा करने वाले इन स्तम्भों को एक साथ जोड़ती है। HARD ही सब कुछ है।

H – Hunger (भूख)

A – Attitude, Awareness and Accountability (रवैया या मानसिकता, जागरूकता और दायित्व या जवाबदेही)

R – Resilience (लचीलापन)

D – Discipline (अनुशासन)

"अपने जीवन में आप जो कुछ भी हासिल करना चाहते हैं वह आपके सुख–आराम के क्षेत्र से बस थोड़ा सा बाहर है।"

HARD मेरा दर्शन है, मेरा वह सन्देश जो मैं अपने खिलाड़ियों को देने का प्रयास करता हूँ। यह हमें याद दिलाता है कि अपने भाग्य के निर्माता हम स्वयं हैं और हमारा रवैया, हमारी मानसिकता ही सब कुछ है। यह वह सन्देश है जो एक खिलाड़ी में कठिन परिस्थिति से बाहर निकलने की इच्छा को बार–बार मजबूत करता है, जिसे वह अपने लिए बारम्बार दोहराता है। यह हमें बताता है कि जिन मौकों को हासिल करने के लिए हम व्याकुल होते हैं, वे कठिन परिश्रम का भेस बदलकर आते हैं। यह हमें बताता है कि वह सब जो आप चाहते हैं, वह सब जिसे हासिल करने की इच्छा रखते हैं, और वह सब जो आप हासिल कर सकते हैं, आपकी सुविधा या आराम के दायरे से बस थोड़ा बाहर स्थित है। यह हमें कहता है – बस जाओ और उसे हासिल कर लो।

*इस धरती पर आपकी अपनी व्यक्तिगत इच्छा से अधिक ताकतवर शक्ति और कोई नहीं है। इसलिए आप यदि कुछ, कुछ भी अपनी सम्पूर्ण इच्छा से करना चाहते हैं, तो अपना रास्ता निकाल लें। यदि आप ऐसा नहीं करते तो आप कोई न कोई बहाना ढूँढ़ निकालेंगे। –* ***पैट फार्मर***

खेलों में किसी भी राष्ट्र को एकजुट करने और उसके नैतिक तन्त्र में बदलाव लाने की शक्ति होती है। परन्तु इससे भी अधिक, इसमें किसी भी राष्ट्र को अपना स्वप्न पूरा करने के लिए प्रोत्साहित और प्रेरित करने की ताकत है – सपना पूरा करने का वह अधिकार जो प्रत्येक नागरिक के पास होता है।

इस प्रकार, मेरे विचार से पाठ्यचर्या में खेलकूद पर कोई समझौता नहीं किया जा सकता। यह अपने बच्चों के प्रति प्रत्येक देश का कर्तव्य है, क्योंकि जो ताकत इसमें है, उसे धन के नजरिए से नहीं आंका जा सकता।

आइए, प्रत्येक बच्चे को यह मौका दें!

***श्यामल*** *एक खेल विज्ञानी, उद्यमी और प्राध्यापक हैं। वे संसार के कुछ सर्वश्रेष्ठ एथलीटों के साथ काम कर चुके हैं। इस क्षेत्र में उन्हें 10 वर्षों से अधिक का अनुभव है। इस दौरान उन्हें डेविस कप की तथा भारत और दक्षिण अफ्रीका की क्रिकेट टीमों के साथ काम करने के अवसर हासिल हुए हैं। वर्तमान में वे ए.टी.पी. सर्किट के अनेक चोटी के खिलाड़ियों के साथ कार्य कर रहे हैं। श्यामल ज्ञान और अनुभव का संगम हैं। उनके पास खेल–विज्ञान में डिग्री, अभ्यास विज्ञान में स्नातकोत्तर डिग्री और खेल प्रबन्धन में डिप्लोमा है। आप एथलीटों के प्रदर्शन–सुधार में कार्यरत संगठन डिजी स्पोर्टस में निदेशक हैं और लड़कियों के लिए ओप्रा विन्फ्री लीडरशिप अकैडमी में अभ्यास सलाहकार हैं। श्यामल ने लेखक के रूप में खेल विज्ञान और क्रिकेट में दवाएँ विषयों पर दो पुस्तकें स्वयं प्रकाशित की हैं। विशेष एथलीटों के प्रशिक्षक ही नहीं, श्यामल लम्बी दौड़ के धावक भी हैं। उन्होंने 9 मैराथन दौड़ों में भाग लिया है और 2007 में कॉमरेड्स मैराथन में कांस्य पदक जीता है।*

# 12 खेलने दो!

काजल अडवाणी

जब लोग मुझसे पूछते हैं कि क्या आज से दस बरस पहले मैं यह जानती थी कि मेरा बेटा पंकज अडवाणी स्नूकर और बिलियर्ड्स का विश्व चैम्पियन बनेगा, तो मैं कहती हूँ, ''नहीं, जानती तो मैं नहीं थी, लेकिन मुझे विश्वास था कि वह बन सकता है।''

दशक बाद की तो क्या बात करें, कल क्या होगा, यह भी कोई नहीं जानता। लेकिन दस साल का एक बच्चा जब किसी खेल को अपना लेता है, जैसे कि पंकज ने स्नूकर को अपनाया था, तब आपको उसे वह खेल खेलने के लिए समुचित आजादी, अवसर और समय देना ही चाहिए। लेकिन पहले जरा मुझे अपने अतीत में थोड़ा और पीछे जाने दीजिए ताकि मैं आपको बेहतर ढंग से यह बता सकूँ कि स्नूकर हमारे जीवन में दाखिल होता, उसके पहले हमारा जीवन कैसा था!

जब 1990 का खाड़ी युद्ध हमारे जीवन में हलचल मचाता हुआ आया तो मेरे पति अर्जन, बड़ा बेटा श्री, पंकज और मैं, बड़े मजे में अपना जीवन कुवैत में बिता रहे थे। अमेरिका में अपनी छुट्टियाँ मनाने के बाद, कुवैत पर ईराकी हमले के चलते हम लोग कुवैत नहीं लौट पा रहे थे। सो हम अपने वतन लौटे और बंगलौर में टिक गए – यह सोचकर कि जल्द ही एक दिन हम कुवैत वापस जा सकेंगे और वहीं पर अपनी जीवन नैया फिर से आगे बढ़ा पाएँगे।

वह दिन आया, कुवैत ने बुलाया और मेरे पति वापस वहाँ गए भी। लेकिन वे शायद शिकार हो गए 'गल्फ वॉर सिण्ड्रोम' के, जो सम्भवतः तेल के कुओं को जलाए जाने और युद्ध में रासायनिक शस्त्रों के इस्तेमाल के चलते अस्तित्व में आया था। तीन महीने बाद वे बंगलौर आए और आने के कोई एक महीना बाद, 10 मार्च 1992 को चल बसे।

लेकिन जीवन चलने का नाम है। उस समय श्री चौदह बरस का था और पंकज ने तो सात भी पूरे नहीं किए थे। कुवैत में मैं नौकरी करती थी लेकिन अब मैंने पूर्णकालिक गृहिणी–माँ बनने का निश्चय किया, क्योंकि मैं जानती थी कि दो बढ़ते बेटों की इकलौती अभिभावक होना कतई आसान होने वाला नहीं था। यह तो अच्छा हुआ कि मेरी माँ आ गईं हमारे साथ रहने। हमारा जीवन सादा मगर आरामदायक था। मेरे पति के कुवैती पार्टनर ने बिजनेस का सारा पैसा हड़प लिया था, लेकिन भारत में की हुई बचत के चलते हमारा गुजर–बसर हो ही जाता था।

पंकज जब दस बरस का था, वह श्री के साथ हमारे घर से थोड़ी दूर ही एक स्नूकर पार्लर जाने लगा। शुरू–शुरू में तो वह बस श्री को अपने दोस्तों के साथ खेलते देखता। फिर कुछ हफ्तों के बाद पंकज ने अपना हाथ आजमा देखने की चिरौरी की। पहली ही बार में उसने लाल गेंद को 'गुल्लक' में डाल दिया। बस वहीं से शुरू हुई छड़–खेलों के साथ हमारे पंकज की लव स्टोरी।

शुरू में मुझे लगता, ''खेल ही तो है, और अगर खेलना उसे खुशी देता है तो क्या बुरा है? सो उसे खुश रहने दिया जाए।'' लेकिन उसकी दीवानगी का अहसास तो मुझे उस वक्त हुआ जब उसने घर पर अपने कैरम बोर्ड पर स्नूकर खेलना शुरू किया। गेंद की जगह वह कंचे इस्तेमाल करता और छड़ी की जगह चॉपस्टिक। मेरे हिसाब से पंकज के जीवन में मोड़ तब आया जब उसने अपनी सालाना छुट्टियों के दौरान पहले से तयशुदा कार्यक्रम के मुताबिक मुम्बई न जाकर कर्नाटक राज्य बिलियर्डस् एसोसिएशन (के.एस.बी.ए.) द्वारा आयोजित स्नूकर और बिलियर्डस् कोचिंग कैम्प में भाग लेना तय किया। उसने दो लगातार कैम्पों के लिए अपना नाम लिखवाया, जिसमें उसकी छह सप्ताह लम्बी छुट्टियाँ तमाम हुईं। सुबह से लेकर रात तक वह वहीं के.एस. बी.ए. में रहता। रात में मैं ऑटो में बैठ उसे लिवाने जाती। बिलियर्डस् और स्नूकर के अलावा उसे कुछ सूझता ही नहीं था। मैं तहेदिल से के.एस.बी.ए. प्रबन्धन की आभारी हूँ जिसने 11 साल के एक बच्चे को अपनी टेलेण्ट कैटेगरी मेम्बरशिप प्रदान की। इसी का नतीजा था कि 250/– रु. के अल्प मासिक भुगतान के बदले वह हर दिन जितना चाहे उतना खेल सकता था, वह भी बिलियर्डस् टेबलों पर। हमारे लिए यह एक बड़ा वरदान था क्योंकि उसके बार–बार स्नूकर पार्लर जाने से मेरा

बजट तो डगमगाने लगा था।

मैंने पंकज को कभी खेलने से मना नहीं किया, लेकिन एक वादा मैंने उससे जरूर ले लिया था कि वह अपनी पढ़ाई की अनदेखी कभी नहीं करेगा। और इसका तमाम श्रेय मैं द फ्रैंक एन्टनी पब्लिक स्कूल के प्राचार्य मि. ब्राउन को देती हूँ जिन्होंने पंकज का साथ पूरी तरह से दिया और मुझे आश्वस्त भी किया कि खिलाड़ी अपने अनुशासन और अपनी एकाग्रता के चलते बेहतर विद्यार्थी होते हैं। चूँकि एक खिलाड़ी को पता होता है कि इतना समय उसे अपने खेल को देना पड़ेगा। वह अपनी कक्षा में बड़ा ध्यानमग्न होकर बैठता है ताकि उस वक्त पढ़ाई जा रही हर बात को वह पूरी तरह से जज्ब कर ले, बाद में तो वैसे भी उसे पढ़ाई के लिए समय नहीं मिलने वाला। (आगे चलकर, स्कूल के अपने अन्तिम वर्ष में पंकज अपने बड़े भाई श्री के नक्श–ए–कदम पर चलते हुए अपने स्कूल का प्रधान छात्र – हेड बॉय – बना)।

तो अगर आपका बच्चा एक अच्छा विद्यार्थी है, और एक अच्छा खिलाड़ी बनने की ओर अग्रसर है तो आप क्यों न उसे अपना शौक पूरा करने दें? पंकज जब 11 साल 7 महीने का था, तब फाइनल में अपने बड़े भाई को हराकर उसने प्रदेश स्तर का अपना पहला बड़ा खिताब जीता था। प्रेस के साथ अपने पहले ही साक्षात्कार में जब उससे यह पूछा गया कि वह क्या बनना

चाहता है, तो उसने जवाब दिया, ''एक दिन मैं विश्व चैम्पियन बनना चाहूँगा।'' मासूमियत भरा जवाब था यह। जिसने भी वह इण्टरव्यू पढ़ा, उसके भोलेपन पर हँस पड़ा। मैं भी हँसी। पंकज तो खैर अपना यह इण्टरव्यू भूलभाल कर बदस्तूर अपनी जिन्दगी जीता रहा – स्कूल जाना, होमवर्क निपटाना, झटपट के.एस. बी.ए. पहुँचना, थकान से चूर पर खुशी और सन्तोष से भरपूर घर लौटना।

इसके बाद, पंकज के जीवन में श्री अरविन्द सवूर आए। वे दुनिया के सर्वश्रेष्ठ स्नूकर कोच हैं और पंकज में

*पिछले सात सालों में, पंकज ने 7 विश्व खिताब, एशियाई खेलों के दो स्वर्ण पदक, चार एशियाई बिलियड़्र्स टाइटल और ऑस्ट्रेलियाई ओपन खिताब जीता है। उसे अर्जुन पुरस्कार, राजीव गाँधी खेल रत्न और पद्म श्री से नवाजा गया है। अपनी नादान से नादान कल्पना में भी मैंने कभी ऐसा न सोचा होगा।*

योग्यता देख उन्होंने उसे अपने घर की स्नूकर टेबल पर निशुल्क प्रशिक्षण देना शुरू कर दिया। देखते ही देखते पंकज, सवूर परिवार का एक हिस्सा बन गया और अरविन्द उसके पिता–समान।

पंकज के जीवन में भाग्य की बड़ी भूमिका रही। पहले तो उसके स्कूल और फिर उसके कॉलेज (महावीर जैन कॉलेज) ने उसे भरपूर समर्थन और छात्रवृत्तियाँ दीं। जैन ग्रुप के अध्यक्ष श्री चैनराज जैन जब भी पंकज को कॉलेज में देखते तो कहते, ''तुम यहाँ क्या कर रहे हो? जाओ भई, जाकर प्रैक्टिस करो अपनी!'' परीक्षा के कोई एक महीना पहले खिलाड़ियों के लिए विशेष कक्षाएँ लगाई जातीं – बस केवल उन्हीं दिनों ही पंकज अपने कॉलेज गया होगा।

पंकज ने अपना पहला विश्व पुरुष स्नूकर खिताब अठारह साल की उम्र में चीन में जीता। उसके जीतने की उम्मीद उसे और उसके कोच के अलावा किसी को भी नहीं थी। तब मुझे याद आया कि पंकज जब सिर्फ 14 बरस का था तो श्री सवूर ने मेरे धन्यवाद के जवाब में कहा था, ''वह दिन बस जल्द ही आएगा जब मैं आपका शुक्रिया अदा करूँगा कि आपने मुझे उसका कोच बनने की इजाजत दी, क्योंकि एक दिन वह विश्व चैम्पियन बनने वाला है।''

पिछले सात सालों में, पंकज ने 7 विश्व खिताब, एशियाई खेलों के दो स्वर्ण पदक, चार एशियाई बिलियर्डस् टाइटल और ऑस्ट्रेलियाई ओपन खिताब जीता है। उसे अर्जुन पुरस्कार, राजीव गाँधी खेल रत्न और पद्म श्री से नवाजा गया है। अपनी नादान से नादान कल्पना में

भी मैंने कभी ऐसा न सोचा होगा।

लेकिन यहाँ अभिभावकों को इतना तो चेताना होगा कि कोई चाहे कितना भी सफल खिलाड़ी क्यों न हो, उसके जीवन में हमेशा ही सब कुछ ठीक–ठाक नहीं होता। पहले पहल तो उसके खेल में कुछ ऐसे भी 'खिलाड़ी' होते हैं जो सफलता की सीढ़ी पर उसका ऊपर चढ़ना नहीं देख सकते और सारा समय उसे नीचे गिराने में ही लगे रहते हैं। इसके अलावा, हर खेल की तुलना, अन्य खेलों – भारत के मामले में क्रिकेट – के साथ होने लगती है। भारत में, क्रिकेट से अलग दूसरे किसी भी खेल का एक खिलाड़ी जब यह देखता है कि वह दस साल के अपने पूरे खेल जीवन में भी इतना नहीं कमा सकता जितना कि एक क्रिकेटर 45 दिन के आई.पी.एल. में कमा लेता है, तो वह निराश हो जाता है। हमें हर हाल अपने बच्चों का हौसला बनाए रखना होगा, फिर चाहे हमारे अपने अन्दर क्या कुछ न उमड़–घुमड़ रहा हो। सिर्फ पैसा ही नहीं, मीडिया, कॉर्पोरेट जगत, और अन्य लोग भी क्रिकेट और क्रिकेटेतर खेलों के बीच बहुत भेदभाव करते हैं।

जोश बुझने लगता है, लेकिन हमें इसकी लौ जलाए रखनी होगी। मुझे लगता है मेरा बेटा पैदा ही स्नूकर और बिलियर्डस् खेलने के लिए हुआ था। अगर उसे यह सब बीच में ही छोड़ना पड़ता तो बड़ा रंज होता। और मैं उसे यही कहती हूँ।

परीक्षा में जब उसके 90 प्रतिशत अंक नहीं बने तो मैंने जरा भी परवाह नहीं की। अपनी बारहवीं की परीक्षा में उसने 80 प्रतिशत और बी.कॉम में 75 प्रतिशत अंक पाए। मेरे लिए उसके इतने ही अंक काफी थे। उसे अगर इससे भी कम अंक मिलते, तो भी मैं खुश रहती। मुझे यह बात भी सताती कि वह करोड़ों में नहीं कमाता। जिन्दगी में पैसा ही सब कुछ नहीं है। हमें अपनी प्राथमिकताएँ तो तय करनी ही होंगी। खिलाड़ी के लिए खेल ही सबसे ऊपर होना चाहिए।

उन्नीस साल का था और अभी कॉलेज में पढ़ ही रहा था, जब पंकज को ओ.एन.जी.सी. ने अपने यहाँ एच.आर. एक्जेक्टिव की नौकरी दी। अपने विश्व खिताबों के चलते पाँच साल में उसे तीन पदोन्नतियाँ मिलीं। नौकरी में उसे किसी को रिपोर्ट नहीं करना होता, सो अपने खेल के लिए उसके पास पर्याप्त समय होता है। मेरा बड़ा बेटा श्री वैसे तो एक राष्ट्रीय स्तर का बिलियर्डस् खिलाड़ी था, लेकिन अपनी स्नातकोत्तर स्तर की पढ़ाई उसने ऑस्ट्रेलिया से करने की ठानी। वहाँ जाकर उसे अच्छा तो लगा, मगर उसे लगा कि उसके भाई को उसकी जरूरत है, सो छह साल वहाँ रहने के बाद वह बंगलौर लौट आया। श्री अब खेल मनोविज्ञान

*एक बच्चे को उसके माँ–बाप से बेहतर कोई नहीं जान सकता। माँ या पिता किसी चीज में अपने बच्चे की सामान्य रुचि और दीवानगी में भेद कर सकते हैं। यदि एक बच्चे को किसी खेल, या पेन्टिंग या गायन जैसी किसी कला का शौक है तो आप उसे अपना वह शौक पूरा करने दें। माँ–बाप हमेशा यही क्यों सोचते हैं कि अगर उनके बच्चे अपना शौक पूरा करते हैं तो उनकी 'पढ़ाई पर असर पड़ेगा'?*

में विशेषज्ञता के साथ मनोविज्ञान में पीएच.डी. कर रहा है। खेल शायद उन दोनों की रग–रग में हैं। वह तो पहले से ही कई खिलाड़ियों को मानसिक–प्रशिक्षण देता रहा है, और उसका छोटा भाई पंकज उसका सबसे प्रिय विद्यार्थी है।

पंकज की सफलता का बहुत सारा श्रेय श्री के प्रशिक्षण को और इस बात को जाता है कि श्री उसके लिए हर वक्त उपलब्ध है।

क्या माता–पिता अपने बच्चों को अपने शौक पूरा करने की छूट दें या अधिक व्यावहारिक बनकर अपने बच्चों के लिए वह रास्ता चुनें जिस पर चलकर वे अधिक पैसा कमा सकते हैं? मूलतः हम भारतीय बहुत असुरक्षित कौम हैं, इसलिए कोई भी निर्णय लेते समय हम उसमें 100 प्रतिशत सुरक्षा ढूँढ़ते हैं। हम सामाजिक सुरक्षा चाहते हैं, सामाजिक मानकों की चिन्ता करते हैं (लोग क्या कहेंगे या सोचेंगे, यह हमारे लिए जीवन–मरण का सवाल–सा बन जाता है)। हमें धन की सुरक्षा भी चाहिए – सो हमारा लक्ष्य हमेशा पहले से आजमाई हुई नौकरियाँ करना रहता है (फिर चाहे हमारा मन उनमें लगे या न लगे)। हम मानसिक तौर पर भी सुरक्षित रहना चाहते हैं – एक बार अपना मन बना लिया तो किसी को भी

हमसे तर्क करने की इजाजत नहीं होनी चाहिए।

एक बच्चे को उसके माँ–बाप से बेहतर कोई नहीं जान सकता। माँ या पिता किसी चीज में अपने बच्चे की सामान्य रुचि और दीवानगी में भेद कर सकते हैं। यदि एक बच्चे को किसी खेल, या पेन्टिग या गायन जैसी किसी कला का शौक है तो आप उसे अपना वह शौक पूरा करने दें। माँ–बाप हमेशा यही क्यों सोचते हैं कि अगर उनके बच्चे अपना शौक पूरा करते हैं तो उनकी 'पढ़ाई पर असर पड़ेगा'? अकादमिक–शैक्षिक सन्दर्भ पृष्ठभूमि का काम कर सकता है; मुख्य अदाकार तो बच्चा ही होगा, इसलिए कहानी भी बच्चे और उसकी दीवानगी की ही होनी चाहिए।

हर इन्सान के लिए एक दिन में 24 घण्टे होते हैं। हमारे प्रधानमन्त्री के पास भी वही 24 घण्टे हैं जो हमारे पास हैं। अब यदि वह इन चौबीस घण्टों में भारत जैसा विशाल और विविधतापूर्ण देश चला सकते हैं तो हमारे बच्चे क्या अपने दो काम – पढ़ाई और खेल – भी नहीं कर सकते? देखा जाए तो खेलों से हमें बहुत कुछ मिलता है – हमारा चरित्र–निर्माण होता है, हम अनुशासित होते हैं, हमारी एकाग्रता और हमारी आध्यात्मिकता बढ़ती है। हमें खेलों को केवल उनके भौतिक रूप में नहीं देखना चाहिए गोया वे केवल बल्ले/रैकेट/छड़ी और गेंद से खेले जाते हों। खेलों को हमें उनके समग्र रूप में देखना चाहिए। मेरे बेटों से मैंने यही सब सीखा है और उन्हें पाकर मैं धन्य महसूस करती हूँ।

चलिए हम अपने बच्चों को उनके अपने (न कि हमारे) सपने पूरे करने दें। हम उन्हें अपने जीवन रूपी नाटक का केन्द्रीय पात्र बनने दें। बात यह नहीं है कि हमें अपने माता–पिता से ऐसा कोई अवसर मिला या नहीं। यदि मिला तो यही मौका है उसे आगे तक पहुँचाने का। और यदि नहीं मिला तब तो और भी वजनी वजह बनती है बच्चों को अपना शौक पूरा करने देने की। उड़ने को जब वे तत्पर हों, उनकी उस उड़ान में हम अपने बच्चों की मदद करें!

उन्हें खेलने दें, उन्हें उड़ने दें!

***काजल अडवाणी*** *बिलियर्डस चैम्पियन पंकज अडवाणी की माँ हैं।*

# 13 खेलों से समता : चुनौतियाँ और सम्भावना

इन्दुमति एस.

**भा**रत में खेल–शिक्षा के उद्देश्यों में से एक उद्देश्य ऐसी दक्षताएँ प्रदान करने का है जो स्कूल, घर और समुदाय में मनो–सामाजिक मसलों से निपटने में मदद करें। इसका अर्थ क्या है? खेल हममें कई तरह की व्यक्तिगत और सामाजिक क्षमताओं को प्रभावित करते हैं, जैसे आत्मविश्वास, अनुशासन, दैहिक सजगता, नियम–पालन, निष्पक्षता, भावनाओं से निर्वाह, परस्पर–आदरभाव से रहना सीखना, हार–जीत से दो–चार होना, टीमवर्क, और संवाद तथा सम्प्रेषण की दक्षताएँ। इस प्रकार खेल समाजीकरण की प्रक्रिया के तौर पर अहम भूमिका निभाते हैं, इनसे हम सामाजिक मूल्य सीखते हैं। इनसे कुछ सामाजिक दक्षताएँ हासिल करने में भी मदद मिलती है। संयुक्त राष्ट्र संघ के भूतपूर्व महासचिव कोफी अन्नान खेल को एक ऐसी भाषा मानते हैं जिसे सब समझते हैं, जो लोगों को एक–दूसरे के करीब ला सकती है, जो शान्ति लाने के तमाम प्रयासों में मददगार हो सकती है, और जिससे सहस्राब्दी विकास–लक्ष्यों की प्राप्ति के हमारे उपक्रम को मदद मिल सकती है।[1] खेलों में सरहदें लाँघ जाने की ताकत होती है। तो क्या भारत में हम खेलों के जरिए वर्ग, जाति, लिंग सम्बन्धी अपने आपसी भेदों को पाटकर एक समावेशी माहौल का निर्माण कर सकते हैं?

हमारे स्कूलों में कुछ परिस्थितियाँ आम हैं, जैसे शारीरिक शिक्षा के पीरियड में लड़कियों का किसी पेड़ के नीचे बैठे रहना; शारीरिक तौर पर चुनौती का सामना कर रहे बच्चों का कक्षा में ही रुके रहना; लड़कियों का खेल के मैदान की सीमा–रेखा के पास खड़े रहना और मैदान में खेल रहे लड़कों की हौसला–अफजाई करना; मोटे, अत्यधिक वजन के और शारीरिक रूप से अलग बच्चों के हिस्से में अम्पायर या स्कोरर का काम आना। उपरोक्त उदाहरणों से पता चलता है कि हमारे देश में खेलने का मौका कुछ चुनिंदा बच्चों को ही मिल पाता है।

चौदह साल की एक लड़की कहती है, ''मुझे बास्केटबॉल पसन्द है, मैंने अपनी स्कूल टीम का प्रतिनिधित्व किया है, लेकिन अब मैंने खेलना छोड़ दिया है क्योंकि प्रैक्टिस के लिए शाम के छह–साढ़े छह बजे तक रुकना पड़ता है, जिसकी इजाजत मेरे माता–पिता मुझे नहीं देते।'' ऐसा ही किस्सा किसी और लड़की का भी था। वह एक उम्दा एथलीट थी और अण्डर–13 में प्रदेश के स्तर तक खेल चुकी थी। उसने बहुत से पुरस्कार जीते लेकिन

यौवनारम्भ होते ही उसने खेलना छोड़ दिया क्योंकि इसके लिए सप्ताह के अन्त में और स्कूल के बाद पुरुष ट्रेनर के साथ अभ्यास करना पड़ता था। प्रतियोगिताओं में भाग लेने के लिए अपने ट्रेनर या कोच के साथ दूसरे शहरों की यात्रा करनी पड़ती थी। लड़कियों के लिए एक खास उम्र (यानी यौवन शुरू हो जाने) के बाद खेल–प्रतियोगिताओं आदि में भाग लेना वर्जित माना जाता है। कई माता–पिता अपनी बेटियों के लिए खेल को एक उपयुक्त करिअर नहीं मानते। उनकी मान्यताएँ

महिलाओं की भूमिका को लेकर उनके संस्कारों पर टिकी होती हैं। मैं जिस स्कूल में पढ़ाती थी, वहाँ हमने फुटबॉल की एक मिली–जुली टीम बनाने की कोशिश की। पर लड़कों को अपनी टीम में लड़कियों का होना जमता नहीं था; वे सोचते थे कि लड़कियों के होने से उनकी टीम कमजोर पड़ जाएगी। इस वजह से बहुत कम लड़कियों ने ही मैदान में आने में रुचि दिखाई। 15 मिनट की दौड़ा–दौड़ी के बाद सुस्ताने के लिए बैठ जाना लड़कियों के लिए आम था। धीरे–धीरे करके हमारी उस मिली–जुली टीम में एक–दो लड़कियाँ ही रह गईं। जो लड़की खूब मजे ले–ले कर फुटबॉल खेला करती थी, उसे लड़कों जैसा समझा जाता था और बाकी लड़कियाँ उससे कन्नी काट कर रहती थीं।

जेण्डर के मुद्दे से निपटने के बाद आइए अब एक और महत्वपूर्ण कारक, वर्ग की बात करें। गरीब परिवार का एक लड़का क्रिकेट खेलने में उस्ताद था। वह स्कूल टीम के लिए चुन लिया गया। लेकिन अपने लिए खेल के जूते और किट खरीदने के लिए उसके पास पैसे नहीं थे। उसकी माँ को लगता था कि जो समय वह क्रिकेट खेलने में गंवाता है, वह उसे पीने का पानी लाने के लिए हाथ बँटाने में खर्च करना चाहिए। यानी खेलकूद तभी हो जब सब बुनियादी जरूरतें पूरी हो जाएँ। बहुत लोगों के लिए खेल एक महँगा शौक हो सकता है और उनके लिए खेल पाना फुर्सत मिलने पर ही सम्भव हो पाता है। ठीक यही बात शारीरिक तौर पर अलग सक्षमता के लोगों पर भी लागू होती है। भेदभावमूलक प्रवृत्ति और व्यवहार खेलों में भी चले आते हैं और इनके जरिए लगातार बने रहते हैं। आमतौर पर स्कूली खेलों में शारीरिक रूप से असमर्थ बच्चों की अनदेखी होती रही है। या तो उन्हें कक्षा में ही बैठे रहने की हिदायत दी जाती है या फिर वे मैदान के बाहर बैठे–बैठे ही अपने दोस्तों को क्रिकेट या फुटबॉल खेलते हुए देखते रहते हैं।

उपरोक्त उदाहरणों से यह तो साफ है कि जहाँ एक ओर खेल प्रत्येक को शामिल होने का बराबर मौका दे सकते हैं, समावेशी होते हैं, वहीं दूसरी ओर स्कूलों के कई बच्चे इस पूरी प्रक्रिया से बाहर ही रहते हैं।

अनुसन्धान भी यही दर्शाते हैं कि बात चाहे भागीदारी की हो या उपलब्धि की, वर्ग, जाति और जेण्डर की असमानताएँ खेलों में भी अपनी भूमिका निभाती हैं। समावेश की चुनौतियाँ और सीमाएँ इन कारणों से हैं :

क) सामाजिक–आर्थिक / सांस्कृतिक बाधाएँ : कई खेल तो उच्च वर्ग के बच्चों के अलग से विशेषाधिकार होते हैं क्योंकि उन्हीं के पास खेलने और कोई शारीरिक गतिविधि करने का पर्याप्त समय होता है। जहाँ तक महिलाओं का सवाल है, उत्पादन और प्रजनन में उनकी भूमिका सम्बन्धी प्रचलित धारणाएँ उन्हें घर से बाहर निकलने से रोकती हैं। आमतौर पर लड़कियों के लिए घर से बाहर खेलने जाने की मनाही होती है। सड़क के खेल लड़कों के माने जाते हैं और लड़कियों को चारदीवारी के अन्दर ही खेलने की सलाह दी जाती है।

ख) सुरक्षा सम्बन्धी सरोकार : मैदान के पास चल रहा निर्माण का काम, मलबे, ऊबड़–खाबड़ मैदान और कंटीले तार वगैरह जैसी चीजें बच्चों की सलामती को लेकर चिन्ता का कारण बन सकती हैं। खेल के मैदान पर घटी कोई भी दुर्घटना बच्चों के जीवन को प्रभावित कर सकती है। गरीबों के सन्दर्भ में तो यह और भी ज्यादा जोखिम भरा हो सकता है, क्योंकि वे तो इलाज के लिए पैसों का जुगाड़ भी नहीं कर सकते।

ग) बुनियादी सुविधाएँ : कपड़े बदलने के लिए साफ–सुथरे और ठीक–ठाक कमरे, घर से खेल के मैदान तक की पहुँच और साधन, खासकर महिलाओं और शारीरिक रूप से कमजोर व्यक्तियों के लिए बरसात और भीषण गर्मी के दौरान प्रकाश और अन्य सुविधाओं का होना। ज्यादातर स्कूलों के पास अपना एक ठीक–ठाक सा खेल का मैदान भी नहीं है, और खेल–कूद के सार्वजनिक केन्द्रों में भी इस तरह की सुविधाओं की कमी है।

घ) आदर्श नायकों की कमी : आमतौर पर कोच या ट्रेनर पुरुष ही होते हैं और महिलाओं तथा शारीरिक चुनौती का सामना करने वाले व्यक्तियों का प्रतिनिधित्व तो बहुत ही कम होता है। स्कूल शारीरिक रूप से चुनौती का सामना करने वाले विद्यार्थियों के प्रति तो संवेदनशील हो सकते हैं लेकिन जरूरी नहीं कि उनके पास एक ऐसा ट्रेनर हो जो स्वयं शारीरिक तौर पर अक्षम या कमजोर शिक्षक हो।

ड) खेल–शिक्षा : अब चूँकि अध्यापकों की प्रवृत्ति जल्दी से जल्दी पाठ्यक्रम खत्म करने और छात्रों को परीक्षा के लिए तैयार करने की होती है, इसलिए

शारीरिक शिक्षा एकदम आखिरी प्राथमिकता बन जाती है। खेलों को हमेशा पाठ्येतर गतिविधि माना जाता है। स्कूलों में खेलकूद के संसाधन ही सबसे कम होते हैं। खेलों का उद्देश्य पूरी तरह से भुला दिया जाता है और खेलने के नाम पर छात्र बिना कोच के बस बॉल को इधर–उधर करते रहते हैं। एक खेल, उसका इतिहास, उसके नियम और उसके मकसद के बारे में न तो छात्रों को कोई जानकारी दी जाती है और न ही कभी उनसे इन तमाम मुद्दों पर कोई बातचीत की जाती है।

समावेशी हो पाने की चुनौतियों और सीमाओं के कई कारण हैं, जैसे सामाजिक–आर्थिक/सांस्कृतिक बाधाएँ, आदर्श नायकों की कमी, बुनियादी खेल सुविधाओं का निम्न स्तर, खेलों को अन्य विषयों के साथ जोड़ने की बजाय उन्हें एक पाठ्येतर गतिविधि की तरह बरतना।

सीमाएँ तो कई हैं लेकिन मेरे खयाल से खेलों को और अधिक समावेशी बना पाना और उन्हें सार्थक उद्देश्य के लिए उपयोग में ला पाना सम्भव है।

## खेलों का एकीकरण

शारीरिक शिक्षा को अन्य विषयों के साथ एकीकृत करना, जोड़ना जरूरी है। एकीकृत दृष्टिकोण होगा तो खेल बाकी विषयों से कटे नहीं रह पाएँगे, एक समग्रता और व्यापकता आएगी तथा विद्यार्थी खेलों में भाग लेने की आवश्यकता महसूस करेंगे। और क्योंकि हर किसी में भाग लेने और सीखने की आवश्यकता का अहसास आएगा, अध्यापकों को भी ऐसे तरीके, ऐसी विधियाँ खोजनी पड़ेंगी जिनके चलते खेल और अधिक समावेशी बन पाएँ। खेलकूद को दिन की पढ़ाई खत्म हो जाने के बाद एक पाठ्येतर गतिविधि की तरह बरतने की बजाय इसे अन्य विषयों के साथ एकीकृत किया जाएगा तो आगे चलकर पाठ्यचर्या में इसको उचित स्थान मिल पाने की उम्मीद भी बँधेगी।

## खेल–शिक्षा के प्रति शिक्षा शास्त्रीय दृष्टिकोण

जानते–बूझते, सोचे–समझे तरीके से मिली–जुली टीमें बना कर कोच या प्रशिक्षक महिलाओं की भूमिका से सम्बद्ध प्रचलित जड़–छवियों को तोड़ सकते हैं। वे अपने विद्यार्थियों को खेलों में लड़के और लड़कियों की समान भागीदारी के बारे में शिक्षित कर सकते हैं और जेण्डर–भूमिकाओं के प्रचलित मिथकों पर चर्चा कर सकते हैं। ऐसे खेल चिह्नित किए जाने चाहिए जिनकी प्रकृति समावेशी हो। इस सन्दर्भ से जुड़ने वाले पारम्परिक खेल चिह्नित किए जा सकते हैं और थोड़े–बहुत फेर–बदल के साथ उन्हें इस्तेमाल किया जा सकता है। बदलावों के साथ खेलों को सर्व–समावेशी बनाया जा सकता है। उदाहरण के लिए, पश्चिमी देशों में बैठे–बैठे ही खेला जाने वाला वॉलीबॉल खेल बनाया गया है ताकि शारीरिक चुनौती का सामना कर रहे 'अक्षम' व्यक्ति भी उसमें भाग ले सकें। स्कूल अपने विद्यार्थियों को सिर्फ लोकप्रिय खेलों में ही नहीं, हर किस्म के खेलों में भाग लेने को प्रोत्साहित कर सकते हैं। एक सत्र के लिए किसी एक खेल को रखा जा सकता है, और इस तरह बारी–बारी से हर सत्र में एक नया खेल खेला जा सकता है। इससे सभी छात्रों को सब प्रकार के खेल खेलने का मौका मिलेगा और इसके आधार पर वे अपना पसन्दीदा खेल चुन सकते हैं।

## समग्रता वाला दृष्टिकोण

खेलों में शामिल रहने के लिए परिवार का साथ बहुत जरूरी है। इसलिए खेलों में बच्चों की भागीदारी को लेकर समाज और अभिभावकों के साथ एक सार्थक संवाद करने से मदद मिलेगी। खेलों में लड़कियों की भागीदारी को लेकर समाज में फैली भ्रान्तियों को तोड़ने की दृष्टि से सूचना और शिक्षा अभियान चलाए जा सकते हैं।

## बुनियादी सुविधाएँ और प्रोत्साहन

प्रतिभा को पहचानने और उसे प्रशिक्षण देकर निखारने के लिए हमारे स्कूल सर्वसुलभ स्थान हो सकते हैं। खेल–छात्रवृत्तियों, वंचितों को प्रोत्साहन, और जिला या प्रदेश स्तर की प्रतियोगिताओं में भाग लेने के लिए यात्रा भत्ता देने जैसे उपक्रमों के द्वारा सभी वर्ग, जाति, और जेण्डर के बच्चों को खेलों जैसे एक सार्वजनिक मंच पर लाया जा सकता है। यही नहीं, स्कूलों के परिसर तमाम खेल–सुविधाओं के सुलभ स्थान भी बन सकते हैं। इसके लिए हमारे स्कूलों को अपने यहाँ खेलों की तमाम जरूरी सुविधाओं के निर्माण कार्य के सचेत प्रयास करने होंगे।

## खेल–अनुसन्धान

खेलों में भागीदारी और उपलब्धि, समेकित/एकीकृत खेल

पाठ्यचर्या की कारगरता और ऐसे ही कई विषयों पर अनुसन्धान हो सकता है। मिली–जुली स्कूल टीम जैसी किसी भी पहल का अध्ययन और उसका मूल्यांकन किया जा सकता है। इस तरह के अध्ययनों से खेल–शिक्षा का मार्ग प्रशस्त हो सकता है और समावेशी वातावरण की ओर बढ़ा जा सकेगा। आकांक्षी विद्यार्थियों को खिलाड़ियों की जीवनियों और अन्य ऐसे दस्तावेज आदि के अध्ययन से प्रेरित किया जा सकता है। महिला–खिलाड़ियों और ओलिम्पिक खेलों से इतर अन्य खेलों में उपलब्धि प्राप्त खिलाड़ियों पर पुस्तकों के माध्यम से भी छात्रों को खेलों में हिस्सा लेने के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

पश्चिमी देशों में खेलों के जरिए समता के लिए कामयाब हस्तक्षेप हुए हैं। व्यवस्थाबद्ध समर्थन से निश्चित ही खेल अपनी तमाम सीमाओं को लाँघ समस्त जाति, वर्ग, योग्यता और जेण्डर के बच्चों को खींचकर एक–साथ खेल के मैदान में ला सकते हैं।

**सन्दर्भः**

1. कोफी अन्नान कहते हैं, ''खेल हमारी वह सार्वभौमिक भाषा हैं जो लोगों को एक–दूसरे के करीब ला सकती है, शान्ति लाने के हमारे तमाम प्रयासों को जिससे बल मिल सकता है, और सहस्त्राब्दि विकास लक्ष्यों की प्राप्ति के हमारे उपक्रम को मदद मिल सकती है''। खेलों में वह माद्दा है जो इन्हें सरहदें पार करा जाता है। अब सवाल यह है कि क्या हम भारत में खेल, वर्ग, जाति और जेण्डर की दूरियों को पाट एक सर्व–समावेशी माहौल बना सकते हैं?

मॅरिएन, एम. (2005). प्रमोटिंग जेण्डर इक्विटी थ्रूरू स्पोर्ट (खेल के जरिए लैंगिक–समता को प्रोत्साहित करना)। खेल एवं विकास पर हुए द्वितीय मॅग्लिन्जेन सम्मेलन (स्विट्जरलैण्ड) में प्रस्तुत।

http://www.toolkitsportdevelopment.org/html/resources/67/67094AB4-2046-4ACC-B2EE-EC0C1969B645/06_promoting_gender_equity.pdf,accessed on July 1, 2011.

***इन्दुमति*** *अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के संसाधन केन्द्र (यूनिवर्सिटी रिसोर्स सेन्टर) के अध्ययन और अध्यापन (अकॅडमिक्स एण्ड पेडगॉजी) प्रभाग में काम करती हैं। टाटा इंस्टिट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज से शिक्षा में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त सुश्री इन्दुमति ने अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन से जुड़ने से पहले एक विज्ञान अध्यापक, कन्टेन्ट डॅवलपर और विषय समन्वयक सब्जेक्ट को–ऑर्डिनेटर के तौर पर काम किया है। जेण्डर और शिक्षा, नारीवादी विज्ञान, विज्ञान की प्रकृति, और शिक्षक का पेशेवर विकास जैसे विषयों में उनकी गहरी रुचि है। उनका ई–मेल पता है – s.indumathi@azimpremjifoundation.org*

# 14 घिसे-पिटे, पारम्परिक विचारों का प्रतिरोध

डॉमिनिक विजय

शारीरिक बल की माँग करने वाले खेल में एक स्त्री के उच्च प्रदर्शन या नफासत भरे किसी कलात्मक, सुरुचिपूर्ण खेल में एक पुरुष के विजयी होने पर हम हैरान होते हैं। क्षेत्र और इलाके के हिसाब से भी हम खेलकूद की क्षमताओं को आँकते हैं। उदाहरण के लिए, उत्तर–पूर्वी मूल के एक व्यक्ति को तुरन्त फुटबॉल टीम में रख लिया जाता है, फिर चाहे उसकी दिलचस्पी किसी और खेल में ही क्यों न हो। इसी प्रकार, बहुत कम सम्भावना होगी कि किसी छोटे कद वाले व्यक्ति को बास्केटबॉल टीम के लिए चुन लिया जाए। लेकिन यहाँ इस बात पर ध्यान दिया जाना जरूरी है कि जहाँ कुछ घिसी–पिटी धारणाओं में दम हो सकता है, वहीं कुछ अन्य ऐसी भी होंगी जिनमें कुछ भी दम न हो। यह सही है कि ऊँचे कद वाला व्यक्ति बास्केटबॉल खेलने में बेहतर होता है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि छोटे या साधारण कद वाले खिलाड़ी में अच्छा बास्केटबॉल खेल पाने की दक्षता हो ही नहीं सकती। यदि टीम बनाने की या खेलते समय छँटनी की प्रक्रिया इसी तर्ज पर होगी तो कुछ प्रतिभाशाली और कुशल खिलाड़ी अपना हुनर साबित करने के अवसर से वंचित ही रह जाएँगे।

*एक समूह का हिस्सा बन पाने और उसके द्वारा स्वीकार कर लिए जाने की आवश्यकता समाजीकरण की प्रक्रिया का परम्परागत रूप है, और इसके चलते ही बच्चे अपने लिए कोई 'लिंग विशिष्ट' खेल चुनते हैं।*

एक समूह का हिस्सा बन पाने और उसके द्वारा स्वीकार कर लिए जाने की आवश्यकता समाजीकरण की प्रक्रिया का परम्परागत रूप है, और इसके चलते ही बच्चे अपने लिए कोई 'लिंग विशिष्ट' खेल चुनते हैं। अक्सर यह देखा जाता है कि एक नन्हा बालक रस्सी–कूद करने से डरता है, कि सब उसका मजाक उड़ाएँगे जबकि मेरे हिसाब से रस्सी–कूद, फुटबॉल के खेल से जुड़े कौशल विकसित करने के लिए एक बुनियादी सम्पूर्ण व्यायाम है।

ऐसी घिसी–पिटी पारम्परिक छवियाँ शिक्षकों में सामान्य तौर पर जागरूकता की कमी की वजह से भी बनती हैं। जाने–अनजाने वे बहुत बार खेल और शारीरिक शिक्षा के बारे में इस प्रकार के विचारों और दृष्टिकोणों को बढ़ावा देते हैं। इससे छुटकारा पाने के लिए जरूरी है कि प्रत्येक स्कूल और उसके शारीरिक शिक्षा अध्यापकों के पास 'समावेशी' टीमें हों, और उनके व्यायाम–सत्र भी इसी प्रकृति के हों। प्रशासक यदि खेलकूद और व्यायाम आदि को सबके लिए अनिवार्य कर दें तो विभिन्न परिवेशों से आए और अलग–अलग कौशल–स्तर के बच्चों को अपनी–अपनी पसन्द के खेल के प्रति लगाव विकसित करने का अवसर मिलेगा; और किसी भी बच्चे को रूटीन किस्म की, बहुत ही गिनी–चुनी शारीरिक गतिविधियों में नहीं डाल दिया जाएगा। लेकिन बच्चों की पीठ बस इसलिए थपथपाना ही काफी नहीं है कि वे सभी खेलों में भाग लें। हमें इसके आगे भी जाना होगा।

जेण्डर–रूढ़ियों को तोड़ने जैसे महत्वपूर्ण काम के लिए लड़के और लड़कियों, दोनों के लिए रस्सीकूद जैसे व्यायामों को अनिवार्य कर देना जरूरी होगा। इससे जेण्डर रूढ़ियों के टूटने के साथ–साथ उनमें खेलकूद से जुड़े कौशल भी विकसित हो रहे होंगे। लिंग–मिश्रित टीमें हों तो प्रत्येक बच्चे–बच्ची की खेल–भागीदारी सुनिश्चित होती है। किसी फुटबॉल टीम में लड़की का होना नुकसान की बात नहीं है, बल्कि समता और बराबरी की बात है। जेण्डर सम्बन्धी रूढ़ियों से जूझने और उन्हें तोड़ने के प्रयास का सबसे प्रमुख उदाहरण है भारत की अग्रणी महिला बॉक्सर मैरी कॉम का। उनकी उपलब्धियाँ हम सबकी कल्पनाओं की उड़ान से कहीं अधिक ऊँची है। बॉक्सिंग रिंग में उनके बढ़ते दबदबे के साथ ही सफलता के शिखर तक पहुँचने की उनकी अद्‌भुत यात्रा प्रशंसनीय है।

मेरे विचार से, शारीरिक कद–काठी की किस्मों पर आधारित रूढ़–छवियों को रद्द करने का कोई भी लम्बे दौर का नजरिया समय, पैसे और मेहनत की दृष्टि से महँगी प्रक्रिया होगी। लेकिन हमें इसकी पूरी तरह उपेक्षा भी नहीं करनी चाहिए। सही अवसर, वाजिब खेल–सुविधाओं, और तकनीकी सहयोग के साथ–साथ एक व्यवस्थित चयन प्रणाली के रास्ते हर इच्छुक बच्चे

को उसकी अपनी पसन्द का खेल चुनने का उचित और बराबर मौका दिया जाएगा। मैं सोचता हूँ कि अगर उन्हें केवल उनके छोटे कद के चलते एन.बी.ए. के लिए नहीं चुना गया होता तो एलन आइवर्सन की प्रतिभा का क्या हश्र होता!

रूढ़िग्रस्त सोच से निजात पाने के अल्पकालीन लक्ष्य को पाने की दृष्टि से एक 'बहु–स्तरीय' विधि अपनाई जा सकती है। एक सरल सी गतिविधि के माध्यम से प्रतिभागियों को उनकी प्रतिभा के आधार पर अलग–अलग वर्गों में बाँटा जा सकता है, और इससे चयन प्रक्रिया सरल हो जाएगी। शुरुआत में प्रतिभागियों की दस जोड़ियाँ बना दी जाएँ। फिर उनके लिए किसी एक कौशल का प्रदर्शन करके दिखाया जाए, जिसका प्रयोग करने पर ही वे कौशल की अगली सीढ़ी चढ़ पाएँगे। उदाहरण के लिए, आपके बाईं ओर खड़े किसी व्यक्ति तक एक गेंद को केवल एक ही बार छूकर गोलाकार ढंग से पहुँचाना। ऐसे प्रत्येक सफल पास के साथ वह खिलाड़ी अपनी दाहिने ओर को खिसकता है और अपने उन अन्य साथियों के साथ यही खेल जारी रखता है, जो खुद भी अपनी–अपनी जगह से दाहिनी ओर को खिसक रहे हैं। इस तरह की एक गतिविधि के बाद आपके पास अलग–अलग किस्म की, कई तरह की प्रतिभा का भण्डार होगा और इस दौरान प्रत्येक बच्चे को भाग लेने का अवसर मिल पाएगा!

जड़–छवियों के तमाम रूपों को सिरे से खत्म करने, या कम से कम ऐसा करने के प्रयास से हम सबके लिए सांस्कृतिक और सामाजिक लाभ हासिल हो सकते हैं। अनचाहे रास्तों पर चलने वाले आला दर्जे के खिलाड़ी हमारे लिए प्रेरणादायक नायक बन जाते हैं। अपने पसन्दीदा खेल में लग जाने को तत्पर जोशीले, नौजवान खेल–प्रेमियों के लिए मानदण्ड स्थापित करने वाले ये खिलाड़ी अपने–अपने खेल में अग्रणी रहते हैं और अपने समय के सितारे बन जाते हैं। अपने इन बड़ों की हौसला–आफजाई से ही अधिक संख्या में हमारे नन्हे–मुन्ने वह खेल अपनाएँगे जिसमें उन्हें आनन्द आता है। असम्भव को सम्भव बनाने की तीव्र इच्छा से ही चैम्पियन बनते हैं। विजेताओं की एक पीढ़ी के चलते और अधिक संख्या में उनके सरीखे विजेता पैदा होते हैं और समूचा राष्ट्र पहले से अधिक विकास की ओर बढ़ता है।

जड़–छवियों को लेकर समाज की सोच में बदलाव आ रहा है, लेकिन दिल्ली अभी दूर है। केवल इसलिए कि हमारी अपनी सोच विकृत है, एक व्यक्ति को खेलों और शारीरिक शिक्षा से मिलने वाले लाभ हासिल करने से हतोत्साहित नहीं किया जा सकता। बुनियादी तथा सार्वभौमिक तौर पर मान्यताप्राप्त तमाम सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक अधिकारों को घिसी–पिटी छवियों के भंजन की प्रक्रिया के सह–उत्पाद के तौर पर दायरे में लाने का काम हमारे लिए बड़ी तस्वीर के हिस्से के रूप में होना चाहिए। इस उद्देश्य को पाने के लिए हमें निचले स्तर पर अपनी शुरुआत करने के साथ–साथ ऊपर के स्तर पर भी कुछ बदलाव लाने की

कोशिश करनी होगी। बढ़ी हुई भागीदारी से ही हमारे प्रतिभा–कोष में विविधता भी आएगी।

खेलों के माध्यम से अधिकारों और सशक्तीकरण सरीखे बराबरी और समता के हमारे उद्देश्य सुदृढ़ होते हैं। जिन–जिन जगहों का इस्तेमाल खेलों के लिए हो सकता है, उन तमाम जगहों की सुलभता हमारे विद्यार्थियों के लिए सामूहिक तौर पर नए कौशल विकसित करने में मदद देगी, उन्हें अभिव्यक्ति और चलने–फिरने की आजादी का आनन्द उठाने लायक बनाएगी। इससे शिक्षा और नेतृत्व को भी बढ़ावा मिल सकता है, जिनका होना किसी भी समाज और संस्कृति के विकास के लिए आवश्यक है।

आइए, साथ मिलकर काम करें, एक सफल भारत का निर्माण करें!

***डॉमिनिक विजय*** *ने आइ.आइ.एम. कोझीकोड से जनरल मैनेजमेण्ट में स्नातकोत्तर डिप्लोमा और व्हार्टन से 'सर्विस स्ट्रैटेजी' में डिप्लोमा प्राप्त किया है। उनके पास पीपुल मैनेजमेण्ट, ऑपरेशन्स, बिजनेस डेवलपमेण्ट, मार्केटिंग एण्ड सेल्स के क्षेत्रों में 13 साल से भी अधिक का अनुभव है। डॉमिनिक की कल्पना में उस समूची प्रक्रिया का हिस्सा बनना शामिल है जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए श्रेष्ठता की मंजिल तक पहुँचने का रास्ता बनाती है। अपनी इस दृष्टि और खेलों तथा फिटनेस के प्रति लगाव के चलते वे 'लीपस्टार्ट' के साथ ऑपरेशन्स डायरेक्टर की हैसियत से जुड़े हैं।*

# 15 आउटडोर शिक्षा : एक नए सैद्धान्तिक संरचनात्मक ढाँचे की खोज–पड़ताल

निधि तिवारी

किशोरों का एक दल हवाओं और ठिठुरा देने वाले मौसम से जूझते हुए एक खड़ी चट्टान पर रेंगता हुआ ऊपर चढ़ रहा था। ऊँचे हिमालय के पिछवाड़े एक सँकरी चट्टानी दरार के आर–पार हवाएँ साँय–साँय करते हुए गुजर रही थीं। उस खड़ी चट्टान पर टिके–टिके वे एक–दूसरे को दुफन्दी गाँठ लगाते हुए रस्सी से खुद की सुरक्षा का इन्तजाम कर रहे थे, जज्बात अपने उफान पर थे, उत्तेजना भी अपने शबाब पर थी। तभी एक पर्वतारोही जोर से चिल्लाया, "टेंशन!", यानी "मुझे कसके पकड़े रहो, वर्ना मैं गिर सकता हूँ!" और सब–के–सब उसकी मदद को जुट गए। होंठ भिंच गए, शरीर सुन्न पड़ गए और चेहरे सुर्ख हो चले। अगले पाँच मिनट सन्नाटे में बीते। इसी दौरान कगार पर लटका वह संकटग्रस्त पर्वतारोही अपने पूरे जीवट के बूते कगार के ऊपर जा पहुँचा। उसकी इस कोशिश के पूरा होते ही पूरी टीम खुशी से सराबोर हो गई। सबके चेहरों से राहत और उल्लास छलके जा रहे थे। अन्दर का तूफान अब थम चला था। उनका सहपाठी सुरक्षित था और वे अपनी 'संयुक्त' विजय मना रहे थे। अपने पीछे खड़ी एक लड़की को मैंने उसकी दोस्त से यह कहते हुए सुना, "कितना अजीब है न – शशांक को कगार के ऊपर चढ़ते देख मैंने राहत महसूस की। इस ट्रिप के पहले मैं उसे अपने आसपास बर्दाश्त नहीं कर सकती थी। लेकिन आज, उसे सुरक्षित देख मुझे बहुत अच्छा लगा।"

उसकी इस बात से सहसा मुझे कर्ट हाह्न की बात याद हो आई, "संकट में पड़े अपने किसी साथी की मदद करने का अनुभव, या ऐसी मदद कर पाने के लिए हासिल यथार्थवादी प्रशिक्षण का अनुभव भी, एक युवा मन के भीतरी शक्ति–सन्तुलन को कुछ इस तरह बदलने लगता है कि संवेदना, प्रधान प्रेरणा बन जाती है।" वाकई कितनी सही थी यह बात!

क्या यह सच्ची शिक्षा नहीं है: आउटडोर यानी चारदीवारी के बाहर, खुले में शिक्षा?

## क्या है आउटडोर शिक्षा?

लोगों के किसी भी समूह से पूछिए कि आउटडोर शिक्षा क्या है, तो पक्की बात है कि आप को एक–दूसरे से कुछ हद तक अलग–अलग उत्तर मिलेंगे? आपको हैरत होती है कि ऐसा क्यों है? क्योंकि इस पारखी क्षेत्र का डी.एन.ए., उसकी विशिष्टता ही यह है! इसे परिभाषित करने पर सम्भवतः केवल इसी एक मुद्दे पर सहमति बनती है कि आउटडोर शिक्षा का असर व्यक्ति पर तो पड़ता ही है, पर्यावरण के साथ उस व्यक्ति के रिश्ते पर भी पड़ता है। ये परिभाषाएँ चाहे कहीं से भी आएँ, इन सबको मोटे तौर पर दो समूहों में रखा जा सकता है। एक, जिनकी उत्पत्ति व्यक्ति और ज्ञान सम्बन्धी मनोसामाजिक स्रोत से है, और दूसरा, जिनकी उत्पत्ति (आत्म और प्रकृति के सन्दर्भ में) पर्यावरण से है।

मैं आउटडोर एजुकेशन को सीमित परिसर के बाहर घटने वाली व्यवस्थित शिक्षा के तौर पर परिभाषित करती हूँ। यह कभी भी अन्तिम उत्पाद नहीं होती लेकिन अक्सर इरादतन (और बहुत बार छिपे हुए रूप में) प्रकट शारीरिक गतिविधि के भेस में दिया जाने वाला ज्ञान होती है जिसे तयशुदा उद्देश्य को हासिल करने के लिए बहुत ही बारीकी से सुनियोजित किया जाता है। आउटडोर शिक्षा कार्यक्रमों के कुछ सर्वसामान्य सिद्धान्त हैं – आत्मनिर्भरता, संवेदनशीलता, विविधता, नेतृत्व क्षमता, पर्यावरण–प्रबन्धन, सुरक्षा, साहस, हस्त–कौशल और दक्षता–प्राप्ति। अक्सर ये सब उन आउटडोर शिक्षा कार्यक्रमों के इरादतन हासिल किए जाने वाले गुण होते हैं जिन्हें प्रकृति के तत्वों के साथ गहरी और तीव्र मुठभेड़ में तथा अपने साथी खोजियों की संगत में हासिल किया जाता है।

लेकिन भारत में दुर्भाग्य से हम उस स्थिति से आगे नहीं बढ़ पाए हैं जहाँ आउटडोर गतिविधि को बस उत्तेजना बढ़ाने वाली गतिविधि के तौर पर ही प्रयोग किया जाता है। अक्सर 'आउटडोर शिक्षा' से सीमित अर्थ में 'एड्वेंचर स्पोर्टस्' (साहसिक खेल) वाला आशय लिया जाता है। इसके दायरे में उस सबको नहीं लाया जाता जिसे असल में इस माध्यम से हासिल किया जा सकता है। लेकिन बढ़ते हुए अन्तर्राष्ट्रीय सम्पर्क और अनुभव, तथा शैक्षिक प्रक्रिया में हो रहे गहरे सोच – विचार के चलते

यह धारणा अब तेजी से बदल रही है। धीरे–धीरे ही सही, तमाम स्कूल विभिन्न आउटडोर–शिक्षण कार्यक्रमों में रुचि लेने लगे हैं और विद्यार्थियों के लिए इनके आँख खोलने वाले फायदों के महत्व को समझने लगे हैं।

पश्चिमी देशों में 25 सालों से भी अधिक समय से आउटडोर शिक्षा कार्यक्रम सार्वजनिक स्कूल पाठ्यचर्या का एक हिस्सा रहता आया है। 1940 के दशक में 'आउटवर्ड बाउण्ड' की स्थापना के साथ शुरू हुआ रूझान 1970 के दशक में 'प्रोजेक्ट एड्वेंचर' के आने से वहाँ रम गया। आज संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोप, ऑस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड में आउटडोर शिक्षण कार्यक्रम (जो आम तौर पर जोखिम आधारित होते हैं) वहाँ के माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्कूल पाठयचर्या का एक अभिन्न हिस्सा हैं। यही नहीं, इन देशों ने अनुसंधान के काम और आउटडोर कार्यक्रमों से होने वाले (या न होने वाले) फायदों से जुड़ी जमीनी स्तर की धारणाओं से सिद्धान्त बनाने के काम में भी भारी निवेश किया है।

## आउटडोर शिक्षा – सिद्धान्त और व्यवहार

आउटडोर शिक्षा से सम्बद्ध अधिकतर दर्शन का मूल यूनानी सोच में देखा जा सकता है; वे शायद ऐसी पहली सभ्यता के लोग थे जिन्होंने 'चरित्र' विकास की दृष्टि से अपने नागरिकों का परिचय जोखिमपूर्ण आउटडोर

गतिविधियों के आधुनिक स्वरूपों से करवाया। यह एक कौतूहल का विषय है कि सिकन्दर महान के विश्वविजय अभियान में उनके विद्वान भी उनके साथ यात्रा पर थे। इसका कारण तो और भी अधिक दिलचस्प है; कहा जाता है कि सिकन्दर अपनी फौज के लोगों को जोखिम भरी लम्बी यात्राओं पर ले जाकर उनका चरित्र–निर्माण करना चाहते थे, और उनके साथ चल रहे ये विद्वान इस प्रक्रिया का मार्गदर्शन करते थे।

जॉन म्यूर और हेनरी डेविड थरो जैसे प्रकृतिवादी दार्शनिकों ने खासकर उत्तरी अमेरिका में आउटडोर शिक्षा के लिए आवश्यक बुनियादें डालीं। लेकिन शिक्षा को खुले परिवेश में एक खोज–यात्रा के तौर पर स्थापित करने का श्रेय, मनोवैज्ञानिक चिन्तक विलियम जेम्स और शिक्षाविद् जॉन ड्युई को जाता है। ड्युई का विश्वास था कि अनुभवजन्य शिक्षा ज्ञानार्जन की किसी भी प्रक्रिया का आधार बनती है। इन सब विचारों को आगे ले जाने वाले व्यक्ति एक प्रेरणाप्रद जर्मन हाईस्कूल टीचर कर्ट हाह्न थे। वे 'समुद्र द्वारा, समुद्र के माध्यम से, समुद्र के लिए प्रशिक्षण' की बात करने वाले पहले व्यक्ति थे। समय बीतने के साथ वे आउटडोर शिक्षा के क्षेत्र में सबसे बड़ा योगदान करने वाले सिद्ध हुए। उन्होंने उसे युद्ध का नैतिक समतुल्य मानते हुए 'आउटवर्ड बाउण्ड' की स्थापना की। समालोचनात्मक शिक्षाशास्त्र को प्रचारित करते हुए उनका कहना था कि शिक्षा का काम युवाओं को वह सब कर पाने योग्य बनाने का है, जिसे वे सही समझते हैं – तमाम कठिनाइयों, खतरों, मन के सन्देहों, बोरियत और दुनिया भर के तानों के बावजूद।

आउटडोर शिक्षा के माध्यम को शिक्षकों द्वारा अलग–अलग तरीकों और बदलावों के साथ इस्तेमाल किया गया है। और यह खोज तथा अनुसन्धान के मनोसामाजिक सिद्धान्तों पर आधारित है। इन बातों को ध्यान में रखते हुए, व्यक्तित्व और ज्ञानर्जन से जुड़े अनेकानेक सिद्धान्त आउटडोर शिक्षा के कार्यक्रमों की अलग–अलग व्याख्या करने की ओर आकृष्ट होते हैं। इसके लिए मोटेतौर पर निम्नलिखित से प्रेरणा मिलती है –

1. पर्यावरण सिद्धान्त : इसके तहत प्रकृति की अच्छाई में सहज–स्वाभाविक विश्वास होता है, और इस बात में भी कि प्राकृतिक पर्यावरण से हम प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष तौर पर कुछ न कुछ सीख सकते हैं; और यह तथ्य, कि शुरुआत में तो मनुष्य भी पशु ही थे – इसी के मद्देनजर खुले वातावरण में कुछ भी होता है तो एक तरह की 'घर वापसी' का बड़ा अहसास जगता है। इसके अलावा, प्रकृति से हमें स्वयं के बारे में सीधी–स्पष्ट प्रतिक्रिया मिलती है, जिससे हमें सुरक्षात्मक तौर–तरीकों पर निर्भर रहने के बजाए स्थितियों से जूझने, उन्हें झेल पाने में मदद मिलती है।
2. अनुभवात्मक सिद्धान्त : जॉन ड्युई की 'थ्योरी ऑफ एक्सपीरिअंस' से काफी हद तक अनुप्राणित आउटडोर

शिक्षा विद्यार्थियों को मार्गदर्शित शैक्षिक अनुभव प्रदान करती है। जॉन ड्युई इसे शिक्षा का प्रधान कार्य मानते थे। ड्युई की भाषा में 'स्पाइरल्स ऑफ लर्निंग' (ज्ञानार्जन की कुण्डलियाँ) – यानी योजना बनाना/मोल–तोल के लिए बातचीत– अनुभव करना–समीक्षा करना– सीखे गए को हस्तान्तरित करना – प्राकृतिक भ्रमण आदि के लिए बहुत प्रासंगिक हैं। यह एक अनवरत प्रक्रिया है और अक्सर आउटडोर शैक्षिक कार्यक्रमों की धुरी होती है।

3. मनो–सामाजिक सिद्धान्त : कर्ट हाह्न ने शरीर के माध्यम से मन के प्रशिक्षण का विचार प्रचारित किया। 'आउटवर्ड बाउण्ड' प्रक्रिया उनके लिए एक दोधारी तलवार की तरह हैः पहले घाव और फिर एक तगड़ा स्वास्थ्य लाभ। प्रशिक्षण के 'डंक एण्ड ड्राइ' (भिगोओ और सुखाओ) मॉडल के तौर पर भी जाने जाते आउटडोर शिक्षा कार्यक्रम अक्सर विद्यार्थियों का सामना संकट और विपत्ति से करवाते हैं जिसके चलते उन्हें इन स्थितियों से जूझने की रणनीतियाँ विकसित करनी पड़ती हैं। 'द थ्योरी ऑफ ऑप्टिमल अरॉउजल' यानी अधिकतम जागृति का सिद्धान्त (डफी, 1957), 'थ्योरी ऑफ कॉम्पिटेंस–इफेक्टेंस' (सक्षमता की प्रभावशीलता का सिद्धान्त–व्हाइट, 1959), बॉण्ड्युरा की 'थ्योरी ऑफ सेल्फ एफिकेसी (1986) (बॉण्ड्युरा का प्रभावोत्पादकता का सिद्धान्त), और मॅस्लो के 'हाएरार्की ऑफ नीड्स' (मॅस्लो का श्रेणीबद्ध आवश्यकता सिद्धान्त) के चलते दुनिया भर में आउटडोर शिक्षा कार्यक्रमों की एक साख बनी है।

4. बहुतत्वी : कई आउटडोर समूहों (जैसे कि 'द आउटडोर स्कूल') ने अपने खुद के पाठ्यक्रम बनाए हैं। इनका आधार अक्सर अनुभव–आधारित शिक्षा का सर्पिल/कुण्डली वाला सिद्धान्त होता है और यह मान लिया जाता है कि ज्ञानार्जन एकरेखीय न होकर बहु–स्तरीय होता है। और इनके कार्यक्रमों में शिक्षा के बहुत से क्षेत्रों को एकीकृत किया जाता है, जैसे कि मनःप्रेरक (साइको–मोटर), संज्ञानात्मक और इन्सानी रिश्ते।

## आउटडोर शिक्षा और अकादमिक पाठ्यचर्या–दोनों का मिलन, कहाँ?

संयुक्त राज्य अमेरिका, न्यूजीलैण्ड और ऑस्ट्रेलिया जैसे देशों में आउटडोर शिक्षा को विज्ञान, सामाजिक–विज्ञान, गणित, पर्यावरण–शिक्षा, शारीरिक और स्वास्थ्य–शिक्षा की पाठ्यचर्या में एक प्रमुख घटक के तौर पर एकीकृत किया गया है। न्यूजीलैण्ड में स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा के पाठ्यचर्या कथन के अनुसार, "स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा से ज्ञानार्जन के माध्यम से विद्यार्थी समझदार, जागरूक निर्णय कर सकने की योग्यता के लिए जरूरी ज्ञान, कौशल, प्रवृत्तियाँ और उत्साह विकसित करेंगे। इसी प्रक्रिया में वे यह भी सीखेंगे कि स्वयं अपने, अन्य लोगों के और सम्पूर्ण समाज के कल्याण के लिए क्या कुछ करके योगदान दिया जा सकता है" (शिक्षा मन्त्रालय, 1999, पृ.11)। इसी प्रकार संयुक्त राज्य अमेरिका में 1971 में 'प्रोजेक्ट एड्वेंचर' नाम का एक क्रान्तिकारी कार्यक्रम शुरू हुआ जिसके चलते वहाँ के पब्लिक स्कूलों में शारीरिक शिक्षा की पाठयचर्या का कायाकल्प हुआ। 'प्रोजेक्ट एड्वेंचर' अब घर–घर में लोकप्रिय हो चुका है और करीब 1000 से भी ज्यादा स्कूलों ने कक्षा 1 से लेकर कक्षा 12 तक के लिए उनकी साहसिक शिक्षा पाठयचर्या (एड्वेंचर एजुकेशन करिकुलम) को अपनाया है। पिछले 15 सालों में छपे अनुसन्धान–आधारित प्रमाण बिना किसी शक के दर्शाते हैं कि स्कूली माहौल पर प्रोजेक्ट एड्वेंचर कार्यक्रमों का

कक्षा, व्यापक समुदाय और अपने पड़ोस में ज्ञान लाने सम्बन्धी प्रयासों में भी विद्यार्थियों को इससे काफी मदद मिली है, जिसके चलते वे विभिन्न जीवन–कौशलों से लैस हुए हैं। शारीरिक शिक्षा के एक प्रारूप के तौर पर शुरू हुई परियोजना को आज व्यवहार–प्रबन्धन, विविधता को गले लगाने, और अन्तर–विषयक ज्ञानार्जन के लिए अपनाया जा रहा है।

उदाहरण के लिए, आइए रॉक–क्लाइम्बिंग के अनुभव को जरा टटोलें और देखें कि किस तरह इसका असर पाठ्यचर्या के कई क्षेत्रों पर पड़ता है।

- **भूविज्ञान और भूगोल** – आरोहियों के लिए अक्सर चट्टानों की संरचना और मजबूती के बारे में जानना–समझना जरूरी होता है।
- **गणित और भौतिक विज्ञान** – आरोही इस्तेमाल हो रहे उपकरणों की मजबूती पर निर्भर रहते हैं। रस्सियों और अन्य खूँटीदार यन्त्रों के इस्तेमाल में उनकी मजबूती का बड़ा योगदान रहता है। दरअसल, इनमें से प्रत्येक की मजबूती, दुफन्दी गाँठ की वास्तविक प्रक्रिया और उपकरणों की टूट–फूट में विज्ञान की समझ की बड़ी भूमिका है।
- **इन्सानी रिश्ते** – चट्टान–आरोही और दुफन्दी गाँठ लगाने वाले व्यक्ति के बीच के समीकरण के चलते परस्पर–विश्वास का मानवीय पक्ष उभरकर आता है। इससे मानव सम्बन्धों की प्रकृति और उनकी मजबूती का महत्व हमें समझ में आता है। यही नहीं, इसका सम्बन्ध सम्पूर्ण व्यवस्था (चट्टानें, दुफन्दी गाँठ और उसे लगाने वाला, रस्सी आदि) से सम्बद्ध कौशल और उसकी समझ से भी है, जिसका असर आरोही के मन पर भी पड़ता है।

इस प्रकार आउटडोर शिक्षा कार्यक्रमों के दौरान विद्यार्थी चट्टानों की संरचना और मजबूती (जिसको ध्यान में रखते हुए ही वे चट्टान को पकड़ना और उसका इस्तेमाल करना सीखेंगे), काम में आने वाले विभिन्न उपकरणों, औजारों और यंत्रों, साज–सामान में गाँठ आदि लगाने, दुफन्दी गाँठ आदि के बारे काफी कुछ सीख सकते हैं, और अन्ततः इतनी निपुणता हासिल कर सकते हैं कि चढ़ाई के समय वे एक–दूसरे को दुफन्दे में बाँध सकते हैं। हमें अपने एड्वेंचर आधारित आउटडोर कार्यक्रमों के माध्यम से इसी प्रकार के अन्तर–विषयक ज्ञानार्जन को हासिल करने का लक्ष्य बनाना चाहिए।

## आउटडोर शिक्षा – भारतीय सन्दर्भ

दुर्भाग्य से भारत में अधिकांश स्कूल, खेलों या शारीरिक शिक्षा को प्रतिस्पर्धात्मक खेलों और सामूहिक खेलों के सीमित अर्थों में ही देखते हैं। एड्वेंचर खेलों के साथ प्रयोग करने वाले स्कूलों की संख्या बहुत ही कम है और उससे भी कम संख्या उन स्कूलों की है जिन्होंने एड्वेंचर–खेल आधारित शिक्षा या जमीनी स्तर पर प्रयोग होने वाले पर्यावरण–आधारित कार्यक्रम–प्रारूपों को समझने या उनके साथ प्रयोग करने का प्रयास किया है। इसके कई कारण गिनाए जा सकते हैं। एक प्रमुख कारण है स्कूलों में शारीरिक शिक्षा कार्यक्रमों की हालत। अधिकांश स्कूल इनका इस्तेमाल या तो प्रतिस्पर्धात्मक खेलों के कोचिंग सेण्टरों के तौर पर करते हैं या फिर अतिरिक्त शैक्षिक कार्य के लिए खाली पीरियड के तौर पर। शारीरिक शिक्षा कार्यक्रम को जतन से तैयार किए जाने की आवश्यकता पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया जाता। एड्वेंचर आधारित कार्यक्रमों को शारीरिक–शिक्षा के पाठयक्रमों में शामिल करना लाभकारी पाया गया है। स्पोर्ट क्लाइम्बिंग, रॉक क्लाइम्बिंग, ट्रेकिंग और कैम्प क्राफ्ट, कॅनोइंग (डोंगी चालन), काइऐकिंग (एक और प्रकार का नाव चालन) और राफ्टिंग जैसे पानी–खेलों, ओरिएन्टियरिंग (नक्शे और कम्पास की मदद से पथ प्रदर्शन), साइक्लिंग, रस्सियों से जुड़े करतब जैसी विशिष्ट गतिविधियों को शारीरिक–शिक्षा पाठ्यचर्या का हिस्सा बनाया जा सकता है। दरअसल, इण्टरनेशनल बॅकालॉरिएट पाठयक्रम अपने विद्यार्थियों के लिए आउटडोर और एड्वेंचर गतिविधियों को शारीरिक शिक्षा के डिप्लोमा पाठयक्रम (डिप्लोमा इन फिजिकल एजुकेशन) के एक हिस्से के तौर पर विशिष्ट दर्जा देता है।

विद्यार्थियों के वयस्कों के तौर पर विकास के दौरान

जीवन–कौशलों की महत्वपूर्ण आवश्यकता रहती है। इस बात को ध्यान में रखें तो आश्चर्यजनक लगता है कि हमारी शिक्षा प्रणाली द्वारा यह मान लिया गया है कि ये कौशल तो कैसे भी सीखे जा सकते हैं। इससे भी बदतर यह, कि सी.बी.एस.ई. द्वारा अब जीवन–कौशलों को अनिवार्य और आकलन–आधारित बनाने के बाद से स्कूलों में जीवन–कौशल के अध्यापकों को नियुक्त करने की एक होड़–सी लग गई है। इन अध्यापकों से आशा की जाती है कि वे जीवन–कौशल सिखाने की कक्षाएँ लें। इस सन्दर्भ में मैं यह कहना चाहूँगी कि समस्या–समाधान, सम्प्रेषण, लक्ष्य–निर्धारण, संवेदनशीलता और निर्णय–क्षमता जैसे जीवन–कौशल वास्तविक अनुभवों के जरिए ही सीखे जाने चाहिए। इसके लिए विद्यार्थियों को एक ऐसा सक्रिय और जीवन्त माध्यम उपलब्ध करवाना होगा जिससे वे प्रयोग कर सकें, गलतियाँ कर सकें और उनसे सीखते हुए इन तमाम जीवन–कौशलों का महत्व जान सकें, समझ सकें – वर्ना तो वे भी रट्टे लगाकर याद करने वाले उन सब पाठों की तरह हो जाएँगे जिन्हें बाद में भुला दिया जाता है। और यहीं पर आउटडोर या एड्वेंचर–आधारित शैक्षिक पाठयक्रम को बड़े आराम से वृहत्तर पाठयक्रम में एकीकृत किया जा सकता है।

इसी प्रकार, अभियानोन्मुखी भ्रमणकारी शिक्षा उन विद्यार्थियों के लिए बड़ा महत्व रखती है जो अभी हाल ही में वयस्क बने हैं और अपने पेशेवर जीवन की राह चुन रहे हैं। एक उल्लेखनीय उदाहरण के.एफ.आई. (कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन ऑफ इण्डिया) स्कूलों का है, जो पिछले बीस बरसों से अपने वयस्क विद्यार्थियों को हिमालय अभियानों पर ले जाते रहे हैं। ऐसे अभियानों का सम्भवतः सबसे अहम मूल्य है अपने अन्तर की, स्वयं अपने भीतर की यात्रा – जिसके दौरान विपत्तियों/प्रतिकूल परिस्थितियों के बरक्स विद्यार्थियों में लचीलापन, साहस, नेतृत्व, आत्म–निर्भरता, हालात के मुताबिक ढलने और सहनशीलता जैसे गुणों का विकास होता है।

पहाड़ पर बेअन्त–सा लगता रास्ता, कन्धों को अपने होने का अहसास जतलाता हुआ पीठ पर लदा बैग, नथुनों से टपकता पसीना और साथ के लिए केवल प्रकृति। ऐसी यात्रा में जिन्दगी के प्रति आपका नजरिया बहुत ही व्यक्तिगत ढंग से परिभाषित होता है – और उसे आप स्वयं ही परिभाषित करते हैं। लगभग तुरन्त ही आप जान जाते हैं कि आपकी सहनशीलता की आखिरी हद क्या है; अत्यन्त प्रतिकूल हालात में रहने वाले गडरियों के प्रति आप में भावना पैदा होती है (यानी समानुभूति); अभियान के दौरान आप सामूहिक कामों में भागीदारी करते हैं; इन्तजार करते हैं तूफान के गुजर जाने का (धीरज); करते हैं भरोसा कल के अच्छे मौसम का (आशावाद), और भिगो लेते हैं खुद को कुदरत की हर ओर फैली गजब की खूबसूरती में। यह सब करते हुए विद्यार्थी पर्वतों से वयस्क के तौर पर उनके काम आने वाले आत्मसुरक्षा के कौशल ही तो सीख रहे हैं!

स्कूलों को इस बाबत उत्साहित किया ही जाना चाहिए

कि वे बड़ी कक्षाओं के विद्यार्थियों के लिए इस प्रकार के भ्रमण–अभियान आयोजित करें ताकि उन्हें इन तमाम भावनाओं से होकर गुजरने का अनुभव हो सके और वे इसके अलावा और भी बहुत कुछ सीखें। ये अभियान ऐसे ऐसे तरीकों से हमारा चरित्र गढ़ते हैं जिनकी हम कल्पना तक नहीं कर सकते।

इसके अलावा, पी.टी. पीरियड के एक हिस्से के तौर पर, हमारे स्कूल कई ऐसी चुनौतियाँ और पहलकदमियाँ जोड़ सकते हैं जिनके लिए विशेष उपकरणों की जरूरत नहीं होती – सिवाय बस एक कुशल अध्यापक के, जो अपने कौशल से विद्यार्थियों के ज्ञानार्जन को सुगम बना सकता है। इन दिनों कुछ स्कूल अपने परिसर में खेलों के लिए दीवार और रस्सी–अभ्यास के लिए मैदान बनाने का विचार कर रहे हैं। ये सही दिशा में उठाए गए कदम हैं, लेकिन हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि प्रकृति और बियाबानों से हमारी आमने–सामने की मुलाकात किसी भी आउटडोर शिक्षण–कार्यक्रम के केन्द्र में रहती आई है। बहरहाल, हमें हमेशा अपने विद्यार्थियों को स्कूल से बाहर भी आउटडोर कार्यक्रमों में शरीक होने के लिए उकसाते रहना चाहिए।

## संशय के साये और उनसे परे

जब भी मैं स्कूलों या कॉलेजों के प्रमुखों से मिलती हूँ और आउटडोर शिक्षा की बात करती हूँ, कमोबेश हमेशा ही उनमें मुझे डर की एक अर्न्तधारा का अहसास होता है, कि बाकी सब तो ठीक, पर ये प्रोग्राम हैं कितने सुरक्षित! कई बार, आउटडोर शिक्षक होने के नाते हमें कह दिया जाता है कि नहीं, यह सब बहुत जोखिम भरा है, और ऐसी गतिविधियों में शामिल होने को लेकर स्कूल शंकालु हो जाते हैं। यह सही है कि बाहर यात्रा के अपने खतरे हैं, लेकिन इनमें से अधिकांश को पूर्व प्रशिक्षण, अक्लमन्द नेतृत्व और प्रमाणित उपकरणों के इस्तेमाल के जरिए काबू में रखा जा सकता है। यहाँ मेरी दलील दो–स्तरीय होगी।

एक, क्या हम यह नहीं मानते कि हमारे विद्यार्थियों के लिए जोखिम–प्रबन्धन का सबक एक प्रमुख सबक है? दार्शनिक स्तर पर – या असल में, अक्षरश भी – हमारा जीवन क्या जोखिमों भरा नहीं है? यदि हम अध्यापक और स्कूल–प्रबन्धन समेत अपनी तमाम स्कूली व्यवस्था को इतना जोखिम–विमुख बना देंगे तो फिर भला हम अपने विद्यार्थियों से यह उम्मीद कैसे रख सकते हैं कि वे वयस्कों की तरह अपना जीवन–मार्ग बनाएँगे, सही निर्णय लेंगे और अपने जोखिमों का प्रबन्धन ठीक–ठाक रखेंगे। खतरों से दूर भागने की बजाय क्या हमें अपने विद्यार्थियों को यह नहीं सिखाना चाहिए कि वे जोखिमों की पहचान और उनका विश्लेषण कैसे करें। इसके आधार पर जोखिम–प्रबन्धन की अपनी रणनीतियाँ कैसे बनाएँ? जोखिम–प्रबन्धन का शिक्षण आउटडोर शिक्षण कार्यक्रमों में प्रमुख विषय होना चाहिए क्योंकि यह एक ऐसा जीवन–कौशल है जिससे विद्यार्थियों का परिचय होना ही चाहिए। जोखिम–प्रबन्धन जैसा जीवन–कौशल बहुत ही महत्वपूर्ण है। इस बात को ध्यान में रखते हुए स्कूलों के लिए क्या यह महत्वपूर्ण नहीं होगा कि वे जोखिम–विमुख न बनें, बल्कि एक केन्द्रीय अवधारणा के तौर पर जोखिम–प्रबन्धन को अच्छे से खंगालें? और इसे सिखाने के लिए बाहर, खुले आसमान से अधिक बेहतर और 'असली' माध्यम और क्या हो सकता है?

इसके अलावा, यह मानते हुए कि स्कूलों के पास अपने विद्यार्थियों को आउटडोर–शिक्षा अभियानों पर ले जाने की क्षमता नहीं है और अक्सर यह काम बाहरी एजेंसियों को देने के अलावा उनके पास कोई और चारा नहीं होता। स्कूलों को सम्बन्धित आउटडोर कम्पनी/संस्थापक के परिचय–पत्र वगैरह की पुष्टि, इस्तेमाल होने वाले साज–सामान के प्रमाण पत्रों की, और स्टाफ द्वारा प्राप्त कौशल–आधारित तथा प्रथमोपचार सम्बन्धी प्रशिक्षण के स्तर की जाँच, और आउटडोर शिक्षा को लेकर उनकी सोच की गहराई को ठोक–पीटकर परखने के माध्यम से बाहर की यात्रा के जोखिम पर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। अगर ये सब नहीं किया जाता तो स्कूल केवल बेमतलब की, बहुत ही हल्की–फुलकी, मस्ती की गतिविधियाँ करके रह जाएँगे जिनमें ज्ञानार्जन की कोई संरचनात्मक पैठ नहीं बन पाएगी।

## सीखकर आगे बढ़ना

आउटडोर भ्रमणों के तमाम फायदों के मद्देनजर स्कूलों को अनुभवजन्य शिक्षाप्रद मॉड्यूल/शिक्षाक्रम तैयार करने और उन्हें अपनी पाठ्यचर्या में एकीकृत करने का काम करना चाहिए ताकि शिक्षा का स्वरूप व्यावहारिक बने। यह स्कूल प्रबन्धन पर निर्भर करता है कि आसानी से उपलब्ध इस माध्यम का अधिकतम लाभ वह कैसे उठाए।

शिक्षा को ज्यादा मजेदार और परस्पर आदान–प्रदान वाला, वास्तविक और प्रासंगिक बनाने की दृष्टि से आउटडोर शिक्षा हमें ऐसे बहुत मौके देती है जिनके चलते हम न केवल अपने आसपास की दुनिया (पर्यावरण, प्रकृति, लोगों इत्यादि) की पड़ताल कर सकते हैं बल्कि यह भी खंगाल सकते हैं कि हममें कुछ करने का कितना माद्दा है। कर्ट हाह्न को हमेशा ही यह भरोसा रहा कि हममें कुछ करने का उससे कहीं अधिक माद्दा होता है जितने के काबिल हम स्वयं को समझते हैं। क्या शिक्षा इसी सम्भावना को टटोलने का नाम नहीं है? यदि आप इस बात से सहमत हैं तो देखिए, कर्ट हाह्न नामक यह विनम्र आउटडोर शिक्षक शिक्षा का क्या सार हमारे सामने रखता है – "शिक्षा का प्रमुख काम मैं इन गुणों का संरक्षण सुनिश्चित करना मानता हूँ – एक उद्यमशील कौतूहल, कभी न थकने वाला जोश और भावना, लक्ष्य–प्राप्ति के लिए टिके रहने की क्षमता, तर्कसंगत आत्म–वंचना के लिए तैयार रहना, और इन सबसे ऊपर, संवेदना और सहानुभूति।"

**टिप्पणी :**

1. दुफन्दी गाँठ लगाना : आरोहण के दौरान ऊपर चढ़ने के लिए इस्तेमाल होने वाली रस्सी पर घर्षण के लिए प्रयोग की जाने वाली एक तकनीक, ताकि नीचे की ओर फिसलता हुआ आरोही फिसलते–फिसलते बहुत दूर न चला जाए – कुल मिलाकर यह रस्सी द्वारा सुरक्षा की एक व्यवस्था है।
2. आउटवर्ड बाउण्ड : 1930 के दशक में कर्ट हाह्न द्वारा प्रस्तावित एक रचनात्मक, नवाचारी शैक्षिक विचार – अपना सुरक्षित समुद्र तट छोड़ खुले अथाह समुद्र में जाने वाले उस जहाज का प्रतीक, जो विश्वयुद्ध के दौरान अपने घरों का आराम तज लड़ाई के मैदान की ओर चल पड़े युवाओं का रूपक था। और अब, साठ बरस से भी ज्यादा अर्से के बाद, छह महाद्वीपों के 40 से भी अधिक देशों में स्कूल और कार्यक्रमों की लम्बी–चौड़ी फेहरिस्त के चलते 'आउटवर्ड बाउण्ड' को दुनिया की सबसे पुरानी आउटडोर शैक्षणिक संस्था कहा जा सकता है।
   'द आउटडोर स्कूल' एक ऐसा आउटडोर शिक्षण स्कूल है जिसका मानना है कि शिक्षा का काम उन अनुभवों का सृजन करना और उनके सम्पर्क में रहना है जो जोश और चुनौतियाँ भरे हैं, विकासोन्मुखी और रूपान्तरकारी हैं। बंगलौर स्थित यह संस्था अनुभवजन्य शिक्षा को स्कूली पाठ्यचर्या में सहज रूप से एकीकृत करने के काम में लगी है।

**सन्दर्भ :**


- http://www.pa.org/?page_id=996
- http://www.childrenandnature.org/downloads/outdoorschool_finalreport.pdf
- http://www.cbse.nic.in/cce/life_skills_cce.pdf
- Research paper on "The nature and scope of outdoor education in New Zealand schools", by Dr Robyn Zink, Monash University, Dr Michael Boyes, University of Otago
- www.kurthahn.org
- http://wilderdom.com/research.php
- "Adventure Education & Outward Bound: Out-of-class experiences that make a lasting difference", by John Hattie & H.W. Marsh
- "Meta-Analytic Research on the Outcomes of Outdoor Education", by James T. Neill, University of New Hampshire
- "Interdisciplinary Teaching through Outdoor Education", a book by Camille J Bunting


***निधि तिवारी*** *एक आउटडोर शिक्षक हैं। वे पिछले एक दशक से भी अधिक समय से आउटडोर शिक्षा के पेशे से जुड़ी हैं। वे आउटडोर गतिविधियों के प्रति बहुत उत्साही हैं और उन्होंने नॉर्थ कॅरोलिना आउटवर्ड बाउण्ड स्कूल से 'लीडर' का प्रशिक्षण प्राप्त किया है। अपना खुद का एक आउटडोर स्कूल शुरू करने का उनका सपना जनवरी 2010 में साकार हुआ जब उन्होंने 'द आउटडोर स्कूल'(www.theoutdoorschool.in) की स्थापना की। अब वे आउटडोर माध्यम का उपयोग करते हुए विभिन्न स्कूलों और कॉलेजों के लिए शैक्षणिक पाठयक्रम बनाती और उनका नेतृत्व करती हैं। अपने इस आउटडोर प्रेम के अलावा वे पिछले दो सालों से अज़ीम प्रेमजी फाउण्डेशन से भी जुड़ी रही हैं। वे खासकर 'लर्निंग कर्व' पर काम करती रही हैं। उनसे nidhitiwariblr@gmail.com पर सम्पर्क साधा जा सकता है।*

# 16 खेलों में करियर : क्यों नहीं!

साईसुधा सुगवन्नम

''महत्वपूर्ण यह नहीं है कि आप कितनी बार गिरते हैं; महत्वपूर्ण तो यह है कि गिरकर भी आप कितनी बार उठ खड़े होते हैं।'' – विंस लोम्बार्डी, प्रख्यात अमेरिकन फुटबॉल कोच।

भारत में खेलों के शौकीन बार–बार प्रश्न पूछते हैं –

- क्रिकेट वर्ल्ड कप दोबारा जीतने में हमें 28 साल क्यों लग गए?
- कोई भारतीय सबसे पहला व्यक्तिगत ओलिम्पिक स्वर्ण पदक जीते, इसमें 108 साल क्यों लगे?
- एकल ग्रैण्ड स्लैम खिताब जीतना इतना मुश्किल क्यों है?
- आठ ओलिम्पिक स्वर्ण पदक जीतने के अपने स्वर्णिम इतिहास के बावजूद भारतीय पुरुष हॉकी टीम 2008 के ओलिम्पिक में खेलने की योग्यता हासिल कर पाने (क्वालिफाई कर पाने) से भी कैसे चूक गई?

भारत दुनिया में सबसे अधिक जनसंख्या वाला दूसरा देश है। इसलिए यह मानना तो उचित ही होगा कि भारत में अनगढ़ प्रतिभा की कोई कमी नहीं है।

## तो फिर समस्या क्या है?

कारण बहुतेरे और अक्सर एक–दूसरे से जुड़े हुए हैं, जैसे –

- खेलकूद की बुनियादी सुविधाओं की कमी।
- संचालक संस्थाओं की उदासीनता।
- पारम्परिक रूप से, खेलों में आजीविका को लेकर एक तरह का अविश्वास।
- शीर्ष तक पहुँचने से पहले ही प्रतिभाओं द्वारा खेल का मैदान छोड़ दिए जाने पर ध्यान न दिया जाना।

देखा जाए तो ये सारी बातें निराधार भी नहीं हैं – दशकों से हो रहे धीमी गति के विकास को झेल रहे इस देश में 'पक्की' नौकरी का आश्वासन आज भी बड़ा आकर्षण रखता है।

लेकिन, समय ने करवट बदली है, और एक ज्यादा जवान, अधिक ऊर्जावान भारत इन सब सवालों के जवाब चाहता है।

बंगलौर स्थित एक खेलक्षेत्री गैर–सरकारी संगठन 'गो स्पोर्टस् फाउण्डेशन' की निधि गुप्ता और अदिति किणी द्वारा किए गए एक अध्ययन से यह बात सामने आई कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत की साधारण सफलता का एक प्रमुख कारक यह है कि खेलों को अपना पेशा बनाने आए उत्तम दर्जे के योग्य खिलाड़ी चोटी पर पहुँचने से पहले ही मैदान छोड़ देते हैं।

''भारत में खेल–प्रतिभाओं की कोई कमी नहीं; समस्या केवल यही है कि अगर एक खेल–विशेष में एक हजार खिलाड़ी हैं तो उनमें से केवल 100 के पास ही आवश्यक प्रतिभा होगी, और उन सौ में से भी केवल एक ही खिलाड़ी ऐसा होगा जो प्रचलित प्रतिमानों को तोड़कर आगे निकल जाएगा और सफल होगा – बाकी बचे 99 दौड़ से बाहर हो जाएँगे'' – यह कहना है 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के खेल पत्रकार अभिजीत कुलकर्णी का।

यह लेख खेल को 'बीच में ही छोड़ देने' की इस परिघटना की पड़ताल करता है। खिलाड़ियों द्वारा असमय प्रस्थान किए जाने के कुछ कारणों को इसमें रेखांकित किया गया है। इस अध्ययन की पूरी विषयवस्तु गो स्पोर्टस् फाउण्डेशन (जी.एस.एफ) के पास उपलब्ध है।

## खिलाड़ियों द्वारा समय से पहले खेल छोड़ जाने के मुख्य कारण

47 लोगों की एक सैम्पल आबादी का सर्वेक्षण किया गया (जिनमें 14 खेल पत्रकार और 3 वर्तमान कोच समेत

33 खिलाड़ी थे)। इस सर्वेक्षण से खेल–परित्याग के निम्नलिखित प्रमुख कारण उभरकर आए (कोष्टक में दिए गए आँकड़े सैम्पल आबादी का वह प्रतिशत है जिसने उसे कारण नम्बर 1 करार दिया) –

- करियर की अव्यवहार्यता (34.04)
- व्यवस्थागत कारक (27.66)
- शारीरिक कारक (12.77)
- प्रदर्शन सम्बन्धी कारक (10.64)
- आर्थिक कारक (8.51)
- बाहरी कारक (6.38)

**करियर की अव्यवहार्यता :** देखने में आया कि भारत में खिलाड़ी अक्सर यह मानते हैं कि खेलों में सक्रिय रहने के दौरान उनके सम्बद्ध खेल के लिए कोई ऐसा व्यवस्थित, सुगठित करियर–पथ नहीं होता जिस पर चलते हुए उन्हें अपने खेल–काल के दौरान और उससे निवृत्त होने के बाद भी आर्थिक सुरक्षा मिल सके। इसमें आगे की उच्च शिक्षा हासिल करने या कोई अलग आजीविका अपनाने का फैसला भी शामिल है – इसलिए, कि खेल को एक करियर के तौर पर अपनाने में काफी बड़ी कीमत चुकानी पड़ती है, उसमें निश्चितता नहीं है। कर्नाटक की अण्डर–16 क्रिकेट टीम के भूतपूर्व कप्तान नन्दन कामथ की स्वीकारोक्ति पर जरा गौर फर्माएँ –''उस समय, कुछ गिने–चुने लोग ही क्रिकेट में अपना एक ठीक–ठाक करियर बना पाते थे। चयन–प्रक्रिया न तो पारदर्शी थी और हमेशा योग्यता–आधारित भी नहीं होती थी। इसलिए क्रिकेट में करियर बनाने की चाह जोखिम भरी बात थी। तो, मौका मिलते ही मैंने वकालत की पेशेवर पढ़ाई करने का विकल्प चुना। मेरा खयाल था कि इससे मुझे अपने भविष्य पर अधिक नियन्त्रण का मौका मिलेगा।''

**व्यवस्थागत कारक :** मालूम हुआ कि इनमें सरकारी समर्थन का न मिलना, बुनियादी सुविधाओं तक सीमित पहुँच, विशेषज्ञ प्रशिक्षक और चिकित्सा सेवाओं का आसानी से उपलब्ध न होना शामिल हैं। इसके अलावा कुछ लुके–छिपे जमीनी कारक भी उभरकर आए, जैसे खेल के वातावरण में आपस की टकराहटें और झगड़े, तथा खिलाड़ियों के पास प्रतिभा–प्रदर्शन और अपने समकक्षों के साथ प्रतिस्पर्धा के लिए सही अवसर न मिल पाना। एन.डी.टी.वी. की पत्रकार अनुसुइया माथुर मानती हैं, ''भारत में प्रतिभा, प्रतिबद्धता और उत्साह की कोई कमी नहीं है। कमी है तो व्यवस्था की, जो उनकी मदद को नहीं आती।''

हिन्दुस्तान टाइम्स के पत्रकार बी. विजय मूर्ति का कहना है, ''हर राज्य में खेल संघ हैं, लेकिन उनमें से अधिकांश का संचालन स्वयं खिलाड़ियों द्वारा नहीं किया जा रहा है। इनका रवैया पेशेवर नहीं है और क्षेत्रीय राजनीति का भी इन पर बहुत प्रभाव रहता है।''

**शारीरिक कारक :** इसमें 'खेल बीच में छोड़ने' से पहले के दौर में लगी शारीरिक चोटें शामिल हैं, और खेल के मैदान में खिलाड़ियों की शारीरिक सीमाओं का मसला भी शामिल है जिनकी वजह से उनके लिए अगले स्तर तक पहुँचना सम्भव नहीं हो पाता। ''प्रशिक्षण शिविरों के दौरान कोई भी भारतीय खिलाड़ी अपना शत प्रतिशत नहीं देता, क्योंकि उन्हें हमेशा इस बात का डर रहता है कि यदि वे चोटिल हो गए तो फिर कभी खेल नहीं पाएँगे। ऐसा इसलिए, क्योंकि इस बात की कोई गारण्टी नहीं होती कि उन्हें उपयुक्त डॉक्टरी सहायता मिल जाएगी।'' यह कहना है राजीव मिश्र का, जिनके शानदार स्वर्णिम गोल ने भारत को जूनियर हॉकी का सन् 1997 का विश्व कप दिलाया था। उन्हें चोट लगने की वजह से और सही डॉक्टरी इलाज नहीं मिलने की वजह से खेल छोड़ना पड़ा था।

**प्रदर्शन सम्बन्धी कारक :** देखने में आया कि खिलाड़ी के प्रदर्शन में सफलता या सुधार की कमी भी एक कारक है। नतीजतन, उसके जोश और हौसले में गिरावट आ जाती है और धीरे–धीरे उसकी सारी ऊर्जा खत्म हो जाती है। भारत के पूर्व क्रिकेटर एल. शिवरामकृष्णन कहते हैं, ''खिलाड़ी जब 'अण्डर 16' या 'अण्डर 19' के लिए नहीं चुने जाते तो बड़े निराश हो जाते हैं, और फिर वे पढ़ाई पर ध्यान देने लगते हैं। आत्म–विश्वास की

यह कमी खेलों की दुनिया को छोड़ने का कारण बनती है।''

**आर्थिक कारक :** खिलाड़ी का अपने खेल में आगे न जा पाने का सबसे प्रमुख कारण पैसे की कमी पाया गया, वह चाहे व्यक्तिगत स्तर पर पैसे के अभाव के चलते हो या फिर कोई प्रायोजक न मिल पाने के चलते। खेल जीवन में एक खास बिन्दु पर पहुँचने के बाद खिलाड़ियों को अपने उपकरणों, प्रशिक्षण और अन्तर्राष्ट्रीय टूर्नामैण्टों में भाग लेने के लिए यात्रा इत्यादि पर काफी पैसा खर्च करना पड़ता है। ऐसे में साधारण पृष्ठभूमि से आए लोगों के लिए खेल के मैदान में टिके रहना खास तौर पर और भी कठिन हो जाता है।

**बाहरी कारक :** इनमें मुख्यतौर से सामाजिक, घरेलू और हमउम्रों के अलग–अलग प्रकार के दबाव शामिल पाए गए। माता–पिता द्वारा अपने बच्चों के लिए अधिक सुरक्षित करियर चुनने की मानसिकता भी जिम्मेदार पाई गई। और यह भी, कि एकबारगी अपने 'अन्तरिम' लक्ष्य तक पहुँच जाने के बाद (मसलन, खेल के आधार पर किसी नामवर कॉलेज में दाखिला या कोई सरकारी नौकरी मिल जाना) खिलाड़ी खेल बीच में छोड़ने का निर्णय भी ले सकते हैं।

## खिलाड़ियों द्वारा खेल छोड़े जाने की उम्र

सर्वेक्षण से यह तथ्य उभरकर आया कि तैराकी, क्रिकेट और टेनिस में खिलाड़ियों द्वारा खेल छोड़ देने की औसत उम्र 21 साल 3 महीने है। रोचक बात यह भी थी कि दो आयु–समूहों में यह प्रवृत्ति सबसे ज्यादा पाई गई : 21–22 और 18–19 बरस की उम्र में। यह संयोग की बात नहीं है कि ये आयु–समूह उम्र के उस विशेष पड़ाव से नाता रखते हैं जब हम अपने भविष्य के लिए एक पारम्परिक पेशा अपनाने के बारे सोचना शुरू करते हैं, यानी ताजा–ताजा स्नातक बनने के बाद 21–22 साल की उम्र; और जब हम बारहवीं कक्षा की महत्वपूर्ण परीक्षा का सामना कर रहे होते हैं, यानी 18–19 साल की उम्र। ये आँकड़े एक बार फिर उसी प्रवृत्ति की ओर इशारा करते हैं जिसके तहत 'परम्परागत' पेशे और खेलों के पेशे में से किसी एक को चुनने का विकल्प हो, तो अमूमन पहले वाला विकल्प ही चुना जाता है।

## निष्कर्ष

इस अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि अधिकांश भारतीय खिलाड़ी खेलों में अपने लिए कारगर करियर की सम्भावना नहीं देखते।

उनसे पूछा गया कि ऐसा क्या किया जाना चाहिए था जिसके चलते उनका जुड़ाव अपने खेल से लगातार बना रह पाता? अधिकांश खिलाड़ियों का जवाब था कि अगर पैसा आसानी से उपलब्ध होता (खासकर विदेश यात्रा इत्यादि के लिए, क्योंकि देश में ऐसे टूर्नामैण्टों की कमी है जिनमें अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के विदेशी खिलाड़ी भाग लेते हों) या फिर उनके अपने खेल में कमाई की सम्भावनाएँ अच्छी होतीं तो वे खुद के लिए एक खिलाड़ी का पेशा चुनने के बारे में सोच सकते थे। पत्रकारों का भी यही कहना था कि सरकार द्वारा आवंटित धन खिलाड़ियों के

लिए आसानी से मुहैया होना चाहिए। एक ऐसी दुरुस्त व्यवस्था होनी चाहिए जिससे सुनिश्चित हो कि यह पैसा सही लोगों तक पहुँचे। इसके अलावा उनके विचार से देश में प्रत्येक खेल–क्षेत्र के विकास के लिए एक बेहतर व्यवस्था होनी चाहिए और भारतीय खिलाड़ियों का बेहतर प्रबन्धन और देखभाल होने चाहिए।

धन आवंटन को लेकर विशिष्ट हस्तक्षेप से समस्या पर कुछ हद तक तो काबू पाया जा सकता है लेकिन इससे किसी व्यापक स्तर के प्रभाव की उम्मीद रखना बेमानी होगा। वह इसलिए, कि खिलाड़ियों द्वारा खेल छोड़ देने की वजहें एक–दूसरे से स्वतन्त्र नहीं हैं, बल्कि कुछ मामलों में तो एक वजह दूसरी वजह का कारण बनती है, वे एक–दूसरे में से ही निकलती हैं।

ऐसी स्थिति में बेहतरी लाने के लिए किए गए हस्तक्षेप के कदम भी इतने आसान और सीधे तो नहीं होंगे। बल्कि तमाम साझेदारों को अपने–अपने स्तर पर कई तरह के हस्तक्षेप करने होंगे। इन साझेदारों में प्रमुख हैं खिलाड़ी और उनका एकदम निकटतम सहयोगी ढाँचा (परिवार, शैक्षिक संस्थान), सरकार की खेल–प्रशासक संस्थाएँ, मीडिया, खेलों में निवेश की सम्भावनाएँ देखने वाला कॉरपोरेट जगत और खेलों का रस लेने और उन्हें प्रोत्साहन देने वाला एक वृहत्तर समाज। बड़े स्तर की खेल प्रतियोगिताओं में मिली हालिया सफलताओं (2011 में मिली क्रिकेट विश्वकप विजय, ओलिम्पिक और कॉमनवेल्थ खेलों के ताजा संस्करणों में मिले अब तक के सर्वश्रेष्ठ परिणामों) को देखते हुए तो यही लगता है कि उपरोक्त में से कुछ कदम उठाए गए हैं और उनके अच्छे परिणाम भी मिलने लगे हैं। भारतीय खेलों का प्रशंसक तो इसी उम्मीद में बैठा है कि निरन्तर और व्यापक स्तर पर किए गए प्रयासों से कुछ और कच्चे हीरे भी चमक उठेंगे।

***साईसुधा*** *ने बी.बी.सी., दिल्ली के साथ चार वर्ष से भी अधिक समय पत्रकारिता की है। बी.बी.सी. के अपने इस कार्यकाल के दौरान उनका अधिकांश काम खेलों और मानवीय सरोकारों पर केन्द्रित प्रसंगों पर रहा। अपने इस कार्यकाल के दौरान साईसुधा को कई खेल–प्रतियोगिताओं की रिपोर्टिंग करने का मौका मिला जैसे कि 2010 के कॉमनवेल्थ खेल, आई.पी.एल. और सन् 2011 का क्रिकेट विश्वकप और हॉकी विश्वकप। जून 2011 से वे गो स्पोर्टस् फाउण्डेशन से जुड़ी हुई हैं। साईसुधा के पास अन्ना विश्वविद्यालय, चैन्नई की मीडिया विज्ञान की स्नातकोत्तर उपाधि है। साईसुधा का ई–मेल है saisudha.sugavanam@gosports.in*

***गो स्पोर्टस् फाउण्डेशन*** *एक अलाभकारी संस्था है जो भारत के कुछ सर्वश्रेष्ठ एथलीटों के साथ काम करती है। फाउण्डेशन के जरिए इन एथलीटों को तरह–तरह की वित्तीय और अन्य प्रकार की सहायता दी जाती है। जी.एस.एफ. से मिले इस लगातार सहयोग के चलते इन एथलीटों ने बड़ी भारी सफलताएँ अर्जित की हैं और देश को गौरवान्वित किया है। फाउण्डेशन केवल दान और चन्दे के बूते चलती है और इच्छुक व्यक्तियों तथा कम्पनियों से मिलने वाले किसी भी प्रकार के योगदान का यह स्वागत करती है।*

# 17 मन के जीते जीत है, मन के हारे हार : खेल मनोविज्ञान की भूमिका

श्री अडवाणी

एक महत्वपूर्ण टेनिस मैच के निर्णायक सेट में आप 30–40 और 3–5 के स्कोर पर हैं। आपकी हथेलियों का पसीने–पसीने होना केवल आपकी शारीरिक मशक्कत की वजह से नहीं है। आपका दिल जोरों से धड़कने लगा है, और आपके माथे पर बाहर तो पसीने की बूँदें हैं, लेकिन भीतर ख्यालों की एक बाढ़ सी है। आपके मन पर बोझ हैः माँ–बाप की उम्मीदों पर खरा उतरते हुए जीतने का बोझ।

यह कोई आदर्श स्थिति नहीं है। मगर सब खिलाड़ी कभी न कभी तो स्वयं को इस स्थिति में पाएँगे ही। खेलों की प्रकृति ही ऐसी है।

तैयारी के लिए बहुत अधिक मशक्कत करनी पड़ती है। खिलाड़ी बनने के लिए किए जाने वाले अनगिनत बलिदान वास्तव में सराहनीय हैं। लेकिन जैसा अन्य सब बातों में होता है, यहाँ भी सही मार्गदर्शन जरूरी है।

हमारी संस्कृति में यह माना जाता है कि कड़ी मेहनत ही सफलता की कुंजी है। खेल के मैदान में जितना अधिक आप खेलेंगे, उतने ही बेहतर खिलाड़ी आप बनेंगे। कहते भी तो हैं, "अभ्यास कर–करके आप सम्पूर्णता तक पहुँच सकते हैं!''

लेकिन पूरी तरह से नहीं!

आप एक विशेष अन्दाज में तैराकी कर सकते हैं। हो सकता है कि आपका स्ट्रोक तकनीकी तौर पर बहुत अच्छा न हो, लेकिन उसे बेहतर से बेहतर तो किया जा सकता है, क्योंकि अभ्यास से आप पूर्णता की ओर बढ़ सकते हैं। लेकिन एक खिलाड़ी – और सच कहें तो किसी भी क्षेत्र के विद्यार्थी – के लिए आवश्यक है कि उसे निश्चित तौर पर यह मार्गदर्शन मिले कि सम्पूर्ण अभ्यास ही आपको सम्पूर्ण बनाता है ।

और इसके लिए चाहिए एक कोच – देखा जाए तो एक नहीं, कई कोच; विशेषज्ञों का एक दल। एक व्यावसायिक संगठन के सी.ई.ओ. के पास वाइस प्रेसिडेण्ट्स और मार्केटिंग, फाइनैन्स, एच.आर. तथा ऑपरेशन्स जैसे स्वतन्त्र विभागों के प्रमुखों के रूप में विशेषज्ञों की एक टीम होती है। अपनी कम्पनी के निर्विघ्न संचालन के लिए उसे सुनिश्चित करना होता है कि अपने लक्ष्य को पाने में मदद हेतु उसके पास सर्वश्रेष्ठ लोग हों। ठीक इसी तरह, एक खिलाड़ी को प्रभावी मार्गदर्शन के माध्यम से अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए कोचों का एक दल दरकार होता है।

आजकल एक कोच का होना ही काफी नहीं होता। पेशेवर खिलाड़ी भरे–पूरे दल के साथ इस टूर्नामैण्ट से उस टूर्नामैण्ट जाते दिखाई देते हैं। एक स्पोर्टस् कोच खेल की तकनीकी बारीकियों में, और रणनीतियाँ बनाने में मदद करता है। लेकिन पोषण, फिटनेस और मन–मस्तिष्क का पूरा–पूरा ध्यान रखने के लिए पेशेवरों के एक समूह की भी जरूरत रहती है।

मेरी विशेष दिलचस्पी तो सबसे ऊपर की उस मंजिल में रहती है, जो हमारे जीवन के हर विचार और काम को नियन्त्रित करती है, यानी हमारा मन–मस्तिष्क।

वापस उस मिथक की ओर लौटते हैं कि कड़ी मेहनत सफलता की गारण्टी है। बेहतरी को लेकर यह एक सीमित नजरिया है जो एक बहुत महत्वपूर्ण पहलू को नकारता है, और वह पहलू है हमारा मन।

सोचने के हमारे तौर–तरीके क्या हैं? उत्कंठा तथा चिन्ता के अपने स्तरों और कड़े व्यायाम पर हम किस प्रकार

प्रतिक्रिया करते हैं? यहाँ तक कि कुछ खास व्यक्तियों के प्रति भी हमारी क्या प्रतिक्रियाएँ होती हैं? एक खिलाड़ी इन सब बातों से बेखबर बना रहता है तो प्रगति में बाधा आ सकती है। और अब चूँकि खेल केवल शौक तक ही सीमित नहीं रह गए हैं, इनके दम पर एक व्यावहारिक और अच्छा करियर भी बन सकता है, इसलिए खिलाड़ी भी अपनी खेल–यात्रा की शुरुआत में ही जोरदार कोचिंग और मार्गदर्शन की तलाश में रहते हैं।

निस्सन्देह, किसी भी क्षेत्र में प्रदर्शन को तय करने में योग्यता का अपना महत्व है। लेकिन वह तो बस प्रदर्शित कौशल है जिसे हम चरितार्थ, साकार योग्यता कहते हैं। हमारे भीतर छिपा हुआ माद्दा और कौशल जिसे बेहतर प्रदर्शन के लिए बाहर निकाला जाना है, वह योग्यता है जिसका हम प्रदर्शन नहीं कर पाए। और यही वह जगह है जहाँ खेल मनोविज्ञान काम आता है।

*स्पोर्टस् माइण्ड कोचिंग आपको अपने ही मन–मस्तिष्क का लीडर बना देती है और फिर आप अपनी सफलता की गाथा खुद लिखते हैं! अपने आराम और सहजता के क्षेत्र से बाहर निकलकर ही हम कुछ बेहतरी हासिल कर सकते हैं। सहजता के क्षेत्र के भीतर रहकर हम जो कुछ भी करते रहे हैं, वह तो हमारे लिए पहले से ही जाना–पहचाना है। आगे बढ़ने के लिए हमें अपने आराम–क्षेत्र से बाहर निकलकर प्रयास–क्षेत्र में जाना होगा!*

खेल मनोविज्ञान की भूमिका को बेहतर ढंग से समझने के लिए हम कम्प्यूटर की उपमा का उपयोग करते हैं। यदि हम मन को एक कम्प्यूटर मान लें तो उसमें जाने वाला हर विचार उसका इनपुट है। हमारी इन्द्रियाँ – स्पर्श, दृष्टि, सूंघने की शक्ति, श्रवण और स्वाद – ग्राफिक यूजर इण्टरफेस (जी.यू.आई.) हैं जिनके जरिए जानकारी या सूचना अन्दर जा रही है। आउटपुट (हमारी भावनाएँ और हमारा व्यवहार) इनपुट पर हमारी प्रतिक्रिया है। हमारे आउटपुट की गुणवत्ता हमारे इनपुट की गुणवत्ता से तय होगी। प्रबल, सकारात्मक विचार और विश्वास होंगे तो हमारा प्रदर्शन भी प्रबल और सकारात्मक होगा। हम अपने कम्प्यूटर और अपने लैपटॉप के प्रति बहुत सावधान रहते हैं और एण्टी–वायरस का प्रयोग करते हैं। उसी तरह हमारे स्वयं के लिए भी एक एण्टी–वायरस जरूरी है। गरदन से ऊपर के हमारे शरीर की लगातार जाँच करते रहना बहुत जरूरी है।

खेल एक आध्यात्मिक अनुभूति है। उदाहरण के लिए, इस लेख की शुरुआत में जिस स्थिति विशेष का वर्णन था, उससे निपटने के लिए हमें अपने अस्तित्व की अन्तरतम गहराइयों में उतरकर, अपने सुरक्षित खजाने से अतिरिक्त खुराक लेकर, पहले तो अपने वर्तमान खेल के स्तर को सामान्य स्तर के पार ले जाना होगा और फिर अपने प्रतिद्वन्द्वी के खेल स्तर के पार। सही कोचिंग के माध्यम से बेहतर आत्म–ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है और खिलाड़ी प्रतिदिन अपने बारे में कुछ न कुछ नया खोज पाता है।

हमारे मस्तिष्क में से रोजाना करीब 50,000 विचार गुजरते हैं, जिनमें से 49,900 से भी ज्यादा, पूर्ण तौर पर सकारात्मक नहीं होते। हमारे मानसिक स्वास्थ्य के बारे में इससे क्या पता चलता है? स्वयं से हमारा अन्तरंग संवाद शायद उत्पादक होने की बजाय हानिकारक, प्रोत्साहक होने की बजाय हतोत्साहक होता है। हमारी सुबह बुरे समाचारों से शुरू होती है, अपने पिछले दिन के तनाव को हम ढोते हुए अपने आज के जीवन में ले आते हैं, और आज ही से आने वाले दिन की चिन्ता भी पालना शुरू कर देते हैं। खिलाड़ियों को सकारात्मक, खुशमिजाज और एकाग्रचित्त बने रहने की सबसे ज्यादा जरूरत होती है। उनके जीवन में नकारात्मकता के लिए कोई स्थान नहीं है। हाँ, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता कि यह हमारे अस्तित्व का अभिन्न हिस्सा तो है ही। लेकिन माइण्ड–कोचिंग के सहारे हम अपने दिमाग़ के सर्किट में, उसकी स्थापित अभिरचना में, बदलाव ला सकते हैं। हमारे विचार हमारे विश्वास और मान्यताओं को निर्मित करते हैं, फिर उनसे हमारी योग्यता स्थापित होती है, और तब जाकर हम अपनी योग्यतानुसार काम करते हैं और अन्ततः अपने इस काम के बूते कुछ परिणाम पाते हैं। यानी हमारी सोच वह शुरुआती बिन्दु है जिससे अन्तिम बिन्दु, यानी परिणाम, निर्धारित होता है।

पहले हम उसके बार में सोचें जो हम सोचते हैं, और फिर ... सोचें!

हम अपनी क्षमताओं का मुश्किल से 5 प्रतिशत ही उपयोग में लाते हैं। हम तभी ज्यादा 'हम' बन सकते हैं

जब हमें हमारा व्यावहारिक लचीलापन बढ़ाने वाला कोई प्रशिक्षक मिले। न जाने कितनी बार हमने कोई काम देखा और हमारे मुँह से तुरन्त निकला, ''नहीं, मैं यह नहीं कर सकता, यह मेरे बस का नहीं।'' और फिर ... हमने वह काम कर ही दिया आखिर! सवाल यह है कि हमें कौन रोक रहा था वह काम करने से? हमारी सीमाबद्ध धारणाएँ? हमारा पिछला अनुभव? हम कैसे जानें–समझें कि इस प्रकार की विचार–प्रक्रियाएँ हमें अपने अगले स्तर तक जाने से रोक रही हैं? और हम इस दिक्कत पर विजय कैसे पाएँ? स्पोर्टस् माइण्ड कोचिंग आपको अपने ही मन–मस्तिष्क का लीडर बना देती है और फिर आप अपनी सफलता की गाथा खुद लिखते हैं! अपने आराम और सहजता के क्षेत्र से बाहर निकलकर ही हम कुछ बेहतरी हासिल कर सकते हैं। सहजता के क्षेत्र के भीतर रहकर हम जो कुछ भी करते रहे हैं, वह तो हमारे लिए पहले से ही जाना–पहचाना है। आगे बढ़ने के लिए हमें अपने आराम–क्षेत्र से बाहर निकलकर प्रयास–क्षेत्र में जाना होगा!

दस–बारह साल की उम्र तक आते–आते हमारा लगभग 90 प्रतिशत वयस्क व्यवहार स्थापित हो चुका होता है। यहीं पर अभिभावक की भूमिका का महत्व समझ में आता है। एक खेल मनोविज्ञानी होने के नाते मैं अभिभावक प्रशिक्षण (पेरेण्ट कोचिंग) को खिलाड़ी के खेल–मानस प्रशिक्षण (स्पोर्टस् माइण्ड कोचिंग) के एक महत्वपूर्ण हिस्से के तौर पर शामिल करता हूँ। एक खिलाड़ी के अभिभावकों को दरअसल सामान्य अभिभावकों के मुकाबले ज्यादा मदद की जरूरत होती है, क्योंकि किसी खिलाड़ी का अभिभावक होना एक बड़ी जिम्मेदारी है। वे क्या बोलते हैं और क्या करते हैं, वे क्या नहीं बोलते और क्या नहीं करते, इन सब बातों का सीधा असर उनके बच्चे के दिमाग पर पड़ता है। माँ–बाप अपने बच्चे के प्रत्यक्ष प्रभाव–क्षेत्र में आते हैं। उनकी कथनी और करनी एक न एक दिन उनके बच्चे की कथनी और करनी में किसी न किसी रूप में जरूर झलकेगी।

मुझे याद है आज से कोई दो साल पहले मैं राज्य स्तर के एक जूनियर क्रिकेटर को कोचिंग दे रहा था, जो अपनी पिछली कुछ पारियों में इकाई के अंक से आगे ही नहीं बढ़ पाया था। वह एक ऊर्जावान सलामी बल्लेबाज है लेकिन पता नहीं क्यों वह फॉर्म में नहीं आ पा रहा था। बात करने पर पता चला कि असल कुसूर उसके पिता का था। अपने बच्चे के खेल के प्रति उनका जरूरत से अधिक जोश और दिलचस्पी परेशान करने वाली और दमघोंटू साबित हो रही थी। नतीजतन, इस वाले मामले में मुझे बेटे की बजाय बाप की कोचिंग ज्यादा करनी पड़ी। झटपट कुछ बदलाव किए गए। एक पखवाड़े के बाद, एक ही टूर्नामैण्ट में उसी बल्लेबाज ने 70, 80, और दो शतक बनाए।

टाइगर वुड्स के साथ गोल्फ खेलने वाले कई पेशेवर खिलाड़ियों ने उसके साथ खेलते समय पाया कि उसकी तकनीक उनकी तकनीक से बेहतर नहीं थी। लेकिन एक बात उन्हें सराहनीय लगी। वह थी उसके खेल–मनोवैज्ञानिक द्वारा उसके खेल में लाई गई मानसिक दृढ़ता जिसके दम पर वह अपने मन को शान्त रख सकता था और कठिन परिस्थितियों में भी पूरी स्पष्टता से सोच पाता था। उसका नियन्त्रित आक्रामक रवैया दृढ़ता से प्रतिद्वन्द्विता का सामना करने में उसकी मदद करता था और सुरक्षित खेलने से भी उसे दूर रखता था। बिलियर्डस् और स्नूकर में सात बार के विश्व चैम्पियन पंकज अडवाणी के बारे में उसके प्रतिस्पर्धी यह मानते हैं कि वह किसी मैच में पिछड़ रहा होता है तो दुनिया का सबसे खतरनाक खिलाड़ी बन जाता है। वे कहते भी हैं: ''जब बेड़ा गर्क हो रहा होता है, पंकज उफान पर आ जाता है!'' मुझे पंकज के साथ बहुत सालों तक काम करने का सौभाग्य मिला है, और मैंने बहुत पास से यह देखा है कि किस तरह उसकी मानसिक दृढ़ता हर दिन बढ़ती ही चली गई है।

रॉजर फेडरर जेन (यानी ध्यान) अवस्था में टेनिस खेलते हैं। कोर्ट पर उनकी ध्यानस्थ मुद्रा जता देती है कि खेल एकाग्रता बढ़ाने का कितना अद्‌भुत तरीका हो सकते हैं और श्रेष्ठता अर्जित करने का कितना बढ़िया प्लेट्फॉर्म। पंकज को 'मुस्कुराता कातिल' कहा जाता है। ऊपर–ऊपर से वह बड़ा शान्त नजर आता है, लेकिन अन्दर ही अन्दर वह बड़ा आक्रामक होता है। सामने कोई भी हो, खेलते समय वह किसी को नहीं बख्शता। खेल हमारा चरित्र–निर्माण करते हैं और अपनी विधियों के बूते खेल–मनोविज्ञान किसी भी खिलाड़ी के करियर को उसका जीवन बदल देने वाला मोड़ दे सकता है।

खेल–मनोविज्ञान के क्षेत्र में परामर्श खेल के मैदान पर भी हो सकता है और उसके बाहर कहीं और बैठकर भी ('मैदान' फिर चाहे खेल–कोर्ट हो या फिर टेबल

के किसी खेल का खेल–क्षेत्र या किसी और प्रकार का मैदान)। खेल के दौरान बेहतर प्रदर्शन, एकाग्रता और आत्म–विश्वास के लिए मानसिक रणनीतियाँ और तकनीकें सिखाई जाती हैं। और जिस समय खेला नहीं जा रहा हो, आमने–सामने की अन्तरंग कोचिंग में गम्भीर मुद्दों को सम्बोधित किया जाता है और ऐसे विशेष मनोवैज्ञानिक और भावनात्मक मसलों पर काम किया जाता है जिनका सम्बद्ध खेल से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध हो। एक खिलाड़ी के जीवन में जो कुछ भी घटता है, उसका असर उसके खेल और खेलने, दोनों पर पड़ता है। इसलिए सभी समस्याओं का समाधान होना जरूरी है।

हार को पचा पाना कभी आसान नहीं होता। न खिलाड़ी के लिए, और न ही खिलाड़ी से जुड़े लोगों – अभिभावक और कोच – के लिए। मैंने कई अभिभावकों को बच्चे के खराब प्रदर्शन के बाद उसका हौसला बढ़ाने की बजाय सबके सामने उसे डाँटते देखा है। अपने बच्चे का मनोबल गिराने और उसके आगामी प्रदर्शनों को नुकसान पहुँचाने का इससे बढ़िया तरीका कोई और नहीं हो सकता। अभिभावकों के लिए अपने बच्चे की हार से निपटने का सबसे उम्दा तरीका है चुप रहना और तब ही बोलना जब आपसे कुछ बात की जाए। अपने मैच के बारे में खिलाड़ी अपने कोच से बात करते हैं। अपने माता–पिता से तो वे बस सांत्वना और समझदारी चाहते हैं। हमें यह तो समझना ही होगा कि किसी भी खिलाड़ी के विकास के लिए असल में हार एक जरूरी चीज है। जैसा कि बिलियर्डस् के चैम्पियन पंकज अक्सर फर्माते हैं: ''जीत आपको एक कदम आगे ले जाती है। और हार, दस कदम।'' हारना कौन चाहता है, लेकिन जब हार गले आन ही पड़े तो उसे कुछ सीखने, और आगे बढ़ने के मौके के रूप में देखना चाहिए।

मन भी अजब ही होता है। वह आपका सबसे अच्छा दोस्त भी हो सकता है, तो सबसे बुरा दुश्मन भी। खेलों में, सुप्रशिक्षित मन के जीतने की सम्भावना अधिक होती है। इससे मुझे नेल्सन मण्डेला की बात याद आई, ''हमारा सबसे गहरा डर यह नहीं होता कि हम अयोग्य या अपर्याप्त हैं। हमारा सबसे गहरा डर तो होता है कि हम बेहद शक्तिशाली हैं।''

और शक्तिशाली हम वाकई हैं!

***श्री अडवाणी*** *ने खेल मनोविज्ञान पर पीएच.डी. थीसिस प्रस्तुत की है। इस समय वे खिलाड़ियों, कम्पनियों, अभिनेताओं, शिक्षकों की कोचिंग पर काम करने वाली संस्था माइण्ड कैप्टेन कन्सल्टिंग के मुख्य कोच हैं।*

*वे पंकज अडवाणी, रॉबिन उथप्पा, शीतल गौतम, सुशील कुमार और कई उभरते खिलाड़ियों के स्पोर्टस् माइण्ड कोच रह चुके हैं। श्री एक न्यूरो लिंग्विस्टिक प्रोग्रामिंग प्रैक्टिशनर भी हैं।*

# 18 स्कूलों में खेल : प्रावधान और चलन

रेखा बड़सिवाल

शिक्षा पर तमाम नीति दस्तावेज लगभग हमेशा ही स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा की अपरिहार्य भूमिका का हवाला देते हैं। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005 पैरवी करती है कि ''स्वास्थ्य सम्बन्धी सरोकारों की बुनियादी समझ जरूरी है, लेकिन और भी अधिक महत्वपूर्ण है स्वास्थ्य, कौशल और शारीरिक तन्दुरुस्ती का अनुभव और विकास, जिस तक खेलकूद, व्यायाम और व्यक्तिगत तथा सामुदायिक स्वास्थ्य सम्बन्धी आचरण के साथ व्यावहारिक सम्बन्ध के माध्यम से पहुँचा जा सकता है।''खेलों को लेकर हमारा दृष्टिकोण विकसित हुआ है। अब हम इनमें अन्य विषयवस्तु को भी शामिल करते हैं और इन दोनों को एकीकृत करने पर बल भी देते हैं ताकि स्वास्थ्य, स्वच्छता और शारीरिक शिक्षा की हमारी समझ बढ़ सके।[1]

लेकिन इस महत्वाकांक्षा को हासिल करने के लिए शिक्षानीति के समन्वित प्रयासों, अध्यापकों और प्रशासकों द्वारा मुहैया करवाए गए पर्याप्त बुनियादी ढाँचों, अच्छी सुविधाओं और उचित अवसरों का होना आवश्यक होगा। पोजिशन पेपर भी इस बात की ओर ध्यान दिलाता है कि स्कूलों में स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा, महज 'गेम्स और स्पोर्टस् पीरियड' तक सीमित होकर रह गई है। इस निबन्ध में, स्कूलों में लगने वाले 'गेम्स और स्पोर्टस्' पीरियड के उद्देश्य, व्यवस्था और चलन के बारे में चर्चा का प्रयत्न किया गया है। इसके लिए यह बच्चों, अभिभावकों, अध्यापकों, शारीरिक–शिक्षा शिक्षकों और प्राचार्यों से हुई अनौपचारिक बातचीत से मिली जानकारी का उपयोग करता है।

## उद्देश्य

सभी स्कूलों में उनकी पाठ्यचर्या के एक हिस्से के तौर पर गेम्स और स्पोर्टस् को रखा जाता है। स्कूल की समय–सारिणी में उनका प्रावधान किया गया दिखाई देता है। सभी हितधारक इस बात पर सहमत थे कि स्कूलों में गेम्स और स्पोर्ट्स को समय देना जरूरी है ताकि बच्चों में शारीरिक स्वास्थ्य को बढ़ावा मिले। प्रशासकों का कहना था कि बच्चों के समग्र विकास के लिए यह बेहद जरूरी है क्योंकि यह उनकी हिचकिचाहट, डर और तनाव को कम करता है, और उन्हें पराए लोगों से मिलने–जुलने के अवसर देता है जिससे उनकी सामाजिकता का विस्तार होता है। दो स्कूली प्राचार्यों ने यह भी जोड़ा कि आदर्श रूप से तो ''खेलों को अन्य विषयों के बराबर समय दिया जाना चाहिए, बल्कि उनसे भी थोड़ा अधिक ही'', क्योंकि बच्चे के व्यक्तित्व–विकास की दृष्टि से यह बहुत महत्वपूर्ण है और इसके चलते बाकी सब विषयों में भी उसकी पढ़ाई पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। उनका कहना था कि खेल के माध्यम से बच्चे अनुशासन, नियम, नियन्त्रण और वक्त की पाबन्दी सीखते हैं।

एक और प्रमुख कारण सबकी सूची में सबसे ऊपर रहा। वह यह कि खेलकूद बच्चे के लिए ताजगी का साधन बनते हैं, विशेष तौर से इसलिए कि उनका मन–मस्तिष्क स्कूल में लगातार पढ़ते रहने से ऊब और थकावट का शिकार होता है। बच्चों ने जोर देकर कहा कि स्पोर्टस् पीरियड के बिना तो स्कूल बड़े नीरस और उबाऊ हो जाएँगे। सभी माँ–बाप का कहना था कि खेलना बच्चों के लिए मनोरंजन का काम है और स्कूलों में गेम्स और स्पोर्ट्स का कालखण्ड, विषय–कालखण्डों के बीच में रखा जाना चाहिए ताकि बच्चे तरोताजा, सक्रिय मन से अपनी पढ़ाई पर ध्यान केन्द्रित कर सकें। दो अभिभावकों ने इस बात की ओर इशारा भी किया कि खेलकूद के कारण बच्चे नियमित रूप से स्कूल जाने के लिए उत्साहित रहते हैं और स्कूल में उन्हें मजा आने लगता है।

## स्कूलों में खेलों के लिए प्रावधान – समय और सुविधाएँ

अभिभावकों को आकर्षित करने के लिए ''बच्चे का समग्र विकास'' स्कूलों द्वारा प्रयुक्त आम भाषा का हिस्सा बन गया है। इसी के मद्देनजर, विशेषतौर से निजी स्कूलों में, बढ़िया खेल–सुविधाएँ मुहैया करवाने पर काफी बल दिया जा रहा है। इसमें आवश्यक बुनियादी ढाँचा भी शामिल है और बच्चों के मार्गदर्शन के लिए समुचित मानव–संसाधन भी। परिष्कृत और बेहतर खेल–सुविधाओं वाले स्कूल समाज के विशिष्ट, उच्च–मध्यम वर्ग को

अपनी सेवाएँ दे रहे हैं। मध्यम वर्ग को अपनी सेवाएँ देने वाले निजी स्कूल ये सुविधाएँ माँग होने पर मुहैया करवाते हैं। अधिकांश निजी स्कूलों में ऐसे क्लबों का प्रावधान रहता है जहाँ बच्चे शुल्क चुकाकर सामान्य गेम्स और स्पोर्टस् पीरियड में होने वाले खेलकूद के अलावा अपने दूसरे शौक पूरे कर सकते हैं, बशर्ते कि उनके अभिभावक उनका खर्च वहन कर सकते हों। सरकारी स्कूलों के बच्चों को तो केवल गेम्स और स्पोर्टस् पीरियड पर ही सन्तोष कर लेना पड़ता है, क्योंकि खेलकूद की सामग्री को आम तौर पर उनकी पहुँच से दूर रखा जाता है। केवल 'खेल दिवस' जैसे विशेष अवसरों पर ही उन्हें इस सामग्री का इस्तेमाल करने का मौका मिलता है।

ज्यादातर प्राइवेट स्कूलों के पास विभिन्न खेलों के लिए आवश्यक खेल सामग्री तो होती है लेकिन विशेष किस्म के खेल मैदान कुछ ही स्कूलों में होते हैं। अधिकतर स्कूलों में, जरूरत पड़ने पर ही, केवल आन्तर– और अन्तर–स्कूली प्रतियोगिताओं के दौरान ये सुविधाएँ तैयार की जाती हैं। बच्चों ने बताया कि गेम्स और स्पोर्टस् के दिन वे अपना निजी बैडमिण्टन या टेनिस रैकेट या क्रिकेट बल्ला स्कूल लेकर जाते हैं। हाँ, जो बच्चे अपना खेल सामान अपने साथ स्कूल ले जाना भूल जाते हैं, स्पोर्टस् पीरियड के दौरान वे चीजें उन्हें स्कूल से भी दी जा सकती हैं। अब चूँकि बच्चे अपनी व्यक्तिगत खेल सामग्री स्कूल ले जाते हैं और विशेष किस्म के खेल–मैदान घर या स्कूल में उपलब्ध नहीं होते, ऐसे में खेलने की पसन्दीदा जगह चुनने के सन्दर्भ में मित्र–मण्डली आदि जैसे कारक और भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

अधिकांश (9/15) विद्यार्थियों का कहना था कि उन्हें स्कूल की बजाय घर पर खेलना ज्यादा अच्छा लगता है। गिनवाए गए कारण थे उन दोस्तों की उपलब्धता जिनके साथ खेलने में उन्हें आनन्द आता है और खेलने के समय का लचीलापन। एक लड़की ने बताया कि चूँकि उसकी क्लास के साथी दूसरे सेक्शनों में चले गए हैं और उसके स्कूली मित्र उसके साथ खेलने के लिए उपलब्ध नहीं हैं, इसलिए वह अपने घर पर ही अपने कुछ दोस्तों के साथ खेलना पसन्द करती है। कुछ बच्चों को घर की बजाय स्कूल में खेलने में मजा आता था। दिया गया एक कारण था कि वहाँ उनके दोस्त होते हैं (3/15) जबकि कुछ (3/15) ने स्कूल में बेहतर खेल–सुविधाओं के उपलब्ध होने का कारण बताया।

अधिकांश स्कूलों में नीति और कक्षा के अनुसार प्रति सप्ताह खेल के 2–4 पीरियड का प्रावधान होता है।

*इससे बच्चों को यह अप्रत्यक्ष रूप से यह सन्देश मिलता है कि गेम्स और स्पोर्टस् की कोई अहमियत नहीं है। पढ़ाई से तो उनका कोई मुकाबला ही नहीं है।*

जैसे–जैसे बच्चे ऊपर की कक्षाओं की ओर बढ़ते जाते हैं, उन्हें आधिकारिक रूप से मिलने वाले गेम्स और स्पोर्टस् पीरियड कम होते जाते हैं। माध्यमिक स्कूल और बड़ी कक्षाओं में जाते ही, सारा ध्यान प्राइमरी कक्षाओं में खेले जाने वाले 'डॉग एण्ड द बोन' और कोड़ा जमालशाही जैसे खेलों से हटाकर बास्केटबॉल, क्रिकेट और बैडमिण्टन जैसे संगठित खेलों पर दिया जाने लगता है। बच्चों के खेलों में यह परिवर्तन सामाजिक और नैतिक विकास के साथ–साथ उनकी बढ़ती शारीरिक और संज्ञानात्मक क्षमताओं का द्योतक होता है।

उम्र बढ़ने पर, खेल–पीरियडों की संख्या कम होने के साथ–साथ उन्हें मिलने वाले कुल खेल–समय में भी कटौती हो जाती है। कुछ हद तक तो यह पढ़ाई का बोझ बढ़ने के कारण होता है और कुछ हद तक सामाजिक कारकों के चलते बच्चों की रुचि में आए बदलाव की वजह से। स्कूल में स्पोर्टस् पीरियड का उपयोग अक्सर दूसरे विषयों की अतिरिक्त कक्षा के रूप में कर लिया जाता है। अकादमिक वर्ष के अन्तिम सत्र में ऐसा अक्सर होता है। इससे बच्चों को यह अप्रत्यक्ष रूप से यह सन्देश मिलता है कि गेम्स और स्पोर्टस् की कोई अहमियत नहीं है। पढ़ाई से तो उनका कोई मुकाबला ही नहीं है। घर पर भी, माँ–बाप यह सुनिश्चित करते हैं कि उनके बच्चे ट्यूशन इत्यादि में जुट जाएँ। खेलों के लिए उनके पास कोई वक्त बचता ही नहीं है। माँ–बाप का यह रवैया उनके उस विचार के उलट है जो वे स्कूलों में खेलों के महत्व को लेकर व्यक्त करते हैं।

भोजनावकाश में और छुट्टी के दिन लड़के और लड़कियाँ किस प्रकार की भागीदारी करते हैं, इससे समाजीकरण की भूमिका स्पष्ट हो जाती है। छुट्टी के दिन सुबह का समय खेल में बिताने वाले बच्चों में अधिकांश (5/8) लड़के होते हैं। भोजनावकाश के दौरान भी लड़कियों (3/9) के मुकाबले लड़के (6/9) ही खेलने के लिए

वक्त निकालने की अधिक कोशिश करते हुए मिलते हैं। इससे पहले कि बच्चा दुनिया को समझने लगे, आसपास का माहौल वयस्कों की जेण्डर–सम्बन्धी अपेक्षाओं के हिसाब से ढलने लगता है। जेण्डर सम्बन्धी भूमिकाओं के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण को घर पर और स्कूल में एक विशेष प्रकार का व्यवहार प्रोत्साहित और हतोत्साहित करके मजबूती दी जाती है। लड़कियों से उम्मीद की जाती है कि वे शान्त रहेंगी और आक्रामक व्यवहार नहीं करेंगी, और इसका प्रभाव इस बात पर पड़ता है कि वे कौन से खेल खेलेंगी, कितना समय खेलेंगी और कब–कब खेलेंगी।

आमतौर पर स्कूलों में जिस प्रकार गेम्स और स्पोर्टस् पीरियड संचालित किए जाते हैं, उस पर केवल एक सरसरी नजर डालकर भी हम स्कूलों में उपलब्ध खेल सुविधाओं, खेलने के लिए बच्चों को मिलने वाले समय, और खेलों को दिए जा रहे प्रोत्साहन का अन्दाजा लगा सकते हैं।

## खेल पीरियड संचालित करने के तरीके

अधिकांश स्कूलों (16/25) में, विद्यार्थियों को छूट दी जाती है कि वे अपनी पसन्द का खेल चुनें और खेलें। इसमें स्पोर्टस् टीचर का कोई हस्तक्षेप नहीं रहता। वे अपने ढंग से, किन्हीं पैमानों को ध्यान में रखकर, खेलने के लिए अपने समूह बनाने को स्वतन्त्र होते हैं। विद्यार्थियों ने बताया कि आमतौर पर वे अपने हमउम्र समलैंगिकों के साथ खेलना पसन्द करते हैं। वहीं कुछ स्कूलों (6/25) में पूरी कक्षा एक साथ अपनी पसन्द का खेल खेलती है। पूरी कक्षा एक समूह में खेलती है और लिंग–आधारित कोई विभाजन नहीं होता। स्पोर्टस् टीचर का कोई हस्तक्षेप नहीं होता, न तो खिलाड़ी के रूप में और न ही सुपरवाइजर की भूमिका में।

बहुत ही कम स्कूलों (3/25) में विद्यार्थियों को व्यक्तिगत रूप में, अपने हिसाब से खेलने की आजादी होती है, और कुछ चुनिन्दा विद्यार्थियों को स्पोर्टस् टीचर किसी खेल विशेष में प्रशिक्षित करते हैं। इन तीन स्कूलों में से एक के स्पोर्टस् टीचर ने बताया कि चूँकि उनकी विशेषज्ञता केवल एक ही खेल में है, इसीलिए वे एक 'निर्धारित' संख्या में विद्यार्थियों को प्रशिक्षित करने की कोशिश करते हैं ताकि स्कूल के लिए उस खेल की एक अच्छी–खासी टीम खड़ी हो सके। प्रशिक्षण देते समय, स्पोर्टस् टीचर अपने विद्यार्थियों पर पैनी नजर रखता है और अपने हर प्रशिक्षु को समुचित निर्देश और सलाह देता है।

ये तरीके किसी एक स्कूल–विशेष में ही प्रयोग नहीं होते। इन तरीकों का होना या न होना तमाम कारकों पर निर्भर करता है। मसलन, स्पोर्टस् पीरियड के दौरान होने वाली गतिविधियों के बारे में स्कूल की नीति, स्पोर्टस् टीचर की उपलब्धता और उसकी प्रवृत्ति तथा स्कूल के कैलेण्डर के हिसाब से उपलब्ध खेल समय। इसलिए सम्भव है कि वही विद्यार्थी/कक्षा, एक ही शैक्षिक वर्ष में अलग–अलग समय पर इन सभी तरीकों से होकर गुजरें।

जब बच्चों को अपने हिसाब से, अपनी पसन्द का खेल अपने हमउम्र साथियों के साथ खेलने की आज़ादी होती है, तब उनके और उनके स्पोर्टस् टीचर के बीच या तो बिल्कुल संवाद नहीं होता या बहुत कम संवाद होता है। गेम्स और स्पोर्टस् पीरियड को आमतौर पर इसी तरीके से संचालित किया जाता है। ऐसे में अधिकांश विद्यार्थियों को खेल की तकनीकी बारीकियाँ सीखने और अपने स्पोर्टस् शिक्षक के मार्गदर्शन में अपने कौशल और प्रदर्शन सुधारने का मौका नहीं मिलता। यहाँ यह बात ध्यान में रखना जरूरी है कि भारत में अधिकांश विद्यार्थियों के लिए स्कूल ही वह एकमात्र जगह होती है जहाँ उन्हें संगठित खेल गतिविधियों में भाग लेने और उन्हें सीखने का मौका मिलता है।

## लीक से हटकर

सभी स्कूल आन्तर–खेल गतिविधियाँ आयोजित करते थे और अन्तर–स्कूल खेल प्रतिस्पर्धाओं में भाग लेते थे। शिक्षकों और प्राचार्यों ने इस बात पर बल दिया कि उनका स्कूल यह सुनिश्चित करता है कि प्राथमिक कक्षाओं का प्रत्येक विद्यार्थी कम से कम एक खेल में तो भाग ले। अलबत्ता माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक कक्षाओं में इस तरह के प्रयास नहीं किए जाते। पाया गया कि इच्छुक और चुनिन्दा विद्यार्थियों के लिए खेल प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती हैं। विद्यार्थियों ने भी यही कहा कि उन्हें खेल प्रतिस्पर्धाओं में भाग लेना अच्छा लगता है और वे भाग लेते भी हैं पर आमतौर पर वे शुरुआती दौर में ही बाहर हो जाते हैं। खेल का कौशल और उसकी बारीकियाँ समझने की योग्यता न हो तो ऐसा होना लगभग तय होता है, विशेष तौर से इसलिए कि यह सब हासिल करने के लिए किसी विशेषज्ञ का मार्गदर्शन मिलना आवश्यक होता है।

*यह तो स्पष्ट है कि केवल उन कुछेक विद्यार्थियों को ही प्रशिक्षण दिया जाता है जिन्हें स्कूल का प्रतिनिधित्व करने की दृष्टि से उपयोगी और महत्वपूर्ण समझा जाता है।*

बच्चों के अनुसार अन्तर–स्कूली खेल टूर्नामेन्ट में भाग लेने के लिए चयन उनके स्पोर्टस् टीचर द्वारा किया जाता है। चयन स्पोर्टस् की कक्षाओं के दौरान और खेल दिवस पर उनके प्रदर्शन के आधार पर होता है। इन शिक्षकों का कहना था कि चूँकि वे ज्यादातर विद्यार्थियों को लगभग पूरे साल खेलते हुए देखते हैं, इसलिए टीम चुनने में उन्हें कोई कठिनाई पेश नहीं आती। विद्यार्थियों में छुपी सम्भावनाओं, योग्यताओं और खेल के प्रति उनके लगाव और भावना को समझ पाने के लिए आवश्यक है कि शिक्षक साल भर अपने विद्यार्थियों के प्रदर्शन पर लगातार नजर रखे और उन द्वारा किए गए प्रदर्शन पर उनसे बातचीत करे। असल में शायद ऐसा होता नहीं है। लगता है कि इसीलिए एक बच्चे की स्वाभाविक, प्राकृतिक क्षमताओं और शारीरिक विशिष्टताओं (जैसे ऊँचे कद का होना) को चयन की प्रक्रिया में अत्यधिक महत्व दे दिया जाता है।

अन्तर–स्कूली टूर्नामैण्ट के लिए चयनित विद्यार्थियों हेतु स्कूल में ही विशेष प्रशिक्षण सत्र आयोजित किए जाते हैं। ये विशेष सत्र या तो स्कूल खुलने के पहले सुबह–सुबह, या कक्षाएँ समाप्त हो जाने के बाद शाम के समय, या फिर शून्य काल में रखे जाते हैं। प्राचार्यों ने बताया कि अन्तर–स्कूली विशेष प्रशिक्षण के लिए विशेषज्ञ–कोच अतिथि–प्रशिक्षक के तौर पर बुलाए जाते हैं ताकि विद्यार्थियों को अपना खेल–स्तर सुधारने में मदद मिले। यह तो स्पष्ट है कि केवल उन कुछेक विद्यार्थियों को ही प्रशिक्षण दिया जाता है जिन्हें स्कूल का प्रतिनिधित्व करने की दृष्टि से उपयोगी और महत्वपूर्ण समझा जाता है।

**उपसंहार**

स्पष्ट ही है कि विद्यार्थियों के लिए खेल सुविधाओं की उपलब्धता, उनके स्कूल पर निर्भर करती है। और स्कूल का चुनाव माँ–बाप की सामाजिक–आर्थिक हैसियत के हिसाब से होता है। सामाजिक–आर्थिक दृष्टि से ऊँचे तबकों को अपनी सेवाएँ देने वाले स्कूल खेलों और स्वास्थ्य को लेकर अपनी नीतियों में ज्यादा सचेत और उदार दिखाई पड़ते हैं। ऐसे में, 'आम जन' को उनके हाल पर छोड़ दिया जाता है – उनके लिए किसी भी सामाजिक संस्था या एजेंसी की ओर से हस्तक्षेप नहीं किया जाता।

गेम्स और स्पोर्टस् पीरियड संचालित करने के तरीके और खेलों के लिए विद्यार्थियों के चयन की प्रक्रिया इस सोच के स्वीकार्य की ओर इशारा करते हैं कि खिलाड़ी पैदाइशी होते हैं, बनाए नहीं जाते। नतीजतन, प्रशिक्षण और विकास की भूमिका को दरकिनार कर दिया जाता है। इससे यह समझ में आता है कि हमारे स्कूल बस अन्तर–स्कूली स्तर पर उपलब्धियों तक सीमित संकीर्ण दृष्टिकोण रखते हैं और नतीजतन एक औसत विद्यार्थी की रुचियों और जरूरतों की अनदेखी करते हैं। इन्हीं कारणों से बच्चे और उनके अभिभावक खेलों को कभी एक करियर–विकल्प के रूप में नहीं देखते।

**सन्दर्भ :**


1. Position Paper: National Focus Group on Health and Physical Education, NCERT
2. Novosti Press Agency. (1973).Sports in Soviet Schools. The Elementary School Journal, Vol. 74, No. 1 (Oct., 1973), pp. 28-33
3. Berk, Laura. (1996). Child Development. Prentice Hall of India
4. Bredemeier, B. J., & Shields, D. L. (1987). Moral growth through physical activity: A structural/developmental approach in Chambers, Sam T. (May, 1991). Factors Affecting Elementary School Students' Participation in Sports. The Elementary School Journal, Vol. 91, No. 5
5. CCE, 2009. CBSE


***रेखा बड़सिवाल*** *एक शिक्षक–प्रशिक्षक हैं। वे दिल्ली के एक सरकारी स्कूल में प्राइमरी स्कूल टीचर रही हैं और इससे उन्हें स्कूली जीवन को समझने में मदद मिली। वर्तमान में वे दिल्ली विश्वविद्यालय के मिराण्डा हाउस महाविद्यालय में असिस्टेन्ट प्रोफेसर हैं। उनसे ई–मेल पर सम्पर्क कर सकते हैं – rekhabadsiwal@gmail.com*

# 19 खेलो, प्यार से

उषा मुकुन्दा नी आयंगर

*''जानते हो खेल में क्या है जो मुझे सबसे अच्छा लगता है? खेलने का मौका।''*

*– माइक सिंगलटेरी,*

*अमेरिका का सितारा फुटबॉल खिलाड़ी और अब कोच।*

**भी**ड़ खुश हो चिल्लाई और कुछ ही पलों में, ऊँचे कद का एक चश्माधारी व्यक्ति उमस भरे उस हॉल से बड़ी निराशा के साथ अपना रास्ता बनाते हुए बाहर निकला। भीड़ को ठेलते हुए वह जब हमारी जिज्ञासा भरी निगाहों के आगे से गुजर रहा था, तो मैंने उसे बड़बड़ाते हुए सुना – ''बादशाह नहीं रहा, बादशाह जिन्दाबाद।'' तब मैं 12 बरस की थी और अपने जीवन के पहले टेबल टेनिस मैच के लिए कलकत्ता के वाई.एम.सी.ए. आई हुई थी। वह व्यक्ति कई सालों से बंगाल का टेबल टेनिस चैम्पियन रहा आया कल्याण जयन्त था जो अभी–अभी इ. सोलोमन नाम के एक किशोर के हाथों अपदस्थ हुआ था। उस समय तो मुझे उसकी उस बड़बड़ाहट के निहितार्थ समझ में नहीं आए, लेकिन जैसे–जैसे मैं अपने खेल, अपनी रैंकिंग में आगे बढ़ती गई, वह पल रह–रह कर मेरी यादों में कौंध जाता। पर क्यों? मुझे लगता है कि वह पल कई बातों का प्रतीक था – सफलता और असफलता की क्षणभंगुरता का प्रतीक, हालाँकि हम असफलता को हमेशा इस तरह से नहीं देखते; इस सच्चाई का प्रतीक कि खेलों में सफलता और प्रसिद्धि कुछ इस तरह सिर चढ़कर बोलते और अहंकार पैदा करते हैं कि यह स्वीकारना बहुत मुश्किल होता है कि ये हमेशा नहीं रहने वाले; और अन्त में, इस बात का प्रतीक, कि एक दिन जब प्रतिष्ठा और तारीफ की नियमित रसद खत्म हो जाएगी, तब खेल के साथ बना रहने वाला हमारा रिश्ता कैसा होगा?

## शारीरिक गतिविधियों और खेलों में आनन्द

मेरे लिए यह सोच पाना कठिन है कि ऐसा भी कोई छोटा बच्चा होगा जो मौका मिलने पर हवा की तरह नहीं दौड़ पड़ेगा। यह तत्काल अन्दर से उठने वाला उल्लास से भरा शारीरिक मनोरंजन और आनन्द का जज्बा है। लेकिन वही बच्चा जब बड़ा होता है और स्कूल जाने लगता है तो व्यवस्था और छँटाई का दबाव आने लगता है। टीमें बनती हैं, उनके बीच मैच होते हैं, जीतना और हारना ही सब कुछ होने लगता है। पदक, पुरस्कार, प्रसिद्धि अपना सिर उठाने लगते हैं और देखते ही देखते विद्यार्थी दो धड़ों में बँट जाते हैं – वे जो योग्य हैं, और वे जो योग्य नहीं हैं। स्कूल में होने वाली वार्षिक दौड़ों और प्रतियोगिताओं में बस तनाव ही तनाव बना रहता है। इधर बच्चों की दौड़, उधर बड़ों में होड़ कि देखें किसका बच्चा जीतता है अबकी बार। लगता है कि विजेता और पराजित, दोनों के आनन्द के रंगों की आभा अलग–अलग ही बन जाती है। अक्सर स्कूल ऐसी गतिविधियों का आयोजन दिन की पढ़ाई खत्म हो जाने के बाद करते हैं और वह भी सिर्फ उनके लिए जिनका प्रदर्शन इनमें खास तौर पर अच्छा रहता है। मेरे हिसाब से तो खेलों को पाठ्यचर्या में इस तरह से शामिल किया जाना चाहिए कि उनमें सबकी भागीदारी सुनिश्चित हो और सब उसका आनन्द उठा सकें। अध्यापक हों या विद्यार्थी, उनका कौशल स्तर कैसा भी क्यों न हो, सब खेल पाएँ। कोशिश बस यही होनी चाहिए कि प्रत्येक खेल में निहित शारीरिक गतिशीलता, ऊर्जा, मस्ती तथा उससे जुड़ी विशेष दक्षताओं से प्राप्त आनन्द का सम्प्रेषण हो पाए। आपस में जोश से भरपूर खेल खेले जाएँ, जमकर मुकाबला हो, लेकिन द्वेषभाव और जानबूझकर एक–दूसरे के साथ बदतमीजी का लेशमात्र भी इजहार नहीं हो।

*''आमोद–प्रमोद, भाईचारे और घोर परिश्रम से लबालब समूचा वातावरण! क्या यह एक असम्भाव्य स्वप्न है? खेलने का हुनर जानना एक खुशगवार प्रतिभा है।''*

*–आर.डब्ल्यू. एमर्सन (जर्नल्स, 1984)*

मुमकिन है कि कुछ बच्चे कुछ खास खेलों के लिए आवश्यक कौशल आसानी से हासिल न कर पाते हों। कभी–कभी यह लचीलापन रखना कि वे अलग–अलग खेल आजमा पाएँ इस बात में उनकी मदद करता है कि वे अपनी पसन्द का खेल चुन पाएँ। शारीरिक तौर पर स्वस्थ रहने के लिए एक उत्तम कार्यक्रम उन्हें अपने शरीर के साथ सामंजस्य बिठाने का एक नया नजरिया देता

है। शरीर स्वस्थ हो तो आप तमाम तरह के खेलों की ओर जा सकते हैं। इन सब विचारों का एक सन्तुलित, नपा–तुला मिश्रण बच्चों पर अच्छा प्रभाव डालता है।

'सेण्टर फॉर लर्निंग', बंगलौर स्कूली जीवन शुरू करने वाले हर नन्हे बच्चे के लिए यही तरीका अपनाता रहा है। नतीजतन, हर बच्चा और युवा शारीरिक रूप से सक्रिय रहता है और खेल के घण्टे की राह खुशी–खुशी तकता है।

## प्रतिस्पर्धा की खेल के मैदान में भूमिका

आमतौर पर यह धारणा व्याप्त है कि खेलकूद में प्रतिस्पर्धा हो। यहाँ तक कि प्रतिस्पर्धा से घृणा करने वाले कई लोग भी इस बात को मानते हैं। कई लोगों की यह प्रबल सोच है कि वह कड़ी प्रतियोगिता का सामना करेगा तो बच्चा श्रेष्ठता की ओर अग्रसर होगा। इसी बात को एक अलग दृष्टि से भी देखने का तरीका है। जब भी हम किसी ऐसे व्यक्ति के साथ खेलते हैं जो उस खेल में हमसे कुछ अधिक है, तो हमारे अन्दर अपने खेल के स्तर को ऊपर उठाकर सामने वाले के श्रेष्ठ स्तर तक पहुँचाने की एक सहज इच्छा उपजती है। टेबल टेनिस, और शायद अन्य रैकेट खेलों के सन्दर्भ में भी, यह कहना सही होगा कि कमतर खिलाड़ी, अपने से बेहतर खिलाड़ी के साथ खेलकर लाभान्वित होता है। लेकिन इस पूरे मसले का अधिक सम्बन्ध उस नामुमकिन–से शॉट तक पहुँचने, विजयी प्रहार को शक्ल देने, और कुछ ठहराव के साथ सबसे बढ़िया रणनीति के बारे में सोचने से है। भले ही अंक हासिल करने के लिए खेलते समय इस मनचाही स्थिति तक पहुँचा जा सकता हो, लेकिन कोच या शिक्षक को इस बात के प्रति सतर्क रहना चाहिए कि कहीं खेलने का एकमात्र कारण यही न बनकर रह जाए। बहुत बार होता है कि कोई विद्यार्थी मुझ से थोड़े व्यंग्यात्मक ढंग से पूछता है, ''आप तो कहती हैं कि आप प्रतियोगिता की हिमायती नहीं हैं, फिर क्यों आप हर पॉइण्ट कमाने के लिए इतना जूझती हैं और जीतने के लिए इतनी मशक्कत करती हैं?'' है कोई जो इस सवाल का जवाब दे दे? मेरे लिए यह कल्पना कर पाना भी नामुमकिन है कि मैं उस टेबल तक अनमने ढंग से जाऊँ या लापरवाही से खेलूँ। टेबल पर तो मैं अपना सर्वश्रेष्ठ ही खेलती हूँ, मेरा पूरा ध्यान बॉल, रैली और मेरे प्रहारों पर होता है। हर पॉइण्ट का अपना महत्व होता है। खेल के साथ मेरे सम्बन्ध के प्रति यह मेरा दायित्व है। लेकिन हर विजय, पराजय मुझ पर परछाई की तरह हावी होने लग जाए तो इसका अर्थ है कि जरूर खेल के साथ मेरे रिश्ते में कुछ खोट है!

*''एक खिलाड़ी होने के नाते पराजय मुझे स्वीकार होती है। यूँ तो हर कोई जीतना चाहता है, लेकिन जीतना तो सिर्फ एक ही को है। जीतने में मजा आता है! लेकिन मुझे हारने पर दुख नहीं होता।''*

*–किपचगे कीनो, केन्या के दो बार के ओलिम्पिक एथलेटिक्स स्वर्ण पदक विजेता।*

## अभिभावकों, अध्यापकों और कोच की भूमिका

कई अभिभावक खुद को और अपने बच्चों को बहुत सख्त टाइम–टेबल और घोर कष्टों के हवाले कर देते हैं। कोच भी अपने प्रशिक्षुओं की सफलता को लेकर बेहद उन्मादी हो जाते हैं। क्या यह सब अपरिहार्य है, और जब आत्मविस्मृत जोकोविच विम्बलडन में गाँजा चबा रहे होते हैं तो क्या हमें यह सब करने लायक लगता है? मेरे ख्याल से कहीं कुछ गड़बड़ है। किसी विशेष खेल में प्रतिभा की शुरुआत उस खेल के प्रति सच्चे, जुनूनी लगाव से होती है। फिर ज्यों–ज्यों वह युवा–प्रतिभा प्रतिस्पर्धा की कन्दराओं में अन्दर, और अन्दर, धँसती चली जाती है, तब भी क्या खेल के प्रति उसकी वही चाहत और लगाव बने रहते हैं? मुझे याद आता है आंद्रे आगासी का अपनी मानसिक अवस्था के बारे में रहस्योद्घाटन, कि कैसे टेनिस उसे एक दैत्य की तरह दिखाई देने लगा था। क्या कहीं कोई एक बिन्दु है जहाँ प्रेम घृणा में तब्दील होने लगता है?

अपनी बात करूँ तो मेरी शुरुआत अपने खेल के प्रति प्रगाढ़ प्रेम से हुई थी। रैकेट हाथ में पकड़, गेंद के साथ चुहल करना मेरे लिए बड़ी सहज शारीरिक क्रिया थी। उसमें एक आनन्द था, और कभी कोई ऊब न थी, और न ही कोई अरुचि थी। अलबत्ता शारीरिक थकान जरूर थी। अब जब वह तमाम उठापटक खत्म हो चुकी है, तो मुझे लगता है कि इस खेल के साथ मेरा रिश्ता कुछ और अन्तरंग हुआ है। जब मैं खेलती हूँ तो सुख की एक कमाल की अनुभूति होती है। जब एक बच्चा कोई खेल खेलना शुरू करता है तब क्या यही अनुभूति उसमें नहीं होनी चाहिए? कैसे?

मैं पिछले कई सालों से बच्चों और टेबल टेनिस की दुनिया से अनौपचारिक तौर पर जुड़ी रही हूँ, इसलिए मैं

देखते ही समझ जाती हूँ कि कौन खिलाड़ी हर दम अंक बनाने की जुगत में भिड़ा रहता है और अपनी योग्यता को धाक जमाने के हथियार के तौर पर बरतता है। अपने से कमतर खिलाड़ी की मदद करने में ऐसा बच्चा बोरियत महसूस करता है, और उसकी रुचि बस अपने खेल के साथ बने रहने तक ही सीमित रहती है। कुछ रैलियाँ हुईं नहीं, कि उसमें इच्छा जगने लगती है कि अंकों के आधार पर खेला जाए। और कुछ खिलाड़ी ऐसे होते हैं जो हरदम किसी न किसी को मैच में दो–दो हाथ करने के लिए ललकारते रहते हैं। मैं ऐसे बच्चों की बुराई नहीं कर रही। एक संवेदनशील शिक्षक उन्हें सही कौशल और सही व्यवहार के साथ खेलना सिखा सकता है, और कइयों पर इस प्रशिक्षण का असर भी पड़ता है। लेकिन जो खिलाड़ी बस आज मिल रही वाहवाही तक ही सीमित रहते हैं, मुझे लगता है कि वर्षों बाद उन्हें अपने खेल में जरा भी रुचि नहीं रहेगी। क्योंकि खेल के साथ उनका टिकाऊ रिश्ता नहीं बन पाता।

*''अपने खेल से हम प्रकट करते हैं कि हम किस प्रकार के इन्सान हैं।''*

*–ओविड (द आर्ट ऑफ लव)*

खेल का मैदान ऐसे कई अवसर मुहैया करवाता है जब हम यह जान सकते हैं कि खेलते समय एक युवा खिलाड़ी की मानसिक अवस्था क्या होती है। कुछ बच्चे हारने पर हरदम गुस्सैल, हिंसक या हताश से रहते हैं। एक वयस्क उन्हें परिस्थिति और हालात को परिप्रेक्ष्य में देखने की समझ प्रदान करके मदद कर सकते हैं। यहाँ यह समझना जरूरी है कि खेल भावना पर 'भाषण' देने और बच्चे की मनोदशा को समझने के मकसद से उसके साथ किए गए संवाद में अन्तर होता है। संवाद में सच्चे ज्ञान की सम्भावनाएँ कहीं अधिक रहती हैं। ठीक इसी तरह, यदि कोई बच्चा स्कूली जीवन के अन्य पहलुओं में सामान्य ढंग से कार्य नहीं कर पा रहा, लेकिन खेल के मैदान में शानदार प्रदर्शन कर रहा है तो खेल का मैदान हमें एक ऐसा अवसर देता है जहाँ हम उसके साथ एक अलग माहौल में कुछ संवाद कर सकते हैं। जब भी मुझे किसी बच्चे से बातचीत करने में दिक्कत आती थी, टेबल टेनिस का कमरा उसके साथ सम्पूर्ण सामंजस्य स्थापित करने में बहुत मददगार होता था!

## कोचिंग पर मेरे कुछ विचार

मैंने एक से अधिक स्कूलों में बच्चों को कोचिंग दी है, और कोचिंग के दौरान मेरा पूरा ध्यान इस बात पर रहता है कि वे खेल की बारीकियों और जटिलताओं को समझ पाएँ तथा खेल की खूबसूरती की एक झलक पा सकें। इसी के साथ–साथ मैं उन्हें खेल की बुनियादी बातें समझाने की भी कोशिश करती हूँ, और शायद यह भी सिखाती हूँ कि किस तरह वे अपने पूरे शरीर की भूमिका पर ध्यान देते हुए अपने कौशल बढ़ा सकते हैं, अपने प्रतिस्पर्धी और गेंद की गति पर नजर रख सकते हैं। मुझे आशा रहती है कि जल्दी ही वे खेल के साथ अपने शरीर और मन के रिश्ते को महसूस कर पाएँगे और खेलने में उन्हें निर्मल आनन्द की अनुभूति होगी! हो सकता है कि सालों के बीतने के साथ मैं वे सब साहसिक और विस्मयकारी स्ट्रोक्स न लगा पाऊँ जो अब तक मैं लगा पाती थी, लेकिन तब भी अपनी कल्पना में तो मैं वे सब जादुई स्ट्रोक्स लगा ही सकती हूँ और यही मेरा लक्ष्य है। वास्तविक स्ट्रोक्स और उनकी शुद्धता में चाहे कितनी भी कमी आ जाए लेकिन खेल के प्रति उत्साह तो अब भी वैसा का वैसा ही है! और इस आनन्द की महक और स्वाद मैं हर उस बच्चे तक पहुँचाना चाहती हूँ जो मेरे साथ खेलता है। मुझे अच्छे से याद है कि टेबल टेनिस से मेरा परिचय प्रयोग भरा, अटूट, और बेहद फुरसती रहा। अपने पारिवारिक क्लब के किसी कोने में पड़े एक टेबल को देखा और मैंने अपने हमउम्र टेनिस बॉल बॉय निरुवा के साथ खेलना शुरू कर दिया। मैं घण्टों उसके साथ खेलती, पूरी सन्तुष्टि के साथ। स्कूली व्यवस्था में तो खैर इस तरह का कोई विकल्प नहीं होता, लेकिन फिर भी केवल निर्मल आनन्द के लिए खेलना क्या होता है, इसकी जरा सी भी झलक क्या खेलने वाले हर बच्चे तक पहुँचाई जा सकती है? उनकी 'प्रतिभा' का स्तर चाहे जो हो, क्या हर बच्चा खेलों के प्रति इस प्रकार की

भावना महसूस कर सकता है? स्कूलों में खेले जाने वाले खेल क्या आला दर्जे के, आनन्ददायी और समावेशी नहीं हो सकते? जो स्कूल और शिक्षाविद अपने तईं एकदम स्पष्ट हैं कि वे इन तत्वों को शामिल करना चाहते हैं, उनके लिए शुभ समाचार है कि यह सब सम्भव है!

**Reading suggestions**


1. "Playfair : Everybody's guide to noncompetitive play " by Matt Weinstein and Joel Goodman. Impact Publishers. California. 1980.
2. "Co-Op Games Manual" by Jim Deacove. Family Pastimes. Canada. 1974.
3. " Co-Op Sports Manual" Ibid.
4. "Let's play" by Sharad Jain. Journal of the Krishnamurti Schools. No. 14. January 2010. Page 32.


***उषा मुकुन्दा*** *'सेण्टर फॉर लर्निंग, बंगलौर की संस्थापक सदस्य हैं। यहाँ उन्होंने 'ओपन लाइब्रेरी' शुरु की। वे 12 बरस की उम्र से टेबल टेनिस खेल रही हैं। पहले 7 साल तो उन्होंने राष्ट्रीय चैम्पियनशिप में बंगाल का प्रतिनिधित्व किया, और फिर महाराष्ट्र तथा तमिलनाडु का। वे भारत की तरफ से एशियन चैम्पियनशिप में भी खेली हैं। पिछले कई सालों से वे अपने प्रशिक्षुओं में इस खेल के प्रति एक लगन पैदा करने के विभिन्न तरीके खोजती रही हैं। उनका ई–मेल है – usha.mukunda@gmail.com*

# 20 शिक्षा में खेलों का बदलता स्वरूप

हृदयकान्त दीवान
प्रीति मिश्रा

पिछले दो दशकों में, स्कूलों में खेलों के बारे में दिलचस्पी बहुत अधिक बढ़ी है। क्रिकेट, फुटबॉल और हॉकी सदा ही लोकप्रिय खेल रहे हैं, लेकिन उपग्रह टेलीविजन के आने के बाद ज्यादा से ज्यादा लोग अन्य अन्तर्राष्ट्रीय खेलों के प्रति भी जागरूक हो रहे हैं। हाल ही में भारत में हुए कॉमनवेल्थ खेलों ने भी इस लोकरुचि में इजाफा किया है। हाल ही तक, सिर्फ कुछेक खिलाड़ी ही अपनी प्रतिभा का फायदा इस रूप में उठा पाते थे कि उन्हें खेल–कोटे के तहत अपनी आगे की पढ़ाई के लिए अच्छे शिक्षा संस्थानों में प्रवेश मिल जाता था या फिर नौकरी मिल जाती थी। आजकल पहले से अधिक संख्या में खिलाड़ियों को प्रसिद्धि मिल रही है। अब खेलों को भी एक सम्मानित और कमाऊ करियर–विकल्प के तौर पर देखा जाने लगा है। नतीजतन, खेलों से सम्बद्ध कौशल सीखने के कई रास्ते खुल गए हैं, और विद्यार्थियों के लिए कई निजी खेल–प्रशिक्षण अकादमियाँ और शिविर स्थापित हुए हैं –

1. हाल के वर्षों में सरकार भी इस बात के प्रति पहले से अधिक सचेत हुई है कि देश में अच्छे खिलाड़ी होने चाहिए।
2. इसके चलते उसने कई खेल संस्थानों को अपना समर्थन दिया है और बच्चों को विशिष्ट खेलों में प्रशिक्षित करने के लिए विशेष स्कूल स्थापित किए हैं।

कुछ अभिभावक अपने बच्चों को अच्छी से अच्छी कोचिंग और प्रैक्टिस दिलवाने के लिए पैसा खर्च करने को भी तैयार रहते हैं। खेलों के प्रति अभिभावकों की यह उत्प्रेरणा कुछ मायनों में वैसी ही है जैसी बच्चों को पढ़ाई के विषयों में ट्यूशन आदि दिलवाने के मामले में दिखाई देती है। इन सबके पीछे प्रेरक शक्ति के तौर पर यही इच्छा और आशा रहती है कि बच्चे को अन्ततः अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर खेलने लायक मान लिया जाए।

इस सबके बावजूद विद्यार्थियों, अध्यापकों और अभिभावकों के मन में खेलों का स्थान और प्रभाव अभी भी कम ही है। सच्चाई यह है कि कुल मिलाकर, हम आज भी ऐसी नौकरियों की तलाश में रहते हैं जो सुरक्षित और लम्बे समय के लिए हों। खेलों में रोजगार आपसे सदा पहलकदमी, अभ्यास और प्रदर्शन की माँग करते हैं और इसीलिए कम आकर्षक माने जाते हैं। सुरक्षित नौकरियों के विकल्प बड़े सीमित होते हैं, और उनके लिए अपेक्षित होता है कि आप शिक्षा और अध्ययन के उच्च स्तरों तक पहुँचें। अपने बच्चों को 'अच्छी, सुरक्षित, सफेदपोश' नौकरियों में देखने की बेचैनी के चलते कई अभिभावक खेलों पर खर्च होने वाले समय को व्यर्थ समझते हैं। अधिकांश माँ–बाप और अध्यापक आज भी खेलों को बच्चों की पढ़ाई में एक रुकावट मानते हैं। बहुत कम स्कूल होंगे जो अपने सभी विद्यार्थियों को खेलों में शामिल करते हैं। इसकी बजाय वे अपना सारा ध्यान ऐसे खिलाड़ी, टीम या टीमें बनाने पर लगाते हैं जिनमें मैच और टूर्नामैण्ट जीतने की क्षमता हो। सभी बच्चों को खेलों में भाग लेने का मौका दिया जाना जरूरी नहीं समझा जाता। खेलों को बच्चे के व्यक्तित्व के विकास के हिस्से के तौर पर नहीं लिया जाता। बल्कि खेलों में भाग लेने वाले कई लोग भी उन्हें बस दूसरे दर्जे का कोई न कोई रोजगार हासिल करने के माध्यम के रूप में देखते हैं।

## सरकारी नीतियाँ और कार्यक्रम

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1968 से उद्धृत –

*(15) गेम्स और स्पोर्ट्स : खेलों को बड़े पैमाने पर इस उद्देश्य से विकसित करने की जरूरत है कि सामान्य विद्यार्थी तथा इस क्षेत्र में उत्कृष्ट विद्यार्थी, दोनों के शारीरिक स्वास्थ्य*

*और खेल–भावना में बेहतरी लाई जा सके। जहाँ भी शारीरिक–शिक्षा सम्बन्धी राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम विकसित करने के लिए खेल–मैदान और अन्य आवश्यक सुविधाएँ मौजूद नहीं हैं, वहाँ ये सुविधाएँ उपलब्ध करवाने को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।*

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 ने भी इसी तरह समग्र क्षमताएँ विकसित करने और शारीरिक गतिविधि के महत्व पर बल दिया था। नतीजतन, ऑपरेशन ब्लैकबोर्ड के तहत स्कूलों को एक फुटबॉल और विविध खेल–सामग्री मुहैया करवाई गई थी। एक ओर जहाँ इन सब बातों से लगता है कि खेलों के महत्व को स्थान दिया जा रहा है, वहीं दूसरी ओर इनका क्रियान्वयन बहुत सतही था। कमोबेश संगीत, और पढ़ने से सम्बन्धित सामग्री की तरह ही, प्रदान की गई खेल की सामग्री भी अच्छी गुणवत्ता की नहीं थी और जब वह स्कूलों तक पहुँची तो उपयोग करने लायक भी नहीं बची। स्टॉक एण्ट्री और सामग्री संरक्षण के नियम इतने अटपटे बनाए गए थे कि कोई भी विश्वास के साथ उसका इस्तेमाल करने को तैयार नहीं होता था। बहुत आगे चलकर स्टॉक एण्ट्री के नियम थोड़े लचीले तो कर दिए गए लेकिन फिर स्कूलों को कोई खेल सामग्री ही नहीं दी गई। मगर न तो अभिभावकों और न ही शैक्षणिक बिरादरी को इसमें कोई चिन्ता की बात नजर आई।

उदाहरण के लिए, शिक्षा के विकल्प के तौर पर नई तालीम आन्दोलन, बाल मन में कई मूल्य विकसित करने के प्रति सजग था। इसके मुख्य बिन्दुओं में शामिल थे – सहयोग, स्थानीय समुदाय के आर्थिक और सामाजिक जीवन में भागीदारी, स्वयं का और अन्य मनुष्यों का सम्मान तथा पर्यावरण के प्रति संवेदनशील होना। दिल, दिमाग और हाथ पर बल देने के बावजूद नई तालीम में खेल सम्बन्धी कोई तत्व नहीं था। इसमें रचनात्मक कार्य, जिम्मेदार शिल्पकार्य, उसकी अहमियत को समझ पाने के मकसद से शारीरिक श्रम आदि शामिल थे, लेकिन खेल नहीं थे। कोशिश थी कि अपने हाथों से काम करने को सम्मानजनक और मूल्यवान बनाया जाए। कुछ रच पाने के आनन्द और सामाजिक रूप से उपयोगी होने की बात ने इसके महत्व को बढ़ाया। लेकिन स्वास्थ्य की बात को इसमें शामिल नहीं किया गया। अभी हाल ही में छोटे बच्चों के लिए पोषण को जरूर एक घटक के तौर पर जोड़ा गया है लेकिन इससे ज्यादा कुछ और नहीं। मगर हमें ध्यान में रखना होगा कि नई तालीम के सिद्धान्त माँग करते हैं कि स्वास्थ्य कार्यक्रम, सम्पूर्ण का एक हिस्सा हो – बच्चे का स्वास्थ्य–विकास तो होना होगा लेकिन इसे बाकी सबसे अलग–थलग करके नहीं रखा जा सकता। और एक सरोकार यह भी है कि स्वास्थ्य के इस कार्यक्रम में कुछ खुशी भी शामिल रहे!

'स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मन' का नारा लगाया जाता है और चहुँमुखी विकास की तरफदारी की जाती है लेकिन व्यवस्था का नियन्त्रण करने वालों या उपयोगकर्ताओं या फिर स्कूलों में भी ऐसा कोई नहीं होता जो इन सब बातों की प्रासंगिकता और महत्व का सच में कायल हो। अधिकांश शिक्षाविदों के लिए खेलों का एजेण्डा बड़े महत्व का नहीं है और इसी सोच के चलते किसी भी स्कूली कार्यक्रम के अन्तर्गत खेलकूद

में सभी बच्चों की भागीदारी को सम्भव बनाने के हिसाब से ठोस और सुस्पष्ट योजना नहीं बनाई गई है। डी.पी.ई.पी. और सर्व–शिक्षा अभियान के तहत प्रारम्भिक शिक्षा में फिर से जान डालने के प्रयास हुए हैं; माध्यमिक शिक्षा को पुनर्जीवित करने की भी अभी हाल ही में कोशिशें हुई हैं लेकिन इनमें भी खेलों को शिक्षा के एक महत्वपूर्ण घटक के तौर पर शामिल नहीं किया गया है।

भारतीय सन्दर्भ में यह बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि शिक्षा के बारे में आम नजरिए के तहत माना जाता है कि वह 'खेल' से बिल्कुल अलग है। शिक्षा को एक ऐसे गम्भीर उद्यम के तौर पर लिया जाता है जिसमें जबरदस्ती लागू किए गए अनुशासन की आवश्यकता है। हाल ही में ऐसे आकर्षक क्लासरूमों की बात होने लगी है जिनमें गुंजाइश छोड़ी जाए कि बच्चे इधर से उधर हो सकें, यहाँ–वहाँ घूम सकें और हर गतिविधि में सक्रिय भागीदारी निभा सकें। ऐसे माहौल में खेलों को तो बस समय बिताने का साधन मात्र माना जाता है और उनके प्रति हमारा रवैया उदासीनता से भरा ही नहीं, बल्कि विरोध का भी रहता है। स्कूल और माँ–बाप बच्चों को गणित या अँग्रेजी की ट्यूशन के लिए भेजने को तत्पर रहते हैं, खेलों के लिए नहीं। अपवाद होते हैं तो बस वे बच्चे जिन्हें जिला या राज्य स्तर की टीम में होना होता है, और वे बच्चे जो खेलों को भविष्य में अपने पेशे के तौर पर देखते हैं।

सन् 2005 में शिक्षा की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा बनाने को लेकर चली लम्बी– चौड़ी कवायद से शारीरिक शिक्षा की जरूरत रेखांकित हुई। हाल के वर्षों में प्रारम्भिक स्कूली शिक्षा के दौरान शारीरिक विकास के महत्व को बल मिला है। इस समझ के चलते कि पोषण भी शारीरिक–विकास का एक प्रमुख अंग है, मध्याह्न भोजन की योजना अमल में आई। यह योजना अब एक राष्ट्रीय कार्यक्रम बन चुकी है। इसकी शुरुआत ही शायद बच्चों को लम्बे समय तक स्कूल में बनाए रखने और उन्हें स्कूल में खींच लाने के लिए हुई थी।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एन.सी.एफ.) विकसित करने के दौरान स्वास्थ्य और शारीरिक शिक्षा पर एक पर्चे का मसौदा भी तैयार किया गया था। यहाँ यह बताना जरूरी है कि इस पर्चे में खेलों का 'खे' तक चर्चा में नहीं आया है।

## शारीरिक शिक्षा बनाम खेल

स्कूल–कार्यक्रम के एक हिस्से के तौर पर खेलों को शामिल करने की जरूरत और उसकी सम्भावनाओं पर विचार करना है तो खेलकूद के मुख्य पहलुओं को चिह्नित करना उपयोगी होगा। वर्तमान में स्कूलों में चलने वाले शारीरिक प्रशिक्षण (पी.टी.) कार्यक्रम में नियमित तौर

*शारीरिक व्यायाम अधिक व्यवस्थित होते हैं और उनके परिणाम के बारे में भी अधिक पूर्वानुमान लगाया जा सकता है, कार्यक्रम–कैलेण्डर बन सकता है और नतीजों पर नजर रखी जा सकती है। मगर परस्पर–सहयोग, बिना 'दाँव' की प्रतिस्पर्द्धा और भरपूर कोशिश के साथ सीखने से मिलने वाला आनन्द इस में शामिल नहीं होता। दूसरी ओर, अच्छे व्यवस्थित खेल में भी रूटीन व्यायाम तो होता ही है, उसके अलावा और भी बहुत कुछ होता है।*

पर शारीरिक अभ्यास शामिल किए जाने की सम्भावना रहती है और हो सकता है कि कहीं–कहीं नियमित योग कक्षाएँ भी चलती हों। पोषण और स्वास्थ्य कार्यक्रम भी हो सकता है। कुछ अर्थों में ये सब मिलकर राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा 2005 में निर्धारित शर्तें पूरी करते हैं। लेकिन सवाल है कि क्या यह पर्याप्त है? एक ओर तो शारीरिक विकास हेतु इस प्रकार के प्रशिक्षण और दूसरी ओर खेलों में भागीदारी के माध्यम से शारीरिक विकास का उद्देश्य हासिल करने की कोशिश – क्या इन दोनों में कुछ अन्तर है?

तर्क दिया जा सकता है कि शारीरिक व्यायाम अधिक व्यवस्थित होते हैं और उनके परिणाम के बारे में भी अधिक पूर्वानुमान लगाया जा सकता है, कार्यक्रम–कैलेण्डर बन सकता है और नतीजों पर नजर रखी जा सकती है। मगर परस्पर–सहयोग, बिना 'दाँव' की प्रतिस्पर्द्धा और भरपूर कोशिश के साथ सीखने से मिलने वाला आनन्द इस में शामिल नहीं होता। दूसरी ओर, अच्छे व्यवस्थित खेल में भी रूटीन व्यायाम तो होता ही है, उसके अलावा और भी बहुत कुछ होता है। एक खेल में स्वतःस्फूर्त सहजता होती है और वह अनुभव की विविधता भी प्रदान करता है। खेलों से मिलने वाले सबक भी कई हैं। इसके उलट, शारीरिक व्यायाम उबाऊ होते हैं, वे दोहराव के शिकार होते हैं, और कुल मिलाकर पढ़ाई के नित्यक्रम को ही आगे बढ़ाते हैं।

पी.टी. के माध्यम से की जाने वाली कसरत रणनीति, योजना और उद्देश्य को पाने के लिए स्वयं को पूरी तरह से झोंक देने की कोई इच्छा पैदा नहीं करती। वहीं टीमों वाले खेलों में नेतृत्व देने, सहयोग करने, योजना और रणनीति बनाने की गुंजाइश रहती है। खेल के दौरान उपलब्ध विकल्पों में से एक को चुनने के लिए तुरन्त फैसला लेने की स्थितियाँ बनती हैं। इसी के चलते शरीर और दिमाग दोनों काम में आते हैं। पी.टी. और योग के तहत मन को अनुशासित रखने में मददगार अभ्यास होते हैं – इस दृष्टि से वे नियमित शिक्षा और अध्ययन से अधिक मिलते–जुलते हैं न कि खेलकूद से।

पी.टी. प्रोग्राम का फोकस प्रशिक्षक द्वारा किए जा रहे अन्य कार्यों से भी स्पष्ट हो जाता है। सभी स्कूलों में पी.टी. प्रशिक्षक के सबसे महत्वपूर्ण कामों में से एक होता है अनुशासन बनाए रखने का काम। अक्सर उसकी जिम्मेदारी बच्चों को सजा देने की रहती है। और इस सजा का एक रूप होता है किसी न किसी तरह का शारीरिक व्यायाम। इसलिए इसमें अचरज की बात नहीं कि बच्चे पी.टी. के पीरियड को एक सजा के रूप में लेते हैं और शारीरिक–प्रशिक्षक के साथ होने में वे असहज महसूस करते हैं, यह उन्हें अच्छा नहीं लगता।

इतना ही नहीं, पी.टी. शिक्षक भी अपनी इस भूमिका में कैद होकर रह जाता है, और वह चाहे कितना भी मृदुभाषी और खुश–मिजाज क्यों न रहे, बच्चे अक्सर उससे सहमे–सहमे ही घूमते हैं। दूसरी ओर खेल आपको ऐसे अवसर प्रदान करते हैं कि शिक्षक बच्चों के साथ मिलकर खेलते हुए स्वाभाविक तौर पर उनके सम्पर्क में रहता है। वह भी अन्य खिलाड़ियों की तरह खुशी और निराशा व्यक्त कर सकता है और इस तरह दूरी और शिष्टाचार की बाधाओं के पार जा सकता है।

प्राथमिक स्कूलों के स्तर पर पी.टी. बच्चों के मन को कुछ हद तक व्यवस्थित और अनुशासित करने में तो उपयोगी हो सकती है, लेकिन उन्हें भी आराम और अपनी ऊर्जा को उन्मुक्त ढंग से इस्तेमाल करने के अवसर चाहिए। खेलकूद उन्हें ये अवसर आसानी से उपलब्ध करवा सकते हैं। जैसे–जैसे बच्चे बड़े होते हैं, स्कूल का काम मेहनत और एकाग्रता की माँग करता है। ऐसे में ढर्रे से हटकर कुछ ऐसा करने की आवश्यकता रहती है जो महत्वपूर्ण तो हो, लेकिन उसी तर्ज का नहीं। ये खेल भी हो सकते हैं, खेलकूद भी और रचनात्मक दस्तकारी भी।

## खेल बनाम खेलकूद

खेल मन बहलाने का काम करते हैं, वे हमें तरोताजा रखते हैं और अमूर्त औपचारिक पढ़ाई की नीरसता को तोड़ते हैं। 'बज़', 'मैथ्सी' और अन्ताक्षरी जैसे खेल गणित, भाषा, ई.वी.एस. या अन्य किसी पाठ्यक्रम का हिस्सा हो सकते हैं। वास्तव में तो विभिन्न विषयों की कई गतिविधियों को एक खेल का रूप दिया जा सकता है। फिर शतरंज, लूडो, कैरम जैसे खेल भी हैं जो रणनीति और शरीर–संचालन के कौशल तो विकसित करते ही हैं, संयोग की अहमियत का अहसास भी जगाते हैं। लेकिन आमतौर पर ये व्यक्तिगत स्तर पर ही खेले जाने वाले खेल होते हैं और इनमें समूह के साथ मिलकर काम करना शामिल नहीं है। इनमें शारीरिक गतिविधि भी कुछ खास नहीं होती। घर में और स्कूल में खेले जाने वाले खेल बहुत किस्म के होते हैं और इनमें फेरबदल कर बहुत सारे उद्देश्य पूरे किए जा सकते हैं, लेकिन खेलकूद से जिन उद्देश्यों की पूर्ति हो सकती है, उनकी पूर्ति खेल से नहीं हो सकती।

## स्कूलों में खेलकूद

दस्तकारी, संगीत, कला और नाटक लम्बे समय से स्कूली कार्यक्रमों का हिस्सा रहते आए हैं लेकिन इन्हें हमेशा ही पाठ्येतर गतिविधियों के तौर पर देखा गया है। नई शिक्षा नीति, 1986 के चलते सामाजिक रूप से उपयोगी कार्य (एस.यू.पी.डब्ल्यू.) की अवधारणा शैक्षणिक शब्दावली का एक हिस्सा बन गई। सभी स्कूलों से यह अपेक्षा रही कि वे अपनी नियमित समय– सारिणी में एस.यू.पी.डब्ल्यू. को स्थान देंगे, लेकिन खेलकूद को तो स्थान इसके तहत भी नहीं मिला।

खेलों में नौकरी की बढ़ती सम्भावनाओं

को देखते हुए खेलों के प्रति अभिभावकों के रवैये में तो नर्मी आई है, लेकिन शैक्षणिक संस्थाओं के रवैये में, 'चहुँमुखी विकास' जैसे मन्त्र के बढ़ते जाप के बावजूद, कोई बदलाव नहीं आया है। मोटेतौर पर दो स्वतन्त्र कारक इसके जिम्मेदार हैं। पहला, स्कूलों की मुख्य भूमिका उच्च शिक्षा, खासतौर से पेशेवर शिक्षा की छलनी के तौर पर देखी जाती है। इस पेशेवर क्लब से बाहर रह जाने के डर का ही नतीजा है कि कुछ ही विद्यार्थी खेलों में अपनी ऊर्जा लगाते हैं।

दूसरा कारक है कि स्कूल में ठीक–ठाक गुणवत्ता के खेलों की व्यवस्था के लिए बुनियादी खेल–सुविधाओं तथा कोच और शिक्षकों की नियुक्ति पर अच्छा–खासा पैसा लगाना पड़ता है। टाइम–टेबल में भी गुंजाइश निकालनी पड़ती है। इसलिए अचरज नहीं कि बहुत कम स्कूल ही ऐसी खेल गतिविधियाँ करवा पाते हैं जिनमें बड़ी संख्या में बच्चे भाग लेते हों। कुछ स्कूलों के पास बुनियादी खेल सुविधाएँ भी हैं और जरूरी साज–सामान भी, लेकिन वे बस खेलों में बेहतर साबित होने वाले बच्चों के साथ ही काम करते हैं। तमाम ऊर्जा इन बच्चों के उत्कृष्ट प्रदर्शन पर लगाई जाती है ताकि उनका चयन जिला, राज्य या राष्ट्रीय स्तर की टीमों में हो जाए।

## किस तरह के खेल

इस बात पर गौर करना भी जरूरी है कि स्कूल की सीमाओं के मद्देनजर किस तरह के खेल हो सकते हैं। ऐसे खेल हैं जिनके लिए काफी अधिक समय की आवश्यकता रहती है, और तेज रफ्तार तथा छोटी अवधि वाले खेल भी होते हैं। कुछ खेलों में बहुत तैयारी और साधनों की जरूरत होती है जबकि अन्य में ऐसा लम्बा–चौड़ा कुछ नहीं होता। कुछ खेलों में एक ही वक्त पर सिर्फ कुछ बच्चे ही भाग ले सकते हैं जबकि कुछ खेलों में बहुत सारे बच्चे एक साथ खेल सकते हैं। सब अपनी पसन्द चुनने के लिए आजाद हैं लेकिन चुना गया विकल्प ऐसा होना चाहिए कि वह स्कूल के कार्यक्रम में खप सके और सब बच्चे उसमें भाग ले सकें। इन दो शर्तों के चलते विस्तृत तैयारी की माँग करने वाले खेल खारिज हो जाते हैं। जिस खेल के लिए बहुत से सामान की जरूरत हो या मैदान के लिए लम्बी–चौड़ी तैयारी जरूरी हो, वह खेल सबके लिए नहीं हो सकता। क्रिकेट मैच देखना मजेदार और आरामदायक हो सकता है लेकिन दर्शकों को उसमें भागीदार नहीं माना जा सकता। क्रिकेट इस लिए भी स्कूली खेल के तौर पर उपयुक्त नहीं है क्योंकि उसके लिए बहुत समय, मैदान और साज–सामान की जरूरत पड़ती है। शायद बेहतर यही है कि उन खेलों से बचा जाए जिनमें एक वक्त पर केवल कुछ ही बच्चों को शामिल किया जा सकता है। ऐसा खेल अधिकांश बच्चों को तो केवल दर्शक ही बनाकर रख देगा।

सीमित संसाधनों के साथ भी बच्चों को खाली समय और कुछ सामग्री दी जाती है तो वे कुछ नया करते हुए अपने खेल खुद ही रच पाएँगे, और दरअसल यही तो सब बच्चे करते हैं और करते रहे हैं। ऐसा ही है तो सवाल उठता है कि किसी भी प्रकार के व्यवस्थित खेलकूद आयोजित ही क्यों किए जाएँ? असल बात तो यह है कि इस प्रकार के खेलों में किए जाने वाले तात्कालिक बदलावों से बच्चों को कई ऐसे तत्व मुहैया नहीं हो पाते जो खेलकूद यानी स्पोर्टस् से उन्हें मिल सकते हैं, और इस बात को हमें समझना होगा। महत्वपूर्ण यह होगा कि उन्हें खेलकूद यानी स्पोर्टस् खुद ही आयोजित करने में मार्गदर्शित किया जाए ताकि वे बेहतर ढंग से खेलना सीखें। स्कूल को सुनिश्चित करना चाहिए कि सब बच्चे खेल पाएँ न कि बस मुट्ठी भर अच्छे खिलाड़ी खेल रहे हों और टीम का हिस्सा हों।

इस पर विचार करना भी शायद महत्वपूर्ण है कि क्या हमारे स्कूलों में होने वाले खेलकूद के आयोजन प्रतिस्पर्द्धा और प्रतियोगिता की भावना को केन्द्र में रखकर करवाए जाएँ या फिर पूरी तरह से इसके बिना। खेलकूद में, विशेष तौर से व्यक्तिगत प्रतियोगिता वाले खेलों में, खिलाड़ियों के बीच काफी तनाव होने की गुंजाइश रहती है। लेकिन यह भी सच है कि जीतने के लिए अतिरिक्त कोशिश करना आत्म–विकास का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है, इसलिए जीतने के लिए खेलने को, उसमें निहित जद्दोजहद से अलग नहीं किया जा सकता।

लड़कियों के जीवन में खेल एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। मजा लेने और खेलने के लिए समय मिलने की बात लड़कियों के लिए इतनी आसानी से स्वीकार नहीं की जाती जितनी कि लड़कों के लिए। लड़कियों में परस्पर धक्का–मुक्की या खींचा–तानी करने के प्रति भी संकोच का होना शायद सामाजिक–सांस्कृतिक तौर पर उनमें आदत के रूप में घर कर चुका है। स्कूलों में खेलों को अधिक स्थान और महत्व दिया जाए तो लड़कियों और उनके माँ–बाप के मन में पैठ बना चुकी

ऐसी वर्जनाओं और पाबन्दियों को तोड़ा जा सकता है। नीतियों और कार्यक्रमों के माध्यम से सुनिश्चित होना चाहिए कि लड़कों के साथ–साथ लड़कियों की भागीदारी भी हो।

## निष्कर्ष

खेलकूद ताजादम करने वाली ऐसी गतिविधि है जिसमें व्यक्ति अपने पूरे अस्तित्व के साथ शामिल होता है। वह उसे स्वाभाविक रूप से विकसित करती है। इसका वास्ता सिर्फ बुद्धि, रणनीति या बदलाव की प्रक्रिया को समझने से ही नहीं है, बल्कि शारीरिक क्रिया और समन्वय से भी है। खेल हमें हर कदम पर श्रेष्ठता हासिल करने के लिए प्रयासरत रहने को प्रेरित करते हैं।

अलग–अलग पृष्ठभूमि से आए बच्चों के रहन–सहन, अनुभव और मिजाज के हिसाब से खेलों के चयन में विविधता होना बहुत जरूरी है। हमें ऐसे पुख्ता टीम–खेलों के बारे में सोचना होगा जिनमें ज्यादा सामान या तैयारी नहीं लगते और जो स्कूल के टाइम–टेबल में भी आराम से फिट हो सकते हों। उदाहरण के लिए, खो–खो और वॉलीबॉल जैसे खेल जिनमें अधिकांश बच्चे भाग ले सकते हैं और जिनके लिए किसी बड़े मैदान या अधिक साज–सामान की भी आवश्यकता नहीं रहती। स्कूल की टीमों में बारी–बारी से नए खिलाड़ी खिलाए जाने चाहिए और बल अच्छे से अच्छा खेल दिखाने पर होना चाहिए न कि सिर्फ जीतने पर। हमारी कोशिश होनी चाहिए कि बच्चे खेलों में निहित नैतिक मूल्यों को समझें, इस बात को समझें कि खेलों का हमारे जीवन पर क्या असर पड़ता है, और साथ ही एक–दूसरे के साथ जुड़ना भी सीखें। इस सबसे अध्यापक और बच्चे एक अनौपचारिक माहौल में बराबरी की भावना के साथ एक–दूसरे से जुड़ सकते हैं – ऐसा होना ही चाहिए।

**Notes and Reference:**


1. A simple Google search for “Sports academies in India” sends up the names of several private sports academies many of which have been set up in the last two decades.
2. Indian Railways to set up 5 Sports Academies in India http://www.breakingnewsonline.net/sports/954-indianrail-ways-
   to-set-up-5-sports-academies-in-india.html accessed on 09-09-2011
3. http://education.nic.in/policy/npe-1968.pdf accessed on 09-09-2011



***हृदयकान्त दीवान (हार्डी)*** *अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में फैकल्टी का हिस्सा हैं। वे ‘एकलव्य’ संस्था के सं. स्थापक समूह के एक सदस्य हैं, और वर्तमान में विद्याभवन सोसायटी, उदयपुर के संगठन सचिव एवं शैक्षिक सलाहकार हैं। पिछले 35 वर्षों से वे शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न तरीकों से और उसके विभिन्न पहलुओं पर कार्यरत रहे हैं। शैक्षिक नवाचार के प्रयासों और राज्य के शैक्षिक ढाँचे में बदलावों से वे खासतौर से जुड़े रहे हैं। उनका ई–मेल पता है – vbsudr@yahoo.com*

***प्रीति मिश्रा*** *2008 से विद्याभवन शैक्षिक संसाधन केन्द्र के साथ काम कर रही हैं। कुछ समय के लिए वे विद्याभवन स्कूलों के साथ भी स्कूल रूपान्तरण परियोजना (स्कूल ट्रांसफॉर्मेशन प्रोजेक्ट) के तहत जुड़ी रही थीं, जिसने उनके दृष्टिकोण को बहुत प्रभावित किया। आप उनसे ई–मेल पर सम्पर्क कर सकते हैं – preeti@vidyabhawan.org*

# 21 स्कूलों में बच्चे किस तरह खेलते हैं : एक पुनर्दृष्टि

सौमिल मजूमदार

यह लेख देश–व्यापी स्तर पर स्कूलों में खेलकूद की हालत का एक पुख्ता जायजा लेता है, और कुछ आवश्यक हस्तक्षेपों की बात करता है जिनसे सुनिश्चित हो पाए कि हमारे स्कूल बच्चों की सेहतमन्द, चुस्त–दुरुस्त और शारीरिक रूप से सक्रिय पीढ़ी का विकास कर सकें। हाल ही में 39 शहरों के 73 स्कूलों में 19,797 बच्चों का एक अध्ययन किया गया। खेल–कौशलों और स्वास्थ्य के आकलन से सम्बन्धित यह अध्ययन हमारे स्कूली बच्चों के खेल–कौशलों और तन्दुरुस्ती के बेहद घटिया स्तरों पर नजर डालता है। प्रस्तुत लेख इसी अध्ययन के आँकड़ों की रौशनी में लिखा जा रहा है।

प्रारम्भिक आधार : बच्चों के खेल–कौशल और उनकी तन्दुरुस्ती का बेहद घटिया स्तर

- भारत में स्कूल जा रहे बच्चों में 61 प्रतिशत ऐसे हैं जो खेलों में भाग लेने के लिए आवश्यक उचित बुनियादी कौशलों के बिना ही बड़े हो रहे हैं। इनमें दौड़ने–कूदने के लिए, तथा फेंकने और लपकने–पकड़ने के लिए आवश्यक कौशल, सन्तुलन बैठाने सम्बन्धी कौशल और स्थानिक बोध (स्वयं के स्पेस और सीमाओं का भान) आदि के कौशल शामिल हैं।
- 43 प्रतिशत बच्चों की जिस्मानी तन्दुरुस्ती, आदर्श स्तर से कम पाई गई (इसकी पहचान खराब बी.एम. आइ. से की गई)।
- खेल–कौशल और तन्दुरुस्ती के खराब स्तर लगभग सम्पूर्ण देश में ही पाए गए। इस मामले में बड़े और छोटे शहरों में कोई उल्लेखनीय फर्क नहीं पाया गया।

'एजुस्पोर्टस्' ने स्कूलों में चल रही अपनी व्यवस्थित खेल/शारीरिक शिक्षा पाठ्यचर्या के एक हिस्से के तौर पर एक व्यापक मूल्यांकन विधि लागू की है। उपरोक्त निष्कर्ष इसी मूल्यांकन के आधार पर निकाले गए हैं। मूल्यांकन की इस विधि से पाठ्यचर्या की लक्ष्य–प्राप्ति से सम्बद्ध प्रगति का आकलन करने, और सही निदान तथा उपचार के लिए उठाए जाने लायक कदमों तक पहुँचने में मदद मिली, और आगे चलकर बच्चों की ज्ञानार्जन–क्षमता में भी वृद्धि हुई।

संख्या के हिसाब से समूह के लगभग आधे बच्चे (48 प्रतिशत) दौड़ने में निपुण नहीं थे, 64 प्रतिशत बच्चे उछलने में दक्ष नहीं थे, और 71 प्रतिशत बच्चे (गेंद आदि) फेंकने या लपकने में प्रवीण नहीं पाए गए। ये एक बड़े समूह के कौशलों में से कुछ ही कौशल हैं। इस बड़े समूह में कौशलों को दौड़ने और उछलने के लिए आवश्यक कौशल, फेंकने और लपकने–पकड़ने के लिए आवश्यक कौशल, सन्तुलन बैठाने सम्बन्धी कौशल और स्थानिक बोध सम्बन्धी कौशलों के तौर पर वर्गीकृत किया जाता है, और ये किसी भी शारीरिक गतिविधि या खेल–कूद के बुनियादी कौशल हैं। इन बुनियादी कौशलों को ठीक से न कर पाने के साथ–साथ सेहत के निम्न–स्तर के चलते बच्चे किसी भी तरह की शारीरिक गतिविधि या खेल का मजा नहीं ले पाते और आगे चलकर निष्क्रिय किशोर/वयस्क बन जाते हैं।

इस अध्ययन में यह भी पाया गया कि 56 प्रतिशत बच्चों को अपने व्यक्तिगत और सार्वजनिक स्पेस या अपने आसपास की सीमाओं का पूर्ण बोध नहीं है। इसकी वजह से वे अपने आसपास मौजूद लोगों या चीजों के साथ सहजता से अन्तःक्रिया में नहीं आ पाते। कुल मिलाकर, 28 प्रतिशत बच्चों में अलग–अलग कौशलों के सन्दर्भ में निपुणता का स्तर चिन्ताजनक रूप से कम पाया गया। इन कौशलों में दक्षता के एक ठीक–ठाक स्तर तक पहुँचने के लिए उनके साथ काफी काम करने की जरूरत महसूस की गई। यह सब, स्कूलों में आयु–उपयुक्त और सर्व–समावेशी शारीरिक–शिक्षा कार्यक्रम के माध्यम से हासिल किया जा सकता है।

गति–विषयक और शरीर–प्रबन्धन कौशलों के सिलसिले

में लड़कों और लड़कियों के बीच कोई खास फर्क नहीं पाया गया। लेकिन गेंद को लुढ़का कर आगे ले जाने तथा नियन्त्रण में रखने ('ड्रिब्लिंग'), और विभिन्न वस्तुओं पर प्रहार करने की तरह के सन्तुलन बैठाने से सम्बद्ध कौशलों के मामले में लड़कियों के मुकाबले लड़के थोड़े बेहतर पाए गए।

अध्ययन के लिए स्वास्थ्य–सम्बन्धी मानकों में निम्नलिखित शामिल थे – एरोबिक क्षमता (बच्चों द्वारा 600 मीटर पैदल चलने/दौड़ लगाने पर उनकी सहनशक्ति का रिकॉर्ड) और एनेरोबिक क्षमता (जो बच्चों द्वारा 30 मीटर की तेज दौड़ के आधार पर नापी जाती है); शारीरिक/माँसपेशीय क्षमता (जो 'सिट एण्ड रीच एक्टिविटी' यानी बैठे–बैठे खुद की पहुँच/विस्तार देखने, 'सिट–अप' व्यायाम यानी उठक–बैठक, खड़े होने, लम्बी कूद आदि के द्वारा नापी जाती है); लचीलापन और बॉडी मास इण्डेक्स – बी.एम.आई. (जिसे बच्चों का वजन और लम्बाई नाप कर आँका जाता है और जिसके तहत उन्हें कम–वजन/स्वस्थ/अधिक–वजन वाला और मोटा चिह्नित किया जाता है)।

आकलन में शामिल बच्चों में से 43 प्रतिशत की शारीरिक बनावट अस्वस्थ (यानी स्वस्थ बी.एम.आई. से कम या अधिक बी.एम.आई.) पाई गई। 24 प्रतिशत बच्चों का बी.एम.आई. सामान्य से अधिक रिकॉर्ड किया गया, जो अधिक–वजन/मोटापा दर्शाता है। इसके साथ–साथ, अगर ऐसे (अधिक–वजनी/मोटे) बच्चों के लचीलापन से सम्बद्ध अंक भी खराब हों तो बड़े होने पर इन बच्चों को पीठ की तकलीफों का सामना करना पड़ सकता है (ध्यान देने योग्य बात है कि यहाँ भी 57 प्रतिशत बच्चों के अंक औसत या औसत से काफी कम आए)।

इस प्रकार, जैसे–जैसे बच्चे बड़े होंगे, कौशल–विकास तथा शारीरिक स्वास्थ्य के निम्न स्तरों की शक्तिशाली जोड़ी उन्हें शारीरिक गतिविधि और खेलों से दूर ही रखेगी। इसके साथ–साथ उन्हें खाने–पीने की नुकसानदेह आदतों (जैसे 'जंक फूड' तथा 'प्रोसेस्ड' यानी प्रसाधित भोजन का सेवन) और घर में बैठे–बिठाए मनोरंजन की लत (इण्टरनेट, वीडियो गेम्स, टी.वी. आदि) लग जाए तो बच्चों की एक पूरी पीढ़ी निष्क्रिय और अस्वस्थ वयस्कों के तौर पर बड़ी हो रही होगी।

कोई दो दशक पहले दौड़ने या फेंकने जैसे कौशलों को हम सामान्य मानकर चलते थे। दुख की बात है कि आज के बच्चे इनमें भी कमजोर पाए जाते हैं। स्वाभाविक ही है कि जिस गतिविधि से सम्बद्ध कौशल उसके पास नहीं हैं, एक व्यक्ति उस गतिविधि से दूर ही रहेगा। वे खेलने में स्वयं को असमर्थ पाते हैं, इसीलिए ज्यादातर बच्चे कम से कम खेलना पसन्द करते हैं और अपना ज्यादातर समय घर के अन्दर ही बिताना पसन्द करते हैं। बच्चों में खेल–कौशल विकसित करना जरूरी है, लेकिन स्वास्थ्य सम्बन्धी उनके निम्न स्तरों को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता। बच्चे यदि लम्बे समय तक दौड़ या कूद नहीं सकते, तो वे सोफे पर लेटे रहना ही पसन्द करेंगे। स्थिति को बदलना है तो माता–पिता और स्कूलों को मिलजुल कर काम करना होगा।

## मजे और जुड़ाव पर ध्यान केन्द्रित करना : खेलों को लेकर हमारी सोच में आवश्यक बुनियादी बदलाव

बच्चे तो बस केवल मजा लेने के लिए खेलते हैं – यह बात बड़ों को तब समझ में आती है जब बच्चों की खराब सेहत को लेकर उनकी चिन्ताएँ बढ़ने लगती हैं और समाज में भी बच्चों में मोटापे, और उससे जुड़ी शारीरिक और मनोवैज्ञानिक समस्याएँ बढ़ने लगती हैं। शारीरिक गतिविधि इन रोगों से निपटने का उम्दा उपाय है लेकिन साथ ही यह सुनिश्चित करने का सही तरीका भी खोजा जाना चाहिए कि सभी बच्चे नियमित शारीरिक गतिविधि में पूरी तरह से शामिल हों।

किसी भी उपचार की रूपरेखा इस समझ पर टिकी होनी चाहिए कि एक बच्चे के शरीर और मन की 'तबीयत' या बनावट कैसी है। स्वास्थ्य और फिटनेस के बहुत से कार्यक्रम वयस्कों के परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखकर बनाए जाते हैं। इसके चलते उन तत्वों को भुला दिया जाता है जो बच्चों के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण होते हैं। उदाहरण के लिए, बच्चों का 'जिम' जाना ठीक नहीं है। उनके शरीर एक जिम की बेहद व्यवस्थित, दोहराई जाने वाली और वजन उठाने की गतिविधियों के हिसाब से नहीं बने होते। उन्हें वजन घटाने के सीमित आहार (डाइट) पर भी नहीं रहना चाहिए। किसी भी व्यक्ति के लिए सन्तुलन जरूरी है लेकिन बच्चों के लिए वजन कम करने के साधन के तौर पर डाइटिंग बिलकुल ठीक नहीं है क्योंकि बच्चे का शरीर तो अभी विकसित हो रहा होता है। बच्चे बने ही खेलने के लिए होते हैं, इसी के द्वारा प्रकृति उन्हें स्वस्थ और फिट रखना सुनिश्चित

बन जाने के बाद कि खेलना बच्चों के लिए स्वाभाविक है, सबसे बड़ी चुनौती यह सुनिश्चित करने की हो जाती है कि कोई भी बच्चा खेलने से वंचित न रहे। स्कूलों के खेल–कार्यक्रम आमतौर पर सिलसिलेवार या व्यवस्थित नहीं होते और इनका बल खेलों में होनहार बच्चों/स्कूल टीमों को प्रोत्साहित करने पर रहता है। इस सबके चलते, अधिकांश बच्चे जिनका चयन नहीं हो पाता, या तो अलग–थलग पड़ जाते हैं या फिर उन्हें खेलने में आनन्द नहीं आता। तो हम कैसे सुनिश्चित करें कि उन्हें खेलने में आनन्द आए?

कुछ महत्वपूर्ण बातें इस प्रकार हैं:

1. उम्र–अनुसार खेल सामग्री : प्रत्येक बच्चा अपनी उम्र के हिसाब से ही खेल–सामग्री का प्रयोग कर पाता है। उदाहरण के लिए, बास्केटबॉल के खेल में, वयस्कों द्वारा इस्तेमाल की जाने वाली बड़े आकार की बास्केटबॉल अगर छोटे बच्चों को खेलने के लिए दी जाएगी तो उम्रभर के लिए उनकी तकनीक बिगड़ जाएगी, क्योंकि वे तो बास्केटबॉल को शॉट–पुट (गोला) की तरह ही फेंक पाएँगे।
2. समावेश : सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि सब बच्चे गतिविधि में शामिल हों – गतिविधि उन बच्चों के लिए न बनाई जाए जिनमें खेलकूद की क्षमता पहले से मौजूद है। इससे यह सुनिश्चित हो पाता है कि सभी बच्चों की रुचि खेलने के अनुभव में बनी रहे और वे खेलों से दूर न हों। सही मात्रा/संख्या में खेल सामग्री उपलब्ध करवाकर और प्रत्येक सत्र में प्रत्येक बच्चे के हिसाब से विशिष्ट उद्देश्यों/नतीजों वाली सिलसिलेवार योजना बनाकर यह सुनिश्चित किया जा सकता है कि सब बच्चे उस खेल, उस गतिविधि में शामिल हों और कोई भी बच्चा छूट न जाए।
3. बुनियादी कौशलों से परिचय : यह बहुत जरूरी है कि असली खेल में भाग लेने से पहले कुछ समय तक सभी बच्चों को उस खेल के बुनियादी नियम और कौशल सिखाए जाएँ। वर्ना, खेलों में पहले से उस्ताद बच्चे बाकी बच्चों पर हावी हो जाएँगे – और ये बच्चे, खेल का सही मजा नहीं ले पाएँगे।
4. छोटी–छोटी उपलब्धियों को पुरस्कृत करना : समावेश और उम्र–अनुसार उपयुक्त सामग्री के जरिए बच्चों को बुनियादी कौशल सिखाने के अलावा, देखी गई प्रगति को दर्ज करना और छोटे से छोटे सुधार को भी पुरस्कृत करना बहुत महत्वपूर्ण है (और यह कतई जरूरी नहीं है कि यह सुधार प्रतिस्पर्द्धा के स्तर पर हो!)। इससे बच्चों को प्रोत्साहन मिलता है कि वे अपना स्तर और ऊँचा उठाएँ, और लगातार सुधार की ओर बढ़ें।

**निष्कर्ष**

वयस्क (अभिभावक/स्कूल नेतृत्व) होने के नाते, अगली बार यदि हम देखें कि कोई बच्चा शारीरिक गतिविधि और खेलों के प्रति उत्साहित नहीं है, तो हमें एक मिनट के लिए रुककर विश्लेषण करना चाहिए कि उसे किस प्रकार का खेल–अनुभव मिलता रहा है। हो सकता है कि इस विश्लेषण से हमें कुछ सीधे, लेकिन चौंकाने वाले जवाब मिलें!

***सौमिल मजूमदार*** *भारत के सबसे पहले और सबसे बड़े स्कूली खेल–शिक्षण उपक्रम 'एजुस्पोर्टस्' के सह–संस्थापक और मुख्य कार्यकारी अधिकारी (सी.ई.ओ.) हैं। उनका विश्वास है कि खेल के जादू के जरिए जीवन–कौशलों से लैस बच्चों की एक स्वस्थ और चुस्त पीढ़ी विकसित करने के काम हेतु स्कूल, आदर्श भागीदार हैं। सौमिल 'स्पोर्टजविलेज' के संस्थापक–निदेशक भी हैं। विप्रो के साथ अपनी पारी के बाद वे 'क्यू–सपोर्ट' (भारत की पहली रिमोट टेक–सपोर्ट कम्पनियों में से एक) के संस्थापक–सी.ई.ओ. भी रहे।*

*वे आई.आई.टी., बम्बई से बी.टेक. और आई.आई.एम., बैंगलोर से एम.बी.ए. हैं। भारत के कई अग्रणी स्कूलों में कार्यशालाएँ करने के अलावा वे आई.आई.एम., बंगलौर; आई.एस.बी., हैदराबाद; लक्ष्मीबाई नेशनल कॉलेज ऑफ फिजिकल एजूकेशन, त्रिवेन्द्रम और टी.आई.ई. (द इण्डस आन्त्रप्रिन्योर्स) के गेस्ट लेक्चरर भी रहे हैं। उनके पास 'नेहरू इंस्टिट्यूट ऑफ माउण्टेनियरिंग' (उत्तरकाशी) की बेसिक माउण्टेनियरिंग डिग्री भी है। सौमिल, महाराष्ट्र की बैडमिण्टन टीम और आई.आई.टी., बम्बई की फुटबॉल टीम में भी रहे हैं।*

## खण्ड–स

# मैं हूँ...

# 22 मैं कृतिका नाडिग हूँ

कृतिका नाडिग

भारतीय परिवेश में पेशेवर खेल और स्कूल की पढ़ाई की गलबहियाँ विरले ही दिखती हैं। अधिकांश स्कूल अपने छात्रों को अन्तर–विद्यालय शील्ड और ट्रॉफियाँ जीत कर लाता देख खुश तो होते हैं, लेकिन यह खुशी और उत्साह अक्सर बस यहीं खत्म हो जाता है। एक ऐसी अंक–केन्द्रित व्यवस्था से, जिसमें हमारी सी.वी. पर दी गई पाठ्येतर उपलब्धियों की कोई अहमियत ही न हो, भला आप और क्या उम्मीद कर सकते हैं!

शुरुआत में, एक नातजुर्बेकार शतरंज खिलाड़ी के तौर पर मेरा अनुभव भी इससे कुछ बहुत अलग नहीं था। आठ बरस की उम्र से मैंने इस खेल में अपनी बिसात जमानी शुरू की, और कुछ सालों बाद मैं एक नियमित टूर्नामैण्ट खिलाड़ी हो चली थी। मैं एक ऐसे स्कूल गई जिसे बड़ी कुशलतापूर्वक एक के बाद एक बोर्ड परीक्षाओं के टॉपर पैदा करने में महारत हासिल थी। इसी बात पर उसकी शोहरत टिकी थी। छुट्टी की मेरी हर अर्जी के साथ प्राचार्य से बार–बार दोहराया गया मेरा निवेदन होता कि वे मेरी अर्जी मंजूर करें, तथा मुझे यात्रा करने और खेलने की अनुमति दें।

ऐसा नहीं है कि स्कूल अपनी खेल प्रतिभाओं का मोल नहीं समझते। बात बस यह है कि खेल स्कूल की वरीयता सूची में काफी नीचे आते हैं। जब तक किसी खिलाड़ी के कारनामे समाचार पत्रों में बड़े–बड़े अक्षरों में नहीं छपते, कम ही आशा रहती है कि उसे गम्भीरता से लिया जाएगा। नतीजतन, खिलाड़ी को अपना पहला ब्रेक (यानी बड़ी प्रतियोगिता में मैच खेलने का सबसे पहला अवसर) मिलने तक उसे बहुत कम समर्थन और प्रोत्साहन मिलता है, और पहला ब्रेक मिलने में बरसों भी लग सकते हैं।

स्कूल प्रबन्धन को इस बारे में आश्वस्त करने का कोई शर्तिया तरीका नहीं है कि आपका बच्चा, जिसके नाम कोई चैम्पियनशिप नहीं है, शहर के बाहर होने वाले टूर्नामैण्ट्स में खेलने का माद्दा रखता है। लेकिन खेल जगत की पृष्ठभूमि से थोड़ा–बहुत भी वाकिफ व्यक्ति जानता है कि चुनौतीपूर्ण राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में खेलने का अवसर मिलना एक चैम्पियन खिलाड़ी बनने की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

इस सबके बावजूद, खिलाड़ी अगर ठान ले तो इस हठी स्कूली व्यवस्था में भी अपने लिए एक राह बनाई जा सकती है। मेरी माँ का हर बार समाचार पत्रों की कतरनें या टूर्नामैण्ट के परिपत्र लेकर स्कूली प्रशासन से मिलते रहना अन्ततः रंग लाया, और मुझे हाजिरी से सम्बन्धित ढील मिलने लगी।

हाँ, मेरे लिए अलग से विशेष कक्षाएँ लगाने या परीक्षा रखने का तो कोई सवाल ही नहीं था। मैं एक महीने लम्बे खेल–दौरे से लौटकर आती और आते ही नोट्स के अम्बार से भिड़ जाती, जबकि कक्षा के मेरे बाकी साथी मुझसे आगे निकल चुके होते। मेरे अनिश्चित कार्यक्रम को देखते हुए ट्यूशन का विकल्प सम्भव नहीं था। 10 वीं कक्षा के अन्तिम कुछ महीने ही थे जब मैं घर पर टिकी रही और एक प्राइवेट ट्यूटर से गणित पढ़ने लगी।

अनुभव से सबक लेते हुए मेरे माता–पिता ने मेरा दाखिला एक प्रगतिशील अन्तर्राष्ट्रीय स्कूल की 11 वीं कक्षा में कराया, और इस तरह मैं केन्द्रीय बोर्ड के बन्धन से मुक्त हुई। यहाँ पढ़ाई एक लचीले कार्यक्रम के हिसाब से होती थी, और हर क्लास में जो चर्चाएँ होती थीं, उनका पिछली कक्षा में हुई पढ़ाई से कोई नाता नहीं होता था – यह व्यवस्था मेरे लिए एकदम मुफीद थी।

मेरा यह नया स्कूल अन्धकार–युग से बाहर निकल चुका था। मेरे पास अपना काम ई–मेल से भेजने का विकल्प था और मैं अपनी घुमक्कड़ी के दौरान भी सम्पर्क में बनी रह सकती थी। स्कूल के प्रमुख बहुत ही समझदार व्यक्ति थे जिन्होंने न सिर्फ मेरा वार्षिक शुल्क माफ कर दिया बल्कि हाजिरी की अनिवार्यता से भी मुझे मुक्त किया। खेलने के लिए तो मैं पूरी तरह से आजाद थी। लेकिन अपने कुछ बेहतरीन अध्यापकों के प्रति मेरी जवाबदेही भी थी क्योंकि वे मुझसे पढ़ाई में भी उतनी ही मेहनत की अपेक्षा रखते थे।

मेरे कुछ मित्र हैं जो इस बात से सहमति नहीं रखना चाहेंगे, लेकिन शतरंज के खिलाड़ियों के बारे में आमतौर पर यही सोचा जाता है कि वे बहुत बुद्धिमान होंगे। नतीजतन, हम शतरंज के खिलाड़ी तो मूढ़ विद्यार्थी

बनकर भी अपना पीछा नहीं छुड़ा सकते। यह खेल खिलाड़ियों को इतना सक्षम तो बना ही देता है कि वे अपनी पढ़ाई से निपट सकें। गणित से इसका कोई सीधा सम्बन्ध हो या न हो, लेकिन इससे बच्चे की एकाग्रता, याददाश्त और तर्कशक्ति में दस गुना बेहतरी तो आ ही जाती है।

मैं दावे के साथ तो नहीं कह सकती कि शारीरिक खेलों का पढ़ाई और परिणामों पर कैसा–क्या असर पड़ता है लेकिन इतना तो मैं कह सकती हूँ कि किसी भी प्रकार की खेल–गतिविधि एक ऐसा हरफनमौला व्यक्तित्व बनने में सहायक होती है, जो दुनिया में आगे बढ़ने के लिए निरे 90 प्रतिशत के मुकाबले अधिक उपयोगी होता है। अलग–अलग स्थानों पर जाकर उस वैश्विक समुदाय का हिस्सा होना जो वह खेल खेलने के लिए एकत्र होता है जिसे वह सामूहिक रूप से प्यार करता है, एक ऐसा अनुभव है जिसे आँका–तोला नहीं जा सकता।

और कुछ नहीं तो बच्चों को कम से कम मनोरंजन के तौर पर कोई खेल खेलना चाहिए। इससे उन्हें यह बात समझ में आएगी कि परीक्षाओं से आगे भी एक दुनिया है। जो लोग शौकिया खेलने के स्तर से आगे जाते हैं, वे यह भी सीखते हैं कि प्रतिस्पर्धा के माहौल में मिलने वाली ऊँच–नीच का सामना सहज रूप से कैसे किया जाए। यह एक ऐसी खूबी है जो किसी भी अकादमिक पाठ्यचर्या से सीखने को नहीं मिलती।

इसी बीच, शतरंज खेलने वाले मेरे बहुत से मित्र, स्कूल छोड़कर खेल के अध्ययन को अपना समय समर्पित करने लगे थे। लेकिन मैं तो स्कूल में बनी रही क्योंकि मेरे परिवार में अच्छी शिक्षा एक ऐसी चीज मानी जाती थी जिस पर कभी कोई समझौता नहीं हो सकता था। हाँ, इसकी कीमत मुझे जरूर चुकानी पड़ी क्योंकि इसके चलते मैं पूरी तरह से किसी एक जगह पर नहीं टिकी रह पाती थी।

सैलानियों वाली मेरी जीवनशैली के सबसे बड़े प्रभावों में से एक प्रभाव यह था कि मेरे व्यक्तिगत सम्बन्धों में समय का खालीपन ही रहा। कक्षा 7 से कक्षा 12 तक के सालों में आप अक्सर ताउम्र चलने वाली दोस्तियाँ बनाते हैं, लेकिन मेरे इस स्कूली दौर से यह प्रसंग गायब ही रहा। मैं अगर बास्केटबॉल या हॉकी की खिलाड़ी रही होती तो जरूर अपने साथी खिलाड़ियों से दोस्ती रख पाती। लेकिन शतरंज बहुत अलग खेल था।

व्यक्तिगत खेल मूलतः एकाकी होते हैं। अपने सहयात्री और साथ प्रशिक्षण लेने वाले अन्य खिलाड़ियों के साथ अच्छे रिश्ते बनाए तो जा सकते हैं लेकिन यहाँ अपना रक्षा कवच पूरी तरह से गिरा देना आपके लिए सम्भव नहीं होता। यहाँ प्रत्येक मित्र में एक प्रतिद्वन्द्वी भी होता है, और अपनी सबसे अच्छी दोस्त से चैम्पियनशिप हार या जीत जाने से ज्यादा पेंचदार कोई और अहसास नहीं होता।

स्कूल में एक व्यक्तिगत खिलाड़ी होना बन्धनकारी भी हो सकता है और मुक्तिदायक भी । निर्भर करता है कि आप इसे किस दृष्टि से देखते हैं। स्कूल की फुटबॉल या बास्केटबॉल टीम के मुकाबले, व्यक्तिगत खिलाड़ी को खेलने के लिए जाने की अनुमति लेना हो तो तमाम किस्म की अनुमतियाँ पाने के लिए काफी कड़ी मशक्कत करनी पड़ती है। शायद ही कोई स्कूल होगा जो शतरंज जैसे खेलों के लिए निशुल्क कोचिंग का प्रबन्ध करता हो। और आप कल्पना भी नहीं कर सकते कि यह कितना संसाधन–सघन खेल है। लेकिन अन्त में खिलाड़ी अपनी सब उपलब्धियों और भविष्य के मौकों को बस अपने लिए रख सकता है, उन पर बस उसी का दावा रहता है।

खेल की प्रकृति स्कूल के बाद आने वाले जीवन पर भी बड़ा असर डालती है। मैं पाती हूँ कि अकेले काम करना मुझे अच्छा लगता है। मैं अपनी सारी जिम्मेदारी भी और जोखिम भी उठाने को तैयार रहती हूँ, जबकि टीम–खिलाड़ी शायद अपने सहकर्मियों के साथ तालमेल बिठाकर ही बेहतर काम कर पाते हों। इनमें से कौन सा तरीका कामयाब होगा, यह तो इस बात पर निर्भर

करेगा कि आपके काम करने की जगह, टीमवर्क यानी सामूहिक काम के ज्यादा अनुकूल है या फिर व्यक्तिगत रचनाधर्मिता के।

मुझे इस बात की खुशी है कि खेल पाने के लिए आवश्यक तमाम तरह की बाजीगरी के बावजूद मेरे घरवालों ने मुझे अपनी पढ़ाई छोड़ने की अनुमति नहीं दी। मैं ऐसे कई खिलाड़ियों को जानती हूँ जिन्होंने अपने खेल में तो शानदार सफलता हासिल की है, लेकिन वे खेल के बाहर किसी विषय पर वार्तालाप नहीं कर सकते। लोग अपनी प्राथमिकताओं के हिसाब से अपने विकल्प चुनते हैं, लेकिन मेरे विचार से जीवन इतना सम्पन्न और सम्भावनाओं से लबरेज है कि उसे किसी एक ही पहलू तक सीमित नहीं किया जा सकता।

पीछे मुड़कर देखने पर मुझे नहीं लगता कि मेरे स्कूल ने मेरे शतरंज करिअर को जितना समर्थन दिया, वह उससे ज्यादा कुछ और कर सकता था। सब संस्थाओं के पास इतने साधन नहीं होते कि वे प्रतिभाशाली खिलाड़ियों के लिए कोई कोष इत्यादि बना सकें, हालाँकि वह एक सपना जरूर होता है। मेरे खेल के अभ्यास के लिए मुझे अपने स्कूल परिसर में उत्तम क्वालिटी के मैदान या सुविधाओं की जरूरत बिल्कुल नहीं थी। कभी–कभार किसी अध्यापक के हौसला बढ़ाने वाले दो बोल सुनने, लम्बे समय बाद मुझे देखने वाले मेरे दोस्तों के चेहरों पर मुस्कान देखने और मेरे विदेशी दौरों को लेकर उनके जिज्ञासा भरे सवाल सुनने के अलावा मुझे कुछ और दरकार न था! और अधिकतर, यह सब तो मुझे मिल ही गया!

***कृतिका नाडिग*** *महिला ग्रैण्ड मास्टर और सब–जूनियर, जूनियर तथा सीनियर महिला वर्गों की राष्ट्रीय चैम्पियन हैं। वे महिलाओं की सीनियर कैटेगरी में एशियन जोनल चौम्पियन भी हैं। कई अन्तर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में उन्होंने भारत का प्रतिनिधित्व किया है, जिनमें अन्तिम चैम्पियनशिप रही 2010 में अंताक्या, तुर्की में हुई विश्व महिला चैम्पियनशिप।*

# 23 छड़ी वाला लड़का

**(जैसा उन्होंने नताशा किणी को बताया)**

**चिक्करंगप्पा**

काई आठ साल पहले अगर किसी ने मुझसे यह कहा होता कि एक दिन मैं देश का सबसे बेहतरीन गोल्फर बनूँगा, तो मैं हँस देता। बंगलौर के पास एक छोटे से गाँव (रांगेगौदन्ना डोड्डी) के एक ग़रीब परिवार में पैदा होने और पलने–बड़े होने के चलते एक पेशेवर गोल्फर होने का सपना देखना भी मेरे बस की बात न थी।

गोल्फ से मेरा पहला परिचय हमारे गाँव के नजदीक ईगल्टन गोल्फ रिसोर्ट में हुआ। मुझे लगा गोया यह हॉकी का ऐसा कोई खेल था जिसमें ज्यादा दौड़–भाग नहीं करनी पड़ती। मैंने जब अपने दोस्तों से इस खेल के बारे में पूछा तो जो कुछ भी उन्हें मालूम था उन्होंने मुझसे साझा किया। इसके साथ ही वे एक चीज जोड़ना नहीं भूलते थे कि ''यह खेल गरीबों के लिए नहीं है।'' लेकिन इस खेल ने मुझे मोहित कर लिया था और मैं इसके बारे में जानने को सदा बेताब रहा करता था।

कौतूहल शायद सर्वोत्तम धन है। मेरी उत्सुकता मुझे गोल्फ कोर्स पर बॉल बॉय की नौकरी तक ले आई। कोर्स (गोल्फ मैदान) पर घण्टों बिताने के दौरान वहाँ दी जाने वाली तमाम हिदायतें और युक्तियाँ मेरे कानों में भी पड़ा करतीं, हालाँकि भाषा न जानने के चलते मैं कुछ भी समझ न पाता था। धीरे–धीरे मैं एक के बाद एक सीढ़ियाँ चढ़ता गया और एक दिन कैडी (गोल्फर का बल्लावाहक) का काम करने लगा। फिर क्या था! सब कुछ बदलना शुरू हो गया।

खिलाड़ियों की तैयारी और शैली देख–देखकर मैंने गोल्फ–कोर्स के किनारे खेलना शुरू कर दिया। सप्ताह में काम के दिनों में मैं लकड़ी की उस गोल्फ–स्टिक से खेलता जिसे मैंने अपने गाँव के खेतों में अपने हाथों से बनाया था। फिर एक दिन, मेरे वर्तमान कोच विजय दिवेचा ने मुझे मैदान में ही कुछ शॉट्स आजमाते हुए देख लिया और कहा कि मेरा स्विंग अच्छा है, मुझे इस खेल को गम्भीरता से लेना चाहिए। उनका सुझाव सच्चे मन से दिया गया था लेकिन मेरे लिए उस पर अमल करना नामुमकिन था क्योंकि मैं जानता था कि यह 'अमीर आदमी' का खेल है। इससे तो मुझे दूर ही रहना था, क्योंकि यह मेरी हैसियत के बाहर की चीज थी। लेकिन विजय सर तो यह सब सुनने–मानने को तैयार ही नहीं थे। इस खेल में मेरी रुचि देखते हुए उन्होंने ईगल्टन गोल्फ रिसोर्ट की समिति को राजी कर लिया कि पेशेवर स्तर पर गोल्फ खेलने की सम्भावनाएँ तलाशने में वे मेरी मदद करें। उस वक्त मेरी उम्र लगभग दस बरस थी – शानदार स्विंग मारने वाला एक गरीब लड़का, गोल्फ खेलने में जिसकी मदद करने के लिए ईगल्टन गोल्फ रिसोर्ट पर एक मार्गदर्शक देवदूत की तरह आ गया था।

तब से ईगल्टन गोल्फ रिसोर्ट का मेरे जीवन पर बहुत प्रभाव रहा है। वहाँ के लोगों ने मुझे तब से हर तरह का सहारा दिया है जब मैं ''लकड़ी की छड़ी वाला गाँव का लड़का था।'' उन्होंने कभी भी अपने व्यवहार से मुझे यह नहीं जतलाया कि उनकी भाषा तक नहीं समझ पाने वाला मैं एक अदना सा कैडी (बल्ला ढोने वाला) भर हूँ।

मेरी प्रतिभा देखकर विजय सर ने मुझे एक पेशेवर गोल्फर बनने का सुझाव दिया था। मुझे नहीं पता था कि इस पर अपनी क्या प्रतिक्रिया दूँ – मुझे खुशी इस बात की थी कि अपना पसन्दीदा खेल खेल पाऊँगा और डर इस बात का था कि मेरे घर वाले शायद इतने खुश न हों। मेरे घर वालों को लगता था कि मैं गोल्फ कोर्स पर काम करके जो पैसे कमाता हूँ उस पैसे से मेरी पढ़ाई का खर्च पूरा हो सकता है। लेकिन मेरा गोल्फ खेलना उनके लिए दूर की कौड़ी थी। घर आकर जब मैंने अपनी माँ को बताया कि मुझे वहाँ खेलने का मौका मिला है और मैं शायद पेशेवर स्तर पर भी गोल्फ खेल सकता हूँ, तो मेरी माँ ने बड़ी कड़ाई से मुझे गोल्फ खेलने की बात भूल जाने को कहा। वे इतनी नाराज हो गई थीं कि मुझसे बात भी नहीं करती थीं। नतीजतन, मैं वापस रिसोर्ट गया और जाकर कह दिया कि मेरे घर वालों को मेरा गोल्फ खेलना मंजूर नहीं है, सो मैं गोल्फ नहीं खेल पाऊँगा। लेकिन वहाँ काम करते–करते छिप–छिप कर गोल्फ खेलने से मैं अपने आपको रोक नहीं पाया। मैंने अपनी माँ को इस बात की जरा भी भनक नहीं लगने दी कि मैं फिर से गोल्फ खेलने लगा हूँ, और इस तरह धीरे–धीरे मैंने रोजाना गोल्फ खेलना

जारी रखा। एक दिन मैं पकड़ा गया। मेरे एक रिश्तेदार ने मुझे गोल्फ खेलते हुए देखा और उसने जाकर मेरी माँ को कहा कि मैं उनकी अवहेलना कर रहा हूँ। बस फिर क्या था! मेरी माँ तो उबल पड़ीं!! वे चिल्लाने लगीं कि यह खेल अमीर लोगों के लिए है, और मेरा काम है कि खेलना–वेलना छोड़ चुपचाप पढ़ूँ–लिखूँ और अपनी डिग्री हासिल करूँ। आँसुओं और तू–तू–मैं–मैं के बीच मैंने एक साल के लिए अपनी पढ़ाई से छुट्टी माँगी ताकि मैं एकाग्र होकर अपना खेल खेल सकूँ। साथ ही मैंने यह भी घोषणा कर दी कि इस एक साल में यदि मैं कुछ खास न कर पाया तो फिर मैं उम्र भर के लिए खेल को भूल जाऊँगा और फिर बस अपनी पढ़ाई और अपने काम में मन लगाऊँगा। मुझे नहीं मालूम कि मेरी घोषणा के कारण या फिर मेरे हठ के चलते मेरी माँ का दिल पसीजा, लेकिन अन्ततः मुझे एक साल की छुट्टी देने के लिए वे राजी हो गईं। उस दिन मुझे ऐसा लगा जैसे मैं 'इस धरती का राजा' हो गया हूँ। घर वालों की सहमति और उनका समर्थन मेरे लिए बहुत मानी रखते हैं। मेरी माँ अगर मुझे लगातार खेलने से रोकती आतीं तो फिर मेरे लिए खेलना जारी रखना सम्भव न होता और मैं वह चैम्पियन न होता जो मैं आज हूँ।

ऊटी में हुए मेरे पहले टूर्नामैण्ट में मैं दूसरे स्थान पर रहा। मेरी उस जीत ने सबको हैरत में डाल दिया। तब मुझे लगा कि हो सकता है कि मैं वाकई एक अच्छा गोल्फ खिलाड़ी हूँ और लगता है कि आगे चलकर मैं कुछ न कुछ तो पा ही लूँगा। अपने अगले टूर्नामैण्ट में देश के कुछ सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ियों से मेरी होड़ थी। वह टूर्नामैण्ट मैंने खलिन जोशी को हराकर जीत लिया। खलिन की गिनती उस वक्त देश के सर्वोत्तम खिलाड़ियों में होती थी और आज वे मेरे एक अच्छे मित्र हैं। हर व्यक्ति इस बात को लेकर भौंचक और आश्चर्यचकित था कि मेरे अन्दर सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी को मात देने की प्रतिभा थी। उस जीत से मिले आत्मविश्वास ने अगली प्रतियोगिताओं में मेरा भरपूर साथ दिया।

प्रत्येक प्रतियोगिता के बाद मैं इत्मीनान से बैठकर अपनी वह डायरी बाँचता जिसमें मेरी हर जीत के बाद मैं अपनी टिप्पणी दर्ज करता आया था। और मैं चकित रह जाता – लगता कि कोई सपना देख रहा हूँ! मेरा सबसे बड़ा सपना था खलिन के विरुद्ध खेलना और उसे हराना। इसके बाद तो मुझे लगने ही लगा कि मुझे राष्ट्रीय स्तर पर खुद को आजमाना चाहिए और अब से ऊँचे स्तर पर खेलना चाहिए।

अपना पहला राष्ट्रीय टूर्नामैण्ट मैंने मुम्बई में खेला। उस समय मुझे न हिन्दी आती थी, न अँग्रेजी, जो मेरे लिए अच्छी बात न थी। मैं तो कैडीज तक को नहीं समझ पाता था जो मुझे खेल के बारे में कुछ बताने की कोशिश कर रहे होते थे। भाषा न आने के अलावा मैं बहुत संकोची भी था और अभ्यास के दौरान डरा–सहमा रहता था क्योंकि वह एक राष्ट्रीय टूर्नामैण्ट था। जिस मैदान पर मैं खेल रहा था उस मैदान पर भारत के कुछ सर्वश्रेष्ठ गोल्फ खिलाड़ी खेल रहे थे – भयभीत कर देने वाला था वह माहौल। लेकिन मैं टूर्नामैण्ट जीत गया! हाँ, सही में जीत गया! मेरा पहला राष्ट्रीय खिताब तो वह था ही, उसने मेरा आत्मविश्वास भी कई गुना बढ़ा दिया। उस दिन मैंने अपने आपसे कहा – दुनिया चाहे इधर की उधर हो, मैं दुनिया का सर्वश्रेष्ठ खिलाड़ी बनना चाहता हूँ।

टूर्नामैण्ट पर टूर्नामैण्ट जीतते जाने के चलते मेरे माता–पिता को भी इस खेल में रस आने लगा। नतीजतन, अब वे मुझे ''कड़ी मेहनत करने, अपने ऊपर विश्वास रखने और कड़ा अभ्यास करने'' की सलाह देने लगे जबकि इसके पहले वे इस खेल का 'क, ख, ग...' भी नहीं जानते थे। विभिन्न टूर्नामैण्टों में चोटी के तीन खिलाड़ियों में मेरा नाम होने के नतीजतन मेरी उपलब्धियों का हिस्सा बनने से उन्हें अब कोई गुरेज नहीं रह गया था। अखबार की सुर्खियों में मेरा नाम या मेरी तस्वीर देखने पर वे गौरवान्वित महसूस करते। रिश्तेदार और गाँव के लोग घर आकर मेरे घर वालों को बधाई देते और इस बात

पर खुश होते कि मैंने इतना कुछ हासिल कर लिया है। इस बात से मुझे भी खुशी मिलती है क्योंकि अब मुझे दिखता है कि मेरी उपलब्धियों से मेरे माता–पिता को वाकई कितना फख्र महसूस होता है।

ऐसे बहुत से प्रतिभाशाली बच्चे हैं जो बड़े घरों से नहीं हैं। फिर भी वे अपना नाम कमा लेते हैं। अब मेरे आदर्श सचिन तेंदुलकर को ही लीजिए। उन्होंने अपनी शिक्षा भी पूरी नहीं की थी, लेकिन फिर भी दुनिया के सर्वश्रेष्ठ क्रिकेटर बने। यहाँ तक कि प्रवीण कुमार और विनय कुमार भी अमीर घरों से नहीं आते, फिर भी उन्होंने क्रिकेट में अपना एक मुकाम बना लिया है। जो बच्चे खेलों (गोल्फ ही नहीं, किसी भी खेल) में अपनी रुचि दिखाते हैं, उन्हें वह सब करने देना चाहिए जो वे करना चाहते हैं। अब चूँकि मैं उस मुकाम पर हूँ जहाँ से मुझे बस अब आगे ही आगे जाना है, मैं अपने गाँव के प्रतिभाशाली बच्चों की तलाश में रहता हूँ। मैं उन्हीं लोगों को सिखाना चाहता हूँ जो वाकई खेल में रुचि रखते हैं और दिल से सीखना चाहते हैं। उनके पास कोच तो नहीं है, लेकिन मैं उन्हें गोल्फ की बुनियादी बातें, बारीकियाँ सिखाना चाहूँगा। मेरा अन्तिम ध्येय यही होगा कि कम से कम एक खिलाड़ी तो मुझसे बेहतर बने!

गोल्फ के खेल ने मेरा जीवन ही बदल कर रख दिया है। अब मैं एक 'जैण्टलमैन' बन गया हूँ और सार्वजनिक जीवन में कैसे पेश आना चाहिए, यह इल्म मुझे हो गया है। सामाजिक सलीका आ गया है। ढंग के कपड़े पहनना भी अब मुझे आ गया है। भाषा का कौशल भी मैंने सीख लिया है और अब मैं हिन्दी और अँग्रेजी, दोनों भाषाओं में बात कर सकता हूँ। जीवन के हर पहलू को लेकर मेरा नजरिया सकारात्मक हुआ है। दिन–ब–दिन अब मैं अपने आपको मानसिक और शारीरिक तौर पर ज्यादा शक्तिशाली होता महसूस करने लगा हूँ।

खेल ने मुझे कई नैतिक मूल्य भी सिखाए हैं। मेरे शुरुआती दिनों में, मैं एक गुस्सैल खिलाड़ी हुआ करता

था, हारने पर बिफर जाया करता था। सामने वाले की विजय को सराहना मुझे नहीं आता था, उल्टे मैं इस बात से चिढ़ जाता था कि उसने मुझे हरा दिया। किसी भी तरह की हार को कुबूलना मेरे लिए मुमकिन न था। अन्ततः मेरे कोच और मेरे घर वाले मुझे यह समझाने में सफल हुए कि हारना, खेल का एक हिस्सा है। सो खेल ने मुझे जो सबसे महत्वपूर्ण मूल्य दिया है, वह यह कि मैं विनम्र बनूँ और जीत और हार को निरपेक्ष ढंग से स्वीकार करूँ।

खेल ने मुझे अपनी दोस्तियाँ बनाने, बढ़ाने का मौका भी दिया है और मुझे एक विनम्र इनसान बनना सिखाया है।

अब मैं कड़ी मेहनत में विश्वास करने लगा हूँ ताकि मुस्कुराते हुए जिन्दगी का मजा ले सकूँ, हर वक्त, हर पल।

*भारत के एक उदीयमान गोल्फर के रूप में बंगलौर के **चिक्करंगप्पा** ने न केवल जूनियर गोल्फ सर्किट में अपनी धाक जमाई है, बल्कि एक प्रतिभाशाली अव्यवसायी, शौकिया गोल्फर के तौर पर अपनी एक खास जगह भी बनाई है। सन् 2010 में अखिल–भारतीय शौकिया गोल्फ चैम्पियनशिप जीतने वाले वे सबसे कम उम्र के गोल्फर बने। अखिल–भारतीय जूनियर खिताब भी उन्होंने जीता। इस तरह जूनियर और सीनियर, दोनों खिताब जीतने का गौरव पाने वाले वे अकेले खिलाड़ी बने। अपने उत्कृष्ट स्ट्रोकप्ले और अपनी विनम्रता के साथ चिक्का एक खेल सितारा बनने की ओर अग्रसर हैं।*

# 24 बात केवल बैडमिण्टन की ही नहीं है!

अदिति मुटाटकर

बैडमिण्टन मेरा खेल ही नहीं, मेरा होना भी है। मैं जो भी हूँ, इसी से हूँ!

नौ बरस की थी जब मैंने मुम्बई में खेलना शुरू किया। मेरे पिताजी हमारी कॉलोनी के एक सक्रिय खिलाड़ी थे और अपने दोस्तों के साथ आउटडोर बैडमिण्टन खेला करते थे। उन्होंने ही इस खेल से मेरा परिचय करवाया। और जब मैंने उन्हें और उनके दोस्तों को हराना शुरू किया, उन्होंने मुझे मेरे सबसे पहले स्कूल टूर्नामैण्ट में भाग लेने की अनुमति दी – इसमें मैंने तीसरा स्थान प्राप्त किया। अगली गर्मी की छुट्टियों में मैंने सन्तोष क्षत्रिय के ग्रीष्मकालीन कोचिंग कैम्प में भाग लिया, और ठीक दो महीने बाद मैंने अपना पहला 'अण्डर–10' स्टेट टूर्नामैण्ट जीता। बस फिर क्या था, बैडमिण्टन से मेरा जो रोमांस शुरू हुआ वह आज भी प्रगाढ़ बना हुआ है।

मेरा विश्वास है कि खेल ऊँच–नीच का नाश करने वाला होता है, बराबरी लाता है। उस दिन की आपकी फॉर्म ही तय करती है कि उस दिन आप कितने अच्छे खिलाड़ी हैं। खेल जीवन बहुत कठिन है। पहले के मुकाबले आप ज्यादा कड़ी मेहनत करते हैं, फिर भी इस बात की कोई गारण्टी नहीं कि आप अपना मनचाहा परिणाम पाएँगे। अपनी कड़ी मेहनत के बावजूद आप हार सकते हैं। आपको बस इतना ही करना है कि अगले दिन आप उठें और, कड़ी मेहनत करने में फिर से जुट जाएँ – उस हद तक जिस तक आप जा सकते हैं।

और यही बात आपके जीतने पर भी लागू होती है। आप चैम्पियन हैं तो भी आपको अपना स्थान बनाए रखने के लिए अपने प्रतिद्वन्द्वियों के मुकाबले दोगुनी मेहनत करनी होगी। हर कोई आपको हराने के लिए बेताब होगा और आपको अपने चैम्पियन होने के लेबल की रक्षा के लिए अपने को और मजबूत करना होगा। मेरे खेल ने मुझे एक बहुत मजबूत व्यक्ति बनाया है। बैडमिण्टन कोर्ट पर बीते मेरे 14 सालों में मैंने अपने लक्ष्य को पाने के लिए स्वयं को बस मारा नहीं है – इस एक बात को छोड़ बाकी सब कर डाला है। अभी मैंने थोड़ा कुछ हासिल किया है, और बाकी सब पाने में लगी हूँ।

एक बैडमिण्टन खिलाड़ी अनुशासित जीवन जीता है। मेरा जीवन अक्षरश एक समय–सारिणी बन गया है। सुबह मैं साढ़े छह बजे उठती हूँ। ध्यान (मेडिटेशन) लगाती हूँ। दूध और फल खाती हूँ। फिर तीन घण्टे की ट्रेनिंग के लिए बैडमिण्टन–कोर्ट चली जाती हूँ। घर लौटती हूँ। अपनी डायरी लिखती हूँ। दोपहर का भोजन करती हूँ और एक घण्टे की झपकी लेती हूँ। अपने अगले सत्र के लिए तैयार होती हूँ, दो घण्टे के लिए फिर से प्रशिक्षण होता है, घर वापस आती हूँ और रात का भोजन लेती हूँ। अपनी डायरी लिखती हूँ और दूध गटककर साढ़े दस बजे तक सो जाती हूँ। दिन–प्रतिदिन, सप्ताह के छह दिन, मेरा यही नियम रहता है। रविवार को या तो कोई फिल्म देखती हूँ या अपने दोस्तों से मिलती हूँ। इस जीवनशैली को मैंने कभी भी त्याग के रूप में नहीं माना। मेरे लिए तो बस यही जीवन है, और मुझे इससे कोई शिकवा नहीं है। बैडमिण्टन का कोर्ट ही वह जगह है जहाँ मुझे पूरा सुकून मिलता है।

मेरे लिए खेल का अर्थ केवल जीत या हार ही नहीं है, बल्कि जीने का एक सलीका है। मेरे हिस्से में दोनों आए – जीत भी, हार भी। खेल में अपने बरसों के अनुभव से मैंने दोनों से निभाना सीखा। हाँ, एक चीज जिससे निपटना मुझे मुश्किल लगता है, वह है चोटें। भारत एक खेलोन्मुखी देश नहीं है (हालाँकि अब हम धीरे–धीरे उसी ओर बढ़ रहे हैं)। आज भी हमारे पास चोटों से निपटने वाले पेशेवर केन्द्र नहीं हैं। खेल–सम्बन्धी चोटें, सामान्य चोटों से एकदम अलग होती हैं, सो उनसे निपटना भी अलग ढंग से ही पड़ता है। जाँच–निदान और शल्य–चिकित्सा तो वही हो सकते हैं लेकिन बहाली और उपचार एकदम अलग ही होते हैं। खेल–बहाली सेवाओं के प्रति जागरूकता का अभी भी अभाव है। खेल–सम्बन्धी चोटों का विशिष्ट ज्ञान रखने वाले पर्सनल ट्रेनर मिलना बहुत कठिन है। हमारे पास जो भी मुट्ठी भर ऐसे विशेषज्ञ हैं, उन्हें खोज पाना या तो बहुत मुश्किल है या फिर वे बहुत ही महँगे हैं – खासकर मेरे जैसी किसी मध्यमवर्गीय लड़की के लिए।

इसलिए छह बरस पहले जब मुझे पहली बड़ी चोट लगी, जिसमें मेरा दाहिना घुटना टूटा (ठेठ तकनीकी हिसाब

से कहूँ तो मेरे घुटने की सामने वाली स्नायुपट्टिका यानी लिगामेन्ट चिर गई थी और मेरे घुटने की उपास्थि – कार्टिलेज – भी पूरी तरह से फट गई थी), तो यह मेरे लिए बहुत बड़ा धक्का था। मैं तब सत्रह बरस की थी। मेरा खयाल है कि इस घटना से मेरे मुकाबले मेरे माता–पिता कहीं अधिक पीड़ित हुए थे। उस समय मुझे नहीं मालूम था कि मैं फिर से कभी खेल पाऊँगी या नहीं। लेकिन इस बात को लेकर तो मैं दृढ़प्रतिज्ञ थी कि सबसे अच्छी बैडमिण्टन खिलाड़ी बनने के मेरे सपने की राह में चोटों को रुकावट नहीं बनने दूँगी। बस मैंने कमर कस ली और अपने लिए एक अच्छे डॉक्टर (रमैया हॉस्पिटल, बंगलौर के डॉ. सुन्द्रेश) को ढूँढ़ निकाला। उनसे पहली मुलाकात मुझे अभी भी याद है। उन्होंने मेरे घुटने को देखा, जाँचा–परखा और अपनी कुर्सी पर बैठ गए। चूँकि मेरे माता–पिता पुणे में थे सो मैं अपने एक मित्र की माँ के साथ डॉक्टर सुन्द्रेश से मिलने गई थी। पहली बात उन्होंने मुझसे यह कही कि मेरी चोट बहुत गम्भीर थी और उसका ऑपरेशन करना ही पड़ेगा। मैंने उनसे पूछा कि मैं फिर से कब खेल पाऊँगी, और उनका उत्तर था कि मुझे कोर्ट वापस लौटने में ही कम से कम एक साल तो लग जाएगा। मुझे इतने लम्बे इन्तजार का अन्दाजा नहीं था, इसलिए थोड़ी देर तो मैं चुप रही। डॉक्टर ने कहा, ''तुम यदि वाकई ठीक होना चाहती हो तो इसके लिए एक साल तो कुछ भी नहीं है।'' मैं उन्हें तकती रही, और मन ही मन सोचने लगी कि मुझे उन पर यकीन तो करना ही पड़ेगा।

अगले दिन मेरा ऑपरेशन हुआ। हफ्ते–भर बाद मेरी बहाली शुरू हुई। जब तक मैं बिना बैसाखी के फिर से चलने के काबिल नहीं बन पाई, डॉक्टरों ने मेरी बड़ी मदद की। अब शुरू हुई मेरी असली परीक्षा। मैं वापस पुणे लौटी लेकिन मुझे अपने पुनर्वास, अपनी बहाली के बारे में जरा भी ज्ञान नहीं था। सो मैंने डॉक्टरों और इन्टरनेट से जानकारी जुटाना शुरू कर दिया। मैंने उन वरिष्ठ खिलाड़ियों से भी बात की, जो खुद इन्हीं तरह की समस्याओं से उबरे थे। मैंने अपना पर्सनल ट्रेनर खोजने की कोशिश की लेकिन कोई न मिला, और जो मिले भी वे बड़े महँगे थे। मैं अपने माँ–बाप पर इस खर्च का बोझ नहीं डालना चाहती थी; और न ही मेरे कोई प्रायोजक थे। सो यह तो स्पष्ट था कि मुझे खुद ही कोई न कोई जुगाड़ करना होगा।

किसी भी बाहर के व्यक्ति को मेरे जीवन का वह अरसा दुर्भाग्यपूर्ण लग सकता है, लेकिन असल में तो वह मेरे लिए किसी छिपे हुए वरदान से कम नहीं था। इसने मुझे स्वाधीन बनाया; मेरी सीमाओं को आगे धकेला और मुझे दिखाया कि मैं क्या कुछ कर सकती हूँ। इसी के चलते मुझे यह अहसास हुआ कि यह खेल मेरे लिए कितना महत्व रखता है, और इस अनुभव ने मुझे विनम्र बनाया,

समझाया कि जिन्दगी के हर पल को भरपूर जीने का कितना महत्व है। मेरे लिए सबसे अच्छी बात तो यह थी कि मेरे आसपास सब अच्छे ही अच्छे लोग थे। मेरे किसी भी कोच ने न तो हार मानी और न ही सहानुभूति जतलाई। न उन्होंने कोई सांत्वना दी, और न ही मेरे भविष्य को लेकर कोई आशंका व्यक्त की। उन्होंने मुझसे कहा कि आत्मदया और सहानुभूति मेरे किसी काम नहीं आने वालीं। मेरे एक कोच ने कहा, ''तुम्हें सिर्फ एक ही चीज पर ध्यान देना है, वह है समाधान। अपने समाधान खोजो और समस्याओं पर इस विश्वास के सहारे काम करना शुरू कर दो कि ईमानदारी से किया गया हर प्रयास हमेशा तुम्हें अपने लक्ष्य के पास ही ले जाएगा।''

मैं अपनी राह पर चलती रही और अन्त में सफल भी हुई। सभी आयु–समूहों में राष्ट्रीय चैम्पियन बनने और 2008 में विश्व में 27वें नम्बर (आज मैं 102वें क्रम की खिलाड़ी हूँ) की खिलाड़ी बनने के तमाम लक्ष्य मैंने प्राप्त किए और कभी भी अपनी चोट का बहाना नहीं बनाया। मेरे खेल ने मुझे यही सिखाया है कि आप अगर किसी

बात में विश्वास करते हैं तो आप तुरन्त जुट जाइए और उस चीज को पा लीजिए। आप दिल से चाहें तो कुछ भी नामुमकिन नहीं।

एक खिलाड़ी को खूब यात्रा करनी पड़ती है। 23 साल की उम्र तक आते–आते मैं कोई चालीस देश देख चुकी हूँ। अक्सर मैं टीम या अपने माता–पिता के बिना, अकेले ही यात्रा करती हूँ। बहुतेरे देश देखने, उनकी संस्कृतियों, उनके भोजन, उनकी भाषाओं को जानने–समझने का मुझे मौका मिला है, और इसके लिए मैं खुद को बहुत भाग्यशाली मानती हूँ। मुझे यात्रा करना बहुत अच्छा लगता है और मेरा खेल इसमें मेरी मदद करता है। आज मैं अपनी हमउम्र लड़कियों के मुकाबले खुद को कहीं ज्यादा आत्मविश्वासी और सक्षम पाती हूँ, और इसका सारा श्रेय मेरे खेल को जाता है। मैं जानती हूँ कि मैं किसी भी परिस्थिति में रह सकती हूँ, अपना अस्तित्व बनाए रख सकती हूँ, किसी अजनबी देश में, अजनबियों के बीच भी।

मेरी समूची यात्रा के दौरान मेरे खेल ने जो सबसे बड़ा उपहार मुझे दिया है, वह हैं वे लोग जिनसे मैं मिली। मैं प्रकाश पदुकोण, विमल कुमार, हेमन्त हार्डिकर और तमाम अन्य खिलाड़ियों के मार्गदर्शन में काम कर चुकी हूँ। मैंने उन्हें अपना जीवन बेहद विनम्रता और ईमानदारी के साथ जीते हुए देखा है। उन्होंने कभी भी अपनी उपलब्धियों को अपने ऊपर हावी नहीं होने दिया। उन्होंने मुझे सिखाया है कि मैं यह खेल पैसे और नाम कमाने के लिए नहीं बल्कि इसलिए खेलूँ कि मैं इस खेल से प्यार करती हूँ। उन्होंने अपना जीवन इस खेल को समर्पित किया है, और इस खेल के प्रति उनका समर्पण आज भी कायम है। इन लोगों के चलते ही मेरे मानदण्ड हमेशा ऊँचे रहे आए हैं, सिर्फ बैडमिण्टन कोर्ट पर ही नहीं, उसके बाहर भी। उनके प्रभाव ने मुझे विनयशील बनाया है।

बैडमिण्टन के प्रति कृतज्ञ होने के मेरे पास अनन्त कारण हैं। मेरे ख्याल से भारत के हर बच्चे को कोई एक खेल खेलने का मौका तो मिलना ही चाहिए। खेलों का महत्व पढ़ाई से कम नहीं होना चाहिए। खेल आपका चरित्र बनाते हैं, ये आपको अपनी जय और पराजय को गरिमापूर्वक स्वीकारने का संस्कार देते हैं। ये आपको आजाद–ख्याल बनाते हैं, अपनी क्षमताओं पर भरोसा करना सिखाते हैं।

आज भारत में डॉक्टर और इंजीनियर हजारों की तादाद में हैं, लेकिन खिलाड़ी इतनी संख्या में नहीं दिखते। आज भी हम आसान रास्ता चुनते हैं और भीड़ के पीछे–पीछे चलते हैं। आशा करती हूँ कि स्पोर्टस् को करिअर बनाने के मैंने कुछ अच्छे कारण दिए हैं। पढ़ाई में अच्छा परिणाम लाने पर यदि आपको अच्छी तनख्वाह मिलती है, तो खिलाड़ी बनने पर आपको तनख्वाह भी मिलती है, साथ ही अपने तमाम दुखों और कमियों के साथ जीवन का सामना करने की ताकत भी मिलती है। आइए इस रास्ते पर चलने और अपने देश के लिए यश कमाने में अपने बच्चों की मदद करें।

***अदिति मुटाटकर*** *ने सभी आयु–समूहों – अण्डर–13, अण्डर–16, अण्डर–19 – की राष्ट्रीय चैम्पियनशिप जीती हैं, साथ ही वे भारत की राष्ट्रीय चैम्पियन भी रह चुकी हैं। अन्तर्राष्ट्रीय सर्किट में वे बिटबर्गर ग्रां–प्री 2008 का फाइनल भी खेली हैं। बल्गारियन ग्रां–प्री और डच ग्रां–प्री 2008 का सेमीफाइनल भी वे खेल चुकी हैं। 2010 में हुए नई दिल्ली के कॉमनवेल्थ खेलों में उन्होंने कॉमनवेल्थ रजत पदक जीता है।*

# 25 मैं, रोहन बोपन्ना

(जैसा कि उन्होंने प्रीति मथानी को बताया)

**रोहन बोपन्ना**

गर्व और आत्मविश्वास की अनुभूति होना, डेविस कप में भारत का प्रतिनिधित्व कर सकने की योग्यता अर्जित करना, अपने माता–पिता की आवाज में गर्व की खनक सुनना, आत्मिक सन्तोष का अहसास होना, उस खेल और लोगों को वह सब लौटा पाना जो मैंने उनसे पाया है – ये सब मेरे, रोहन बोपन्ना, एक पेशेवर टेनिस खिलाड़ी के लिए अमूल्य हैं।

मैं ग्यारह बरस का था जब खेलों के शौकीन मेरे पिता ने मुझे टेनिस खेलने के लिए प्रेरित किया। स्कूल में बहुतेरे मैदानी खेल खेलने के बाद, खेल के मैदान में जिन्दगी गुजारने के लिहाज से टेनिस मुझे एक आकर्षक विकल्प लगा। इस खेल के लिए एक सहज प्रतिभा होने के साथ–साथ मेरे अन्दर एक दृढ़ता भी थी जो मेरे खेल के लिए एक बड़ा सम्बल थी। सो इस खेल में एक व्यवस्थित ढंग से प्रशिक्षित होने के हिसाब से मैं पहले बंगलौर गया और फिर पुणे। खेल सीखने के साथ–साथ मेरी पढ़ाई भी जारी रही। लेकिन पढ़ाई सम्बन्धी मेरे सारे फैसले इस आधार पर होते चले गए कि सम्बद्ध शैक्षिक संस्था मुझे मेरे शौक (टेनिस) के अभ्यास के लिए जरूरी समय देने के हिसाब से कितनी लचीली है।

एक पेशेवर टेनिस खिलाड़ी बनना, और उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण, पेशेवर खिलाड़ी बनने का मेरा सफर, एक ऐसा शैक्षिक अनुभव रहा जिसने मुझे वह बनाया जो मैं आज हूँ। व्यावहारिक तौर पर दुनिया के रंग–ढंग में अपने आपको शिक्षित करने के लिए मैंने सोच–समझकर ही खेल का माध्यम चुना। टेनिस और इसके साथ चलने वाले प्रशिक्षण ने मुझे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का अहसास और एक आत्मविश्वास दिया। इसने मुझे मानक तय करने का शऊर दिया, मुझे लक्ष्य–केन्द्रित और एकाग्रचित्त होना सिखाया।

कुछ लोग उन सब प्रहारों का सामना करना सीख लेते हैं जो उन्हें अपने स्कूली और कॉलेज जीवन में मिलते हैं, और इसके बाद वे अपनी आजीविका के लिए किसी दफ्तर में नौकरी करने लगते हैं। मैंने इसके बजाय अपनी आजीविका के लिए एक पेशेवर मैदानी खेल चुनने और उसके जरिए एक स्वस्थ जीवनशैली अपनाने पर सोच–विचार किया।

मेरे ख्याल से शिक्षा का अर्थ है अनुभवी लोगों से सीखना, और उस सीख के आधार पर टेनिस कोर्ट में और टेनिस कोर्ट के बाहर अपने व्यक्तित्व को माँजना। मेरे लिए हर टेनिस मैच किसी भी अभ्यास मैच के मुकाबले ज्यादा चुनौतीपूर्ण रहा है। मेरा ध्येय यही रहता है कि मेरी सर्विस में बॉल को नेट के पार ले जाने की ताकत हो, मैं लगातार ऐसा करता रहूँ, और खेलते हुए अपनी क्षमताओं और अपने खेल के सकारात्मक पक्षों का लाभ उठाऊँ।

खेल को जब सक्रिय प्रोत्साहन मिलता है और एक व्यक्ति जब खेल के प्रति सच्ची–खरी दिलचस्पी रखता है, तब खेल शिक्षा बन जाता है। शुरुआत में मैं एक अन्तर्मुखी बच्चा था, लेकिन खेल के चलते मैं अपने खोल से बाहर आया और अपने परिवेश के प्रति सजग हुआ। अब मैं परिस्थितियों और लोगों के हिसाब से अपने आपको ढाल लेता हूँ, और अपने परिवेश को महत्व देना सीख गया हूँ। टेनिस ने मुझे एक वैश्विक नागरिक बनने का मौका दिया। खेलने की प्रक्रिया में मैं दुनिया भर घूमता रहा हूँ। अपने इसी खेल की बदौलत मुझे अलग–अलग किस्म के लोगों से मिलने का मौका मिला है। व्यक्तिगत रूप से वहाँ होना, तमाम तरह की

विविधताओं के अहसास से गुजरना, अपने–अपने तजुर्बों को आपस में साझा करना अपने आप में एक अद्‌भुत और सन्तुष्टि भरा अनुभव रहा है। मुझे अच्छी तरह याद है कि 2006 में रॉजर फेडरर के विरुद्ध मेरे मैच की शुरुआत मेरी घबराहट से हुई थी लेकिन जैसे–जैसे मैं मैच में रमता गया, वह मैच रोमांचक और चुनौतीपूर्ण होता गया।

खेल अगर शैक्षिक पाठ्यचर्या का हिस्सा बन जाए तो यह एक व्यक्ति के विकास की प्रक्रिया का एक बढ़िया सन्तुलनकारी घटक बन सकता है, जिसकी मदद से वह अपनी क्षमताओं पर ध्यान केन्द्रित कर सकता है।

स्पोर्ट्स करिअर या अकादमिक करिअर, इनमें से कोई एक चुनने का फैसला सम्बद्ध व्यक्ति द्वारा सोच–समझकर किया जाना चाहिए। दोनों की माँग है कि हम अपने लिए मानक और लक्ष्य तय करें। लेकिन मैंने तय किया कि मैं हर रोज एक स्वस्थ अस्तित्व के साथ जागूँगा, जिसमें मेरे लिए दिन की रौशनी और बाहर की खुली हवा सुनिष्चित होंगे।

आन्तरिक बल और खेल पर केन्द्रित एकाग्रता से संचालित एक स्वास्थ्यकर व्यवस्था ने मेरे व्यक्तिगत विकास में बहुत अहम भूमिका निभाई है। अपने जोड़ीदार के साथ मानसिक तालमेल और संगति की माँग करने वाली डबल्स टेनिस, समझदारी और परस्पर जुड़ाव का माहौल बनाती है। टीम में शामिल दोनों खिलाड़ियों के लिए निहायत जरूरी होता है कि वे सामंजस्य बनाकर खेलें, और इस आपसी तालमेल और सामंजस्य के बल पर ही बढ़िया टीमें बनती हैं।

टेनिस मेरा जुनून है, मेरी आस्था है, और यह खेल खेलते–खेलते मैं अपने जीवन का हर दिन बिताता हूँ, मेरी हर उपलब्धि का आनन्द लेता हूँ, और आगे के लक्ष्य तय करते हुए नए दिन की शुरुआत करता हूँ।

*__रोहन बोपन्ना__ ने सन् 2003 में जोरदार सर्विस वाले 23 वर्षीय एक ऐसे खिलाड़ी के तौर पर पेशेवर टेनिस की दुनिया में कदम रखा, जिसे देखकर लगा कि वह भारतीय टेनिस की सूरत ही बदल कर रख देगा। सात साल तक तमाम प्रसिद्ध राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय टूर्नामैन्ट्स में खेलने के बाद खासतौर पर अन्तर्राष्ट्रीय युगल सर्किट और डेविस कप में एकल मैचों के एक प्रमुख खिलाड़ी के रूप में उनकी धाक बनी है।*

*साल 2010 में रोहन ने एक बार फिर टेनिस जगत में अपना सिक्का जमाया जब वे यू.एस. ओपन का फाइनल खेले और विम्बलडन में क्वार्टर–फाइनल तक पहुँचे। रोहन भारतीय डेविस कप टीम के एक सदस्य हैं और 2010 के डेविस कप मुकाबले में ब्राजील के विरुद्ध भारतीय टीम की यादगार जीत में उनकी बड़ी अहम भूमिका रही।*

लर्निंग कर्व के पिछले अंक नीचे दी गई लिंक पर उपलब्ध हैं

(हिन्दी में प्रकाशित, सामाजिक आयाजन एवं स्कूल नेतृत्व अंक ही उपलब्ध हैं)

**http://www.azimpremjifoundation.org/foundation_newsletters**

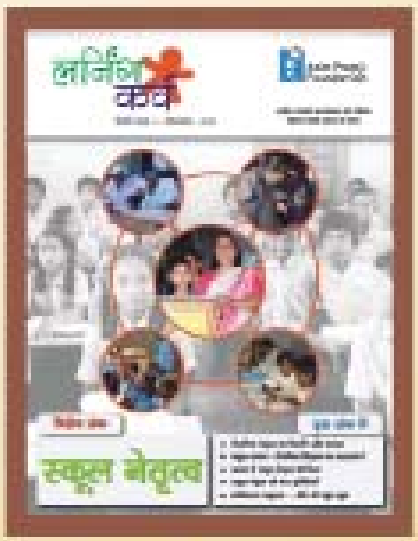

अगला अंक

# स्कूली शिक्षा में कला

Azim Premji University

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय

का प्रकाशन

नम्बर 134, डूड्डाकन्नेल्ली,
ज़िंगो कॉरपोरेट ऑफिस के बाजू में,
सरजापुर रोड, बंगलौर 560 035, भारत
दूरभाष : 91–80–66144900 / 01 / 02 फैक्स : 91–80–66144903
ई–मेल : learningcurve@azimpremjifoundation.org
वेबसाइट : **www.azimpremjifoundation.org**

*Also visit Azim Premji University website at*
**www.azimpremjiuniversity.edu.in**